5·2

मिथिलाविद्यापीठग्रन्थमाला
अर्वाचीनग्रन्थावलौ पञ्चमं पुष्पम्

बिहार-राज्य-शिक्षा-विभागेन संघटितया समित्या राज्यसाहाय्येन समायोजिते, १९६६ खीस्ताब्दे, महाकविबाणभट्ट-जयन्ती-समारोहावसरे प्राप्तानां

निबन्धानां संग्रहरूपा

बाणजयन्ती-निबन्धावली

सम्पादकः

डा० श्रीश्रीधर वासुदेव सोहोनी,
आई० सी० एस्०-विद्यावारिधि-विद्यावाचस्पति-डी० लिट्०
इतिविरुदविभूषितः
बाणभट्टजयन्तीसमारोहसमित्यध्यक्षः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन डा० काशीनाथमिश्रेण
प्रकाशिता

शकाब्दः १८९८, विक्रमाब्दः २०३४, ऐशवीयाब्दः १९७७

मिथिलाविद्यापीठग्रन्थमाला
अर्वाचीनग्रन्थावलौ पञ्चमं पुष्पम्

बिहार-राज्य-शिक्षा-विभागेन संघटितया समित्या राज्यसाहाय्येन, समायोजिते, १९६६ ख्रीस्ताब्दे, महाकविबाणभट्ट-जयन्ती-समारोहावसरे प्राप्तानां

निबन्धानां संग्रहरूपा

बाणजयन्ती-निबन्धावली

सम्पादकः

डा० श्रीश्रीधर वासुदेव सोहोनी,
आई० सी० एस्०-विद्यावारिधि-विद्यावाचस्पति-डी० लिट्०
इतिविरुदविभूषितः
बाणभट्टजयन्तीसमारोहसमित्यध्यक्षः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन डा० काशीनाथमिश्रेण
प्रकाशिता

शकाब्दः १८९८, विक्रमाब्दः २०३४, ऐशवीयाब्दः १९७७

Mithila Institute Series Modern Text No. 5

BĀṆAJAYANTĪ-NIBANDHĀVALĪ

Edited by

Dr Śrī Śrīdhara Vāsudeva Sohonī, I. C. S.,
Vidyāvāridhi, Vidyāvācaspati, D.Litt.,
President,
Bāṇabhaṭṭa Jayantī Samāroha Samiti

Published by
Dr Kashinath Mishra,
Director, Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning,
Maheshanagar, Darbhanga.

1977

Copies of this Volume may be had, postage paid, from the Director, Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, Maheshanagar, Darbhanga on pre-payment either in Cash, Postal Order or M. O. of Rs. 20/-

Printed by Saraswaty Press, Darbhanga and Published by Dr Kashinath Mishra, Director, Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, Maheshanagar, Darbhanga.



The Government of Bihar established the **Mithila Institute** *of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga in 1951 with the object,* **inter alia,** *to promote advanced studies and research in Sanskrit learning, to bring together the traditional Pandits with their profound learning and the modern scholars with their technique of research and investigations, and to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the five others planned by this Government as a token of their homage to the tradition of learning and scholarship for which ancient Bihar was noted. Apart from the Mithila Institute, four others have been established and have been doing useful work during the last eighteen or nineteen years—Nalanda Institute of Research and Post-Graduate Studies in Buddhist learning and Pali at Nalanda, K.P. Jaisawal Research Institute at Patna, the Bihar Rashtra Bhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna, and the Vaishali Institute for Post-Graduate studies in Prakrit and Jainology at Vaishali. In the establishment of the Mithila Institute the State Government received a generous donation from Maharajadhiraja of Darbhanga for construction of the building on a plot of land also donated by him.*

2 As part of this programme of rehabilitating and reorientating ancient learning and scholarship, the editing and publication of this volume have been undertaken with the co-operation of scholars in Bihar and outside. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.



विषयसूची

टिप्पणी :—१ ❀एतच्चिह्निताङ्कौ लेखौ विहाय अन्ये सर्वे लेखाः बाणभट्टजयन्ती-समारोह-समित्या आयोजितायां प्रतिस्पर्द्धायां तत्तत्केन्द्रेषु पुरस्कृताः ।

बाणभट्ट - जयन्ती - समारोहस्येतिहासः

वश्यवाणी – कवि – चक्रवर्ती महाकविर्बाणः स्वजनुषा बिहारधरां धवली-चकारेति निश्चप्रचम्। अतो बिहार-राज्येन तस्य महाकवेर्जयन्ती-समारोहस्य व्यवस्थाऽकारि तदर्थं द्रव्यानुदानमपि प्रदत्तम् बिहार-राज्य-शासनेन। अस्मिन् समारोहे मया सर्वप्रथममयं प्रस्तावो राज्य-शासनस्य पुरतः समुपस्थापितः। सर्वेषां प्रयत्नसातत्येन समारोहोऽयं सफलां परिणतिमलभतेति तथ्यम्। बिहार-राज्य-शासनस्य शिक्षा-विभागेन मम प्रस्तावः स्वीकृतः, समारोहायोजनार्थं च सदस्यत्रययुता समितिरेका संघटिता। अस्याश्च समितेरध्यक्षोऽपि अहमेव नियुक्तः। डा. श्रीरामधारी सिंह "दिनकर" महाशयः सदस्यः किञ्च श्रीराम-पदार्थशर्मा, सहायक-शिक्षा-निदेशकः संयोजक-सदस्यो नियुक्तः। उपसमितिरियं सुचिरं विमृश्य सुविचार्य च समारोहस्य साफल्याय योजनामेकां निर्माय तदनुसारं जयन्ती-समारोहं प्रावर्तयत्। एतदर्थं च बिहार-राज्य-शिक्षाविभागेन मुद्राणां सहस्रद्वयं समितये समर्पितम्।

समिति-निर्णयानुसारं पूर्वं पाटलिपुत्रे एकत्रैव समारोहस्य कर्तव्यता निरचायि किन्तु पश्चात् राज्यव्यापि-प्रचार-बुद्धया विकेन्द्रीकृत्य समारोहस्य कर्तव्यत्वं निश्चितम्। एतन्निश्चयानुसारं च राज्यस्य विभिन्नेषु ख्यातेषु संस्कृत-महा-विद्यालयेषु दशसंख्याकेषु समारोहोऽयं व्यरचि। एवं हि येषु दश-महाविद्यालयेषु जयन्ती-समारोहोऽजनि तेषां नामानीमानि :—

पटना प्रमण्डले

(१) राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालयः, पाटलिपुत्रम्।
(२) सिद्धेश्वरी-संस्कृत-महाविद्यालयः, पँचरुखिया, शाहाबाद।
(३) ब्रजभूषण-संस्कृत-महाविद्यालयः, खरखुरा, गया।

तिरहुत प्रमण्डले

(४) धर्मसमाज-संस्कृत-महाविद्यालयः, मुजफ्फरपुर।
(५) महारानी-रमेश्वरलता-महाविद्यालयः, दरभंगा।
(६) वैद्यनाथ पाण्डेय-आर्य-संस्कृत-महाविद्यालयः, सिवान, सारन।

भागलपुर प्रमण्डले

(७) राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालयः, भागलपुर ।
(८) अवधबिहारी-संस्कृत-महाविद्यालयः, रहीमपुर, मुंगेर ।
(९) बालानन्द-संस्कृत-महाविद्यालयः, करनीबादआश्रम, देवघर ।

छोटानागपुर प्रमण्डले

(१०) राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालयः, रांची ।

उपर्युक्तेषु दश - समारोह - सम्पादन - केन्द्रेषु विभिन्नतिथिषु समारोहोऽयं सोत्साहं सम्पादितः । समाचारपत्रेषु जयन्ती-समारोहस्य योजना समये समये प्रकाशिताऽभूत् । बाणभट्ट-विषये शोधात्मकाः निबन्धाः आमन्त्रिताः । तत्तत्-केन्द्रेषु सर्वप्रथमाय निबन्ध-लेखकाय पुरस्काराः प्रदत्ताः । पुरस्कृताश्च निबन्धाः संकलिताः सन्तः एकया विशेषज्ञ-समित्या सम्पादिताः । तेषामेव पुरस्कृतानां शोधप्रबन्धानां संकलनरूपोऽयं ग्रन्थः मिथिला-संस्कृत-शोध-संस्थानस्य तत्त्वावधाने प्रकाश्यमानो वेविद्यते । अत्र बाणविषयक-निबन्धानां समावेशः सुतरां विद्वज्जन-मनोह्लादको भविष्यतीति दृढं विश्वसिमि ।

अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशनेऽपि राज्य-शिक्षा-विभागेनैव सर्वोऽपि व्ययः स्वीकृतः । अत्र समावेशितानां निबन्धानामवलोकनेन बाण-विषये अनेके नवा नवा विचाराः प्रादुर्भवन्ति । "वाणी बाणो बभूवेति", आभाणकस्यापि याथार्थ्यं स्फुटं भवति ।

यद्यपि जयन्ती-समारोहावसरे अनेकनिबन्धाः प्राप्ता अभवन् किन्तु तेषां सर्वेषामपि समावेशोऽस्मिन् संग्रहे नाभूत्, स्थानाभावात् । येषां विदुषां निबन्धा अत्र संगृहीताः ते सर्वे एव संस्कृत-साहित्यस्य प्रख्याताः विद्वांसः सन्ति । केषांचित् छात्राणामपि निबन्धाः समित्याऽनुशंसिता अस्मिन् संग्रहे समावेशिताः । अत्र प्रकाशने निबन्धानां पौर्वापर्यमकिञ्चित्करम् । प्रायः समेषामेव निबन्धानां प्रतिपाद्यविषयसाम्येऽपि नैजं वैशिष्ट्यं तत्र तत्र वर्तत एव । महाकवेर्बाणभट्टस्य जन्मस्थान-वंश-काल-कृति-विषये याः विप्रतिपत्तयः सुधीसमाजेऽनुभूयन्ते तासां निराकरणं सप्रमाणं सकारणञ्च निबन्धकर्तृभिः कृतं प्राप्स्यते । एकत्र बाण-विषये एतावन्तो निबन्धाः प्रायः नाऽन्यत्र सुलभाः । एतादृशस्य समारोहस्य क्रिया-समभिव्याहारेणायोजनं प्रत्येकराज्ये प्रतिवर्षं च यदि भवेत्तर्हि संस्कृत-साहित्यस्य महानुपकारो भवेत् ।

आशासे संग्रहोऽयं संस्कृत-साहित्य-सेवकैः विद्वद्भिश्च नूनं समादृतो भविष्यति ।

उपोद्घात

श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी

साहित्य के महान् शिल्पी बाणभट्ट ने हर्षचरित के उच्छ्वासों की परिकल्पना करते समय उनकी विषय-वस्तुओं का चुनाव अत्यन्त सावधानी के साथ किया था। यह सर्वमान्य है कि हर्षचरित हर्षवर्द्धन का अधूरा जीवन-चरित्र है। स्पष्टतः बाणभट्ट की योग्यतानुसार इसे पूरा किया भी नहीं जा सकता था। परभाग (१) के सर्वग्राह्य सिद्धान्त के अनुसार बाणभट्ट ने उस वैषम्य की स्थिति का चित्र उपस्थित किया है जो तत्कालीन ग्रामीण जीवन और सम्राट के राजकीय शिविर तथा उसके इर्द-गिर्द के वातावरण के बीच व्याप्त था। प्रथम उच्छ्वास में ग्रामीण वातावरण की पृष्ठभूमि में अगर द्वितीय उच्छ्वास में वर्णित राजकुल के वातावरण को ध्यान में लाया जाय, तो वैषम्य अत्यन्त स्पष्ट भासित होगा। कहना चाहिये कि जान-बूझ कर वैषम्य के इस चित्र को प्रस्तुत किया गया है। सम्राट् हर्षवर्द्धन से मिलने के पूर्व के अपने जीवन-वृत्त को प्रस्तुत करते समय बाणभट्ट ने प्रकारान्तर से स्पष्टता के साथ यह बताना आवश्यक समझा कि विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासनिक संगठनों एवं शिक्षा-संस्थाओं के बारे में यथेष्ट जानकारी रहने पर भी क्यों उन्होंने अपने गाँव में ही रहना कबूल किया। प्रसंगवश उन्होंने बताया है कि उनके पूर्वज वर्तमान औरंगाबाद जिले के एक स्थान में रहते थे। इस स्थान का स्पष्ट संकेत बाणभट्ट ने कई बार किया है। उन्होंने कहा है कि इस स्थान तक पहुँचने के लिये लोगों को पश्चिम की ओर से शोणनद को पार करना पड़ता था। बाद में द्वितीय उच्छ्वास में बाणभट्ट ने दूसरे प्रसंग में बताया है कि उनके पूर्वजों को गुप्त सम्राटों ने सम्मानित किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाणभट्ट का परिवार अत्यन्त सम्पन्न था इसी तरह उन्होंने जानबूझ कर अपने मित्रों और अन्य साथियों की पूरी सूची दी है। बाणभट्ट की यात्राओं में ये सहचर उनके साथ रहते थे, और इस सूची में उनकी संख्या ४४ है। अपनी रुचि और प्रवृत्तियों का संकेत देने के लिये कदाचित् बाणभट्ट ने ऐसा किया है। किन्तु यह काम उन्होंने इतने कलापूर्ण ढंग से किया है कि तत्कालीन ग्रामीण-समाज

---

(१) "वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः ।" हर्षचरित की शंकरकृत संकेत टीका द्रष्टव्य।

और सम्राट के शिविर के वातावरण में जो वैषम्य व्याप्त था, वह स्पष्ट हो उठता है; और उनका अपने जीवन-वृत्त का यह विवरण अत्यन्त संगत प्रतीत होने लगता है। बाणभट्ट ने एक मनोरंजक बात यह भी बतायी है कि वह अपने मित्रों के साथ घुमक्कड़ी का जीवन व्यतीत करने के बाद अपने गाँव लौट आये थे। कदाचित यह बात इसलिये कही गयी है, जिससे यह स्पष्ट है कि बाणभट्ट राज-दरबार में जाने के बजाय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र-जीवन जीना चाहते थे। राजकुल का अर्थ राजा का सचिवालय समझना चाहिये। बाणभट्ट का कथन है कि उन्हें इस प्रकार के कई राजकुलों का ज्ञान था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रथम उच्छ्वास की कथा-वस्तु का चुनाव तथा उसका शब्द-विन्यास इसलिये इस ढंग से किया गया है, जिसमें यह प्रगट हो कि बाणभट्ट के मन में नगर के जीवन के प्रति क्यों आकर्षण पैदा हुआ, तथा राजकीय अनुग्रह प्राप्त करने का खयाल क्यों उत्पन्न हुआ। द्वितीय उच्छ्वास के प्रथम गद्यांश में आश्रम के वातावरण को इसीलिये प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह प्रगट हो कि बाणभट्ट अपने भाई-वन्दों के बीच रहकर ही प्रसन्नता का अनुभव करते थे, तथा अपने गाँव के सम्मिलित परिवार में रह कर शान्ति-पूर्वक विद्यानुशीलन करने में ही सन्तोष लाभ करते थे।

इसके उपरान्त ग्रीष्म का प्रसिद्ध वर्णन हमें मिलता है। इसका उद्देश्य भी ग्रामीण वातावरण की पृष्ठभूमि में सम्राट के साथ कायम होने वाले सम्बन्ध की संभावना को स्पष्ट करना है। ग्रामीण जीवन की नैसर्गिक धारा के विपरीत राज-दर्बार के अप्राकृतिक एवं संतापदायक वातावरण का चित्र बहुत ही उजागर हो उठता है।

बाणभट्ट के मनमें राज-दर्बार में व्याप्त अप्राकृतिक जीवन के प्रति एक वितृष्णा व्याप्त थी, फिर भी यह प्रश्न उठता है कि ऐसी दशा में कौन-सी ऐसी प्रेरणा थी, जो उन्हें हर्षवर्द्धन से मिलने को ले गई? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर पाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बाणभट्ट वर्तमान भोजपुर जिले में प्रवाहमान गंगा को पार कर सम्राट के शिविर में गये। सम्राट से मिलने का सन्देश हर्षवर्द्धन के चचेरे भाई राजकुमार कृष्ण ने भेजा था। इस सन्देश में कहा गया था कि कुछ लोगों ने सम्राट को बाणभट्ट के बारे में गलत सूचनाएँ दी हैं; और सम्राट ने उन्हें सत्य मान लिया है। इन भ्रामक धारणाओं को निर्मूल करने के लिये आवश्यक है कि बाणभट्ट शीघ्रातिशीघ्र सम्राट से मिलकर सही स्थिति का स्पष्टीकरण कर दें।

इस नाजुक स्थिति में सम्राट के साथ हुई पहली मुलाकात बाणभट्ट के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस आशय के कितने ही साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनमें यह संकेत प्राप्त होता है कि सम्राट हर्षवर्द्धन का सामीप्य और सम्पर्क प्राप्त होने के कारण बाणभट्ट को प्रभूत आर्थिक लाभ मिला। (२) विचित्र बात यह है कि स्वयं बाणभट्ट ने हर्षवर्द्धन की इस कृपा का उल्लेख (३) उपेक्षा-भाव के साथ ही किया है। अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हर्ष ने उन्हें प्रभूत धन-राशि प्रदान की थी, और उन दिनों यह चर्चा का विषय भी बन गई थी, फिर भी बाणभट्ट ने मुक्त-कण्ठ से हर्ष की दानशीलता की प्रशंसा नहीं की।

हर्षवर्द्धन के आह्वान पर बाणभट्ट का उनके दरबार में उपस्थित होने की घटना का विस्तृत विवरण उपलब्ध है; और विद्वानों ने इसकी प्रशंसा भी की है। किन्तु इनके उद्देश्य और यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि जरा इसका विश्लेषण गहराई से किया जाय। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने बाणभट्ट को देख कर कहा—"महान् अयं भुजंगः" और इसके बाद जोड़ा—"इति अस्माभिः श्रुतम्"। यह भुजंग शब्द हर्षवर्द्धन के इस वक्तव्य के अर्थ को स्पष्ट करने की कुंजी है। "इति अस्माभिः श्रुतम्" यह भी बड़ा महत्त्वपूर्ण वाक्य है। स्पष्टतः 'भुजंग' का बोध नैतिक दायित्वों से हीन विलासी और लम्पट व्यक्ति से होता है। किन्तु इस शब्द का अर्थ उस साहित्य के रचयिता से भी होता है, जो व्यंग्योक्ति और अनेकार्थक वाक्यांशों एवं शब्दों का प्रयोग करे। यह नहीं भूलना चाहिये कि बाणभट्ट की जो साहित्यिक उपलब्धियाँ थीं, उनके बारे में जानकारी प्राप्त करके ही हर्षवर्द्धन ने बाणभट्ट को अपने दरबार में बुलाया था। ऐसा समझने के लिये कई कारण हैं; और राजकुमार कृष्ण ने भी यही सोच कर बाणभट्ट के पास अपना दूत भेजा था।

---

(२) बाण के संस्कृत वाङ्मय में इस आशय के अनेकों उल्लेख उपलब्ध हैं—

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत् ॥
या बाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किता कीर्त्तय—
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परीहासताम् ॥

(३) स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो
विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति ।
हर्षचरित उ० २, अन्तिम वाक्य

हर्षवर्द्धन अपने दरवार में प्रमुख लेखकों और साहित्यिक प्रतिभाओं को एकत्र कर रहे थे; और सम्राट स्वयं अपनी साहित्यिक क्षमता का परिचय दे चुके थे। बाणभट्ट की प्रतिभा को सम्मान देने के लिये तथा यह सोच कर कि कहीं उनकी प्रतिभा उपेक्षित न रह जाय, राजकुमार कृष्ण ने उन्हें राज-दरबार में उपस्थित होने का सन्देश भेजा था।

'भुजंग' शब्द बड़ा ही अर्थगर्भित है, इसके अर्थ का ऐतिहास विकास-क्रम को जरा ध्यान में रखना चाहिये। यह विट, व्यलीक और धूर्त जैसे शब्दों का पर्यायवाची है। ये शब्द एक विशेष प्रकार के साहित्य-रचयिताओं के लिये प्रयुक्त हुए हैं, जिन्हें षट्प्रज्ञ या विदग्ध कहा जाता रहा है। इस प्रकार के रचनाकारों की विशेषता यह है कि इन्होंने व्यंग्य और विनोदयुक्त रचनाओं के द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों का तथा उन में संलग्न व्यक्तियों का पर्दाफाश किया शब्द कल्पद्रुम में इस प्रकार के साहित्य-साधकों का उल्लेख है :– (४)

बाणभट्ट की श्लेष तथा अनेकार्थक भाव प्रकाशन की जो क्षमता थी वह सुविदित है। हर्षवर्द्धन का संरक्षण प्राप्त करने के पूर्व ही उनकी इस साहित्यिक क्षमता का पूर्ण विकास हो चुका था। इसमें सन्देह नहीं कि श्लेष का प्रयोग करने की उनकी जो क्षमता थी, उसकी ख्याति चारो ओर फैल चुकी थी। इस प्रकार की उपलब्धि उसी को प्राप्त हो सकती है, जिसकी बौद्धिक क्षमता अत्यन्त उच्चकोटि की हो। निस्सन्देह बाणभट्ट यह क्षमता प्राप्त कर चुके थे, और यही कारण है कि वह हर्षवर्द्धन के दरबारी साहित्यिकों के ईर्ष्या का पात्र भी बन गये थे। इन्हीं लोगों ने, संभव है, हर्षवर्द्धन के कान भर दिये हों। इसी प्रकार के साहित्यकारों का गुट था, बहुत संभव है, उसके सदस्य कवि मयूर और कुशल पद्य-रचयिता मातंग दिवाकर भी रहे हों।

बाणभट्ट जब हर्षवर्द्धन के राज-दरबार में गये, तो उन्होंने तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार विद्वज्जनों के द्वारा किया जाने वाला अभिवादन सम्राट् का किया। उनके प्रवेश करते ही हर्षवर्द्धन ने कटाक्ष किया––"महान् अयं भुजंगः"। इसके बाद उन्होंने यह स्पष्ट भी किया कि ऐसा ही उन्होंने सुन रखा है। बाणभट्ट ने इसका विरोध किया, और उन्होंने कहा कि उन्होंने विविध प्रकार की विद्याओं का उपार्जन किया है। उनका दृष्टिकोण प्रौढ़ और दार्शनिक है, और उन्हें अपनी योग्यता और पात्रता पर पूरा विश्वास है। इस

---

(४) धर्मार्थकाममोक्षेषु लोकतत्त्वार्थयोरपि।
षट्सु प्रज्ञास्ति यस्योच्चैः स षट्प्रज्ञ इति स्मृतः॥

प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि हर्षवर्द्धन ने जो कटाक्ष किया था, उसका सम्बन्ध बाणभट्ट की व्यंग्यात्मक प्रतिभा से था। महान् विद्वान के रूप में बाणभट्ट की जो अकलंकित कीर्ति थी, उसके सम्बन्ध में यह काम्य नहीं कहा गया था, हर्षचरित के प्रसिद्ध टीकाकार शंकर ने भी उल्लेख किया है— "भुजंगो विटोऽपि" और बाणभट्ट ने भी स्वयं कहा है—"विट-गोष्ठी इति. विदग्धैः" (तीसरा उच्छ्वास) बाणभट्ट ने बार-बार भुजंग शब्द को लेकर व्यंग्योक्ति की है। स्वयं उनके संरक्षक सम्राट ने बाणभट्ट को "विसदकाम्य-वाणी चक्रवर्ती" प्रदान की थी। इससे भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अने-कार्थक वाक्यावलियों की रचना करने की क्षमता बाणभट्ट को थी। इसका स्पष्ट उदाहरण बाणभट्ट के उस प्रत्युत्तर में मिलता है, जो उन्होंने हर्षवर्द्धन को अपनी पहली मुलाकात के समय ही दिया है। हर्षवर्द्धन ने जब कहा—"महान अयं भुजंगः" तो बाणभट्ट ने तुरत उत्तर दिया—"कामे भुजंगता" यानी मैं तो भुजंगता प्राप्ति की कामना ही करता हूँ। यहाँ भुजंगता शब्द के रूप में तीन अर्थ होते हैं।

बाणभट्ट को अपने से ऊपर किसी अधिकारी की सत्ता किस तरह बेबर्दाश्त थी, इसका प्रमाण हमें कामरूप के नरेश भास्करवर्मन् के दूत हंसवेग के विस्तृत वक्तव्य में मिलता है। जब हर्षवर्द्धन ने अत्यन्त सौजन्य प्रदर्शित करते हुए नम्रतापूर्वक हंसवेग को यह संकेत किया कि उनके स्वामी के साथ शीघ्र ही मिलकर हर्षवर्द्धन को प्रसन्नता होगी, तो इसमें यह व्यंग्य छिपा हुआ था कि हंसवेग के स्वामी को एक सम्राट का राजनीतिक प्रभुत्व स्वीकार करना होगा। हंसवेग के स्वामी को एक सम्राट का राजनीतिक प्रभुत्व स्वीकार करना होगा। हंसवेग ने अत्यन्त विस्तार के साथ इस प्रकार की दासता की स्थिति तथा उसके परिणामों की निन्दा की है। जिस ओजस्विता के साथ यह विरोध प्रगट किया गया है, उसने संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। तत्कालीन सरकारी सेवाओं की स्थिति पर यह करारा व्यंग्य है; और यह वर्तमान युग की स्थितियों के लिये भी सार्थक है। हर्षवर्द्धन ने अत्यन्त सोच-विचार कर गिने-चुने शब्दों में अपना मन्तव्य प्रगट किया था, किन्तु इसका इतना तीव्र और रोषपूर्ण विरोध किया गया। उस युग की सार्वजनिक सेवाओं और प्रशासन की क्या स्थिति थी, उसपर इस वक्तव्य से अच्छा प्रकाश पड़ता है। कहना न होगा कि राज-सेवा एवं राज-सेवकों के सम्बन्ध में प्रगट किये गये ये विचार स्वयं बाणभट्ट के थे। उनके मन में राज-सेवा के प्रति जो उपेक्षा व्याप्त थी, उससे प्रेरित होकर, उन्होंने राज-दरबार से प्राप्त होने वाली अनेक सुविधाओं और अनुकूलताओं को त्याग कर दिया था।

तीसरे उच्छ्वास का नामकरण 'राज-दर्शन' किया गया है। इसमें दूसरे उच्छ्वास की कथा-वस्तु को आगे बढ़ाया गया है। इसमें हर्षवर्द्धन के परिवार की पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की गई है। चौथे उच्छ्वास का नामकरण 'चक्रवर्ती जन्मवर्णनम्' किया गया है; और इसमें बाणभट्ट के संरक्षक-सम्राट के जन्म तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। पाँचवें उच्छ्वास का नाम है 'महाराज-मरण-वर्णनम्' और इसमें हर्षवर्द्धन के पिता की मृत्यु का विस्तृत वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। छठे उच्छ्वास का नाम 'राज-प्रतिज्ञा वर्णनम्' है। हर्षवर्द्धन के भाई की हत्या के उपरान्त उसके मनमें जो प्रतिक्रिया हुई, तथा तैयारियाँ करने के बाद शशांक तथा उसके सहायकों के विरुद्ध जो सैनिक अभियान किया गया उसका वर्णन छठे उच्छ्वास में है। सातवें उच्छ्वास का नाम है 'छत्रलब्धि'। इसमें हर्षवर्द्धन के सैनिक अभियान का वर्णन है, तथा इसी प्रसंग में कामरूप के नरेश भास्कर-वर्मन् के दूत हंसवेग के साथ वार्तालाप का प्रकरण प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकरण में भास्कर-वर्मन् से हर्षवर्द्धन को राजकीय छत्र प्राप्त होने का विवरण दिया गया है। इसलिये इस उच्छ्वास का नाम 'छत्रोपलब्धि' हुआ।

हर्षचरित के अन्तिम यानी आठवें उच्छ्वास का कोई नामकरण नहीं हुआ। इस उच्छ्वास की विषय-वस्तु विन्ध्याटवी में हुई घटनाएँ हैं. तथा इसी में हर्ष-वर्द्धन की बहन राज्यश्री के पाये जाने का वृत्तान्त है। यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि राज्यश्री, जो हर्षवर्द्धन की छोटी बहन थी, और विधवा हो गई थी, उसने हर्षवर्द्धन के जीवन में क्यों इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। अगर इस तथ्य को ध्यान में रखा जाय कि हर्षवर्द्धन के बड़े भाई की भी मृत्यु हो चुकी थी और परिवार में एकमात्र राज्यश्री ही थी, जिस पर वह निर्भर रह सकता था, तो उपरोक्त प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। तत्कालीन चीनी तीर्थयात्री (५)ने उल्लेख किया है कि 'हर्ष-वर्द्धन अपनी विधवा बहन की सहायता से अपने साम्राज्य का प्रशासन चलाता था।' इससे स्पष्ट है कि हर्षवर्द्धन के प्रशासन में राज्यश्री का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान था, और कोई भी सम-सामयिक इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता था।

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके बाद बाणभट्ट शशांक का विवरण प्रस्तुत करना चाहते थे।

---

५. शे-किया फांग-चे (पृष्ठ ५७) विश्व-भारती (डा. पी० सी० बागची का अनुवाद) लेखक—नाओ शियन (५९५-६६७ ई०)।

बाणभट्ट ने स्वयं कहा है कि उन्होंने काव्य-रचना में पूरी स्वाधीनता वरती है; किन्तु यह उल्लेखनीय है कि बाणभट्ट की लम्बी वाक्य-रचनाएँ उनकी व्यक्तिगत विशेषता है। उन्होंने लिखा है—'स्वयमुत्पादितचिन्ताशतानुकूला कविमतिरिव तरलता न किंचिन्नोत्प्रकाशते'। बाणभट्ट ने अपनी वाक्यावलियों की रचना में बड़ी सावधानी वरती है; और पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार शब्दों का गुंफन किया है, एवं उनका प्रारंभ, विस्तार और अन्त किया है। यह सोचना बिल्कुल गलत होगा कि ये वाक्य यों ही बेतरतीब ढंग से लिख डाले गये हैं; और उनकी लम्बाई एवं अर्थ-गाम्भीर्य में कोई तारतम्य नहीं है। यह प्रश्न भी पूछा जा सकता है कि बाणभट्ट की रचना-प्रतिभा क्या थी। क्या उन्होंने एक बार ही सब कुछ लिख डाला ; या वह अनुभवों को नोट करते जाते थे; और समय आने पर उन्होंने उनका उपयोग किया। यह भी संभव है कि उन्होंने जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया, उसे वह पत्रों के रूप में अपने परिवार के सदस्यों के पास भेजते गये हों। कालक्रम से इन सभी पत्रों का संग्रह कर उन्होंने इस सामग्री के आधार पर ही हर्ष-चरित की रचना की हो। यह भी संभव हो सकता है (जाने या अनजाने यह भी माना जा सकता है) कि घर वापस लौटकर उन्होंने अपनी अपूर्व मेधा और स्मृति के आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना की हो। यह अगर मान भी लिया जाय कि बाणभट्ट की मेधा और स्मृति-शक्ति असाधारण रही थी; फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि बाणभट्ट के पास अपने अनुभवों के लिखित नोट अवश्य होंगे, जिनका उपयोग उन्होंने अपने साहित्य-प्रणयन के निमित्त किया। यह तो सहज ही माना जा सकता है कि उस युग में भी लोग अपने मित्रों एवं स्वजनों के पास पत्र भेजा करते थे। यह भी सहज ही माना जा सकता है कि कोई विद्वान अपनी भावी रचनाओं के लिये नोट तैयार करे। क्योंकि प्रश्न उठता है कि अगर पत्र-लेखन और नोट तैयार करने की पद्धति उन दिनों प्रचलित नहीं थी ; हुएन त्सांग ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों का भौगोलिक विवरण, राज्यों की स्थिति, व्यक्तित्वों के विवरण, स्तूप, धर्मक्षेत्र, शिक्षा एवं धार्मिक संस्थाओं का विवरण एवं अन्य प्रकार की सूचनाएँ किस प्रकार तैयार कीं; और उन्हें किस प्रकार चीन भेजा ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन दिनों इस प्रकार की प्रक्रिया प्रचलित थी;- और पत्र-प्रेषण के अवसर भी लोगों को प्राप्त होते थे। इसलिये यह समझा जा सकता है कि जो काम हुएन त्सांग बड़े पैमाने पर कर सकते थे, वही काम बाणभट्ट भी अपने देश की सीमा के अन्दर रहकर कर सकते थे। हुएन त्सांग को अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये देश से बाहर जाना पड़ा,

पर बाणभट्ट तो आराम के साथ अपने देश में ही रहे; और जीवन के अन्तिम दिनों तक उन्होंने सुख और चैन की जिन्दगी बिताई।

इसलिये यह कहना गलत होगा कि संस्कृत के कवियों के पास कोई कार्य-पद्धति नहीं थी; या उन्होंने किसी अनुशासन का पालन नहीं किया।

(२)

कालिदास के जन्म-स्थान के बारे में तरह-तरह के विवाद हैं; पर बाणभट्ट के साथ यह बात नहीं है। यह सर्वमान्य है कि बाणभट्ट बिहार के वर्तमान औरंगाबाद जिले में पैदा हुए थे। इसलिये उचित है कि आज से १३५० वर्ष पूर्व उत्पन्न संस्कृत साहित्य के इस महान वरदपुत्र का हम यथोचित सम्मान करें। इनकी रचनाओं का साहित्यिक के अलावा ऐतिहासिक महत्व भी है और भारतीय संस्कृति के बारे में उनसे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मैंने प्रतिवर्ष बाणभट्ट समारोह मनाने का सुझाव दिया था।

कई विद्वानों ने बाणभट्ट के सम्बन्ध में शोध-कार्य किये हैं। इस प्रसंग में मैं अपने मित्र डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का उल्लेख करना चाहूँगा, जिन्होंने बड़ी ही यथार्थता के साथ बाणभट्ट में वृत्तान्तों के आधार पर उस युग का सांस्कृतिक विवरण प्रस्तुत किया है तथा रेखा एवं रंगीन चित्रों के आधार पर उस युग की एक झाँकी प्रस्तुत की है। मैंने सुझाव दिया था कि बाणभट्ट के वृत्तान्तों के आधार पर रेखा-चित्रों एवं रंगीन चित्रों का एक एलबम तैयार किया जाय। मेरा दूसरा सुझाव यह था कि बाणभट्ट ने जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, उनकी एक सूची तैयार की जाय। कहना न होगा कि शोध-कार्यों की दृष्टि से ऐसी सामग्री की बहुत बड़ी उपयोगिता है। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की सूची तैयार करने का काम कदाचित हाथ में ले लिया गया है; और यह काम हो रहा है। रेखा एवं रंगीन चित्रों के एलबम तथा पारिभाषिक शब्दों की सूची तैयार करने के बाद मैंने यह आशा की थी कि बाणभट्ट की रचनाओं के—विशेष कर हर्षचरित और कादम्बरी के प्रामाणिक संस्करण तैयार किये जाँय, और इस निमित्त इन ग्रन्थों के जो भी पाठ भिन्न-भिन्न स्थानों एवं भाषाओं में अनुवाद के रूप में उपलब्ध है। उनकी जाँच की जाय।

भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं में भी बाणभट्ट के ग्रन्थों के अनुवाद मौजूद हैं। उचित तो यह होगा कि इन सभी सामग्रियों

की जाँच की जाय; और एक प्रामाणिक संस्करण तैयार किया जाय। आशा की जानी चाहिये कि साहित्य अकादमी इस काम को अपने हाथ में लेगी।

(३)

बाणभट्ट की मनोवृत्ति बड़ी विचित्र थी। उनके चरित्र में व्यक्तिवाद का पुट था, और वह किसी भी सत्ता के समक्ष झुकनेको तैयार नहीं थे. फिर भी यह देखा जाता है, कि उन्हें जहाँ कहीं से भी जो कुछ सहायता मिली है, उसके प्रति उन्होंने आभार प्रदर्शित किया है। वह महान मेधा के स्वामी थे, और उनकी जिज्ञासा का भी कोई अन्त नहीं था। यही कारण है कि वह विस्तार में जाकर वस्तुओं, तथ्यों और घटनाओं का विवरण प्रस्तुत कर सकते थे।

उनके शिक्षक कौन थे, इनका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है। किस पाठशाला या किस महाविद्यालय में उन्होंने शिक्षा पायी, इसका भी कोई विवरण उनके साहित्य में नहीं मिलता। कदाचित इसका कारण यह है कि वह यह सारे विवरण अपने परिवार के सदस्यों को दे रहे थे। और उनके परिवार के सदस्य तो उनकी शिक्षा-दीक्षा के बारे में जानते ही थे।

वैदिक एवं बौद्ध साहित्य तथा दर्शन का यथेष्ट ज्ञान बाणभट्ट को था। हर्षवर्द्धन के साथ उनका जो प्रथम वार्तालाप हुआ था, उसी में बाणभट्ट ने अपने इन विषयों के ज्ञान का उल्लेख किया है। बहुत संभव है अपने समकालीन विद्वान हुएन त्सांग की तरह उन्होंने भी नालन्दा में बौद्ध-दर्शनका अध्ययन किया हो। किन्तु नालन्दा, वाराणसी या किसी भी ऐसे विद्या-केन्द्रका उल्लेख हमें नहीं मिलता, जहाँ बाण-भट्ट ने विद्या की साधना की हो। यह भी संभव है कि घरपर रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया हो; और इसके सभी आवश्यक उपादान उन्हें घर पर ही उपलब्ध हो गये हों। बाणभट्ट का परिवार काफी सम्पन्न था, और कोई आश्चर्य की बात नहीं कि परिवार ने उन्हें सारी सुविधायें जुटा दी हों। बाणभट्ट ने अपनी यात्राओं के बारे में भी कोई विस्तृत विवरण नहीं दिया है। यदि वह ऐसा करते तो कितना अच्छा होता।

उनके ऐतिहासिक लेख अत्यन्त महत्व के हैं। यह मान्य है कि बाणभट्ट और हुएन त्सांग ने हर्षवर्द्धन और उसके साम्राज्य के बारे में जो विवरण प्रस्तुत किये हैं, उनमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

यह द्रष्टव्य है कि बाणभट्ट ने हर्षवर्द्धन के जीवन-चरित्र के बारे में अधूरी सामग्री प्रस्तुत की है। जहाँ-तहाँ उन्होंने जो ऐतिहासिक संकेत दिये हैं, उनका

अर्थ समझ में नहीं आता। किन्तु इसके लिये उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर भी उनके साहित्य में उस प्रतिक्रिया की अनुगूंज सर्वत्र दीखती है, जो उनके मनमें हर्षवर्द्धन के साथ प्रथम साक्षात्कार के समय उत्पन्न हुई थी। यद्यपि बाणभट्ट का वातावरण धार्मिक भावनाओं एवं दार्शनिक चिन्तन से ओतप्रोत था; फिर भी उन्होंने जिन वस्तुओं का विवरण प्रस्तुत किया है, उससे उनकी योग्यता और यथार्थ के वर्णन करने की क्षमता ही प्रगट होती है। सत्य तो यह है कि बिना बाणभट्ट के साहित्य का अध्ययन किये गुप्त-काल तथा उत्तर गुप्त-काल का सांस्कृतिक अध्ययन अधूरा रह जाता है। संस्कृत साहित्य का यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि बाणभट्ट स्वयं कादम्बरी की रचना सम्पूर्ण नहीं कर पाये। उनके आदेश पर उनके मृत्यूपरान्त यह काम उनके पुत्रने पूरा किया। 'हर्षचरित' के अधूरा रह जाने से तो और भी बड़ी क्षति हुई है। पर यह काम किन परिस्थितियों में, और क्यों अधूरा रह गया, इसके बारे में अब सिर्फ अनुमान ही लगाये जा सकते हैं।

(४)

इस ग्रन्थ में जो लेख प्रकाशित हो रहे हैं, वे बाणभट्ट के साहित्य के वरिष्ठ एवं कनिष्ठ अध्येताओं द्वारा तैयार किये गये हैं। जिन विषयों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उनमें बाणभट्ट के साहित्यिक आकलन के अलावा, वाणभट्ट के व्यक्तित्व एवं बाणभट्ट की शैली भी समाविष्ट है। बाणभट्ट का जन्म-स्थान, परिवार आदि के बारे में भी विवेचन किया गया है। बाणभट्ट वत्स गोत्र में उत्पन्न द्विज थे, यह ठीक है, किन्तु वर्तमान जाति-प्रथाके आधार पर उनका और भी अधिक वर्गीकरण करना उचित नहीं है। बाणभट्ट अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के प्रतिभाशाली विद्वानों में से एक हैं; और उन्हें क्षेत्र या जाति-विशेष में सीमित करना, उनके महत्व को कम करके देखना है।

आशा है कि इस ग्रन्थके प्रकाशन के बाद बाणभट्ट की रचनाओं पर अध्ययन मननका क्रम जारी रहेगा; और इस प्रकार के अन्य प्रकाशनों का सिलसिला भी चलता रहेगा। और इस प्रकार हम उस महान साहित्यकार के प्रति जिसने भारतीय संस्कृति को सम्पन्नता प्रदान कर हमपर अनुग्रह किया है, अपनी कृतज्ञता अर्पित कर सकेंगे।



INTRODUCTORY

by

S. V. Sohoni

I

A master craftsman of literary construction Bana had designed the contents of his Ucchwasas of Harsa Charita extremely carefully. That Harsa Charita is an incomplete biography of Harsavardhana, is generally agreed to. Apparently, it could not be completed according to Banabhatta's plan. Operating on a well recognised principle of parabhaga.[1] Banabhatta has shaped a vary palpable contrast between his life as lived in his village, and what he first saw by way of the surroundings of an imperial camp. The rural atmosphere of Ucchwasa I stands out when taken along with that of a rajakula in Ucchawasa II: and this was deliberate. While dealing with his career before meeting Emperor Harsavardhana, Banabhatta found it desirable to give aa account of his own career up-to-date, along with an adequate idea, by way of implication, as to why he had chosen to stick to his rural headquarters, inspite of his knowledge of administrative organisations, educational institutions and of different regions. [Incidentally, he gave a distinct indication that his ancestors had occupied a site wich was in present day Aurungabad district : there is more than one statement that for reaching that site, people had to cross the Sona from its western bank.] Later on, in Ucchwasa II, Banabhatta has

1. वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः । as pointed out by Shankara in his tika on Harsa Charita.

stated (because he had an appropriate context to do so) that his ancestors had been honoured even by Gupta emperors. There is little doubt that he belonged to a very affluent family. He has equally deliberately given a full list of those with whom he kept company during his earlier travels, a party of 44 persons in all, perhaps, to indicate his own personal preferences and independent outlook towards life, but mainly in conformity with his artistic device of promoting a genuine rural atmosphere in order to emphasise its contrast with life in royal camp. An interesting hint given by Banabhatta, was that he had returned to his village after wandering about with his companions -- indicating a preference in favour of an independent life as against over adopting an administrative career. A rajakula was associated with a king's secretariat. Banabhatta states that he had known many such. There is little doubt that Ucchwasa I was so devised in respect of its contents and phrasing that it stressed the later fact of Banabhatta acquiring intellectual attractions of town life and royal favours. In Ucchwasa II, the first prose pragraph was deliberately inserted in order to stress the asrama surroundings in Banabhatta's village and how happy he felt in being with his own brethren in what really was a persuit of learning while living peacefully on a joint family basis in completely rural surroundings.

The famous description of the summer season, which follows, was also meant to give a very natural background of the countryside to the commencement of his association with the Emperor and the artificial and vexation life which a royal court would impose thereafter.

Inspite of his well stated dislike towards that artificial life which was firmly associated in his own mind with that a royal court, what took Banabhatta to meet Harsavardhana ? It is important to frame this question and to answer it in precise terms. Briefly put, he went to his emperer's camp on the other side of the Ganga after crossing the present day

Bhojpur district, in response to a message from his well-wisher, Prince Krishna, a cousin of Harsavardhana. This message was, to the effect that certain people had made wrong statements about Banabhatta which had been accepted as correct by the Emperor : and that it wes necessary that in order to dispel these incorrect notions, Banabhatta himself should wait upon Harsavardhana, without any further loss of time.

It was an important occasion in Banabhatta's life - his first critical audience with his emperor. We have plenty of literary evidence which suggests that as a result of his intimate association with Harsvardhana, Banabhatta gained very large financial benefits.[2] Characteristically enough, Banabhatta himself summed[3] up Harsavardhana's favourable response in somewhat down-gradad terms, which do not show any mark of full throated enthusiastic endorsement of what we know independentally about wealth being canferred on him by Harsavardhana on an impressive scale which became quite legendary in course of time.

Harsavardhana's response to Banabhatta on being presented in audience has received detailed and deserved appreciation from scholars. But it demands a closer analysis in order to reveal its true nature and purport. The word, 'bhujanga', which is the key to Emperor Harsavardhana's comment on Banabhatta, "mahan ayam bhujangah", with the later addition, "Iti asmabhih srutam", was very

---

2. There are many statements to this effect in later Sanskrit literature e. g.—

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किता कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परीहासताम् ॥

३. स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति ।

हर्षचरित उ० २, अन्तिम वाक्य

significant. 'Bhujanga' did mean an immoral type of a person addicted to gay life. But it also meant a literary artist who mainly employed puns and derived enioyment by using words and phrases yielding more than one meaning. It should not be overlooked that Banabhatta was summoned to Harsavardhana' court in the context of his literary accomplishments. There was genuine reason why Prince Krishna did so. That was because Harsavardhana was gathering around him, a literary circle of prominent writers; and had even given proof of his own literary pursuits and composition. It was the prospect of such a gathering of literary scholars and the probability that Banabhatta's merits would be overlooked if he were to default in seeking an audience that had prompted Prince Krishna to get him there.

The word 'bhujanga' has a semantic history of its own which deserves notice, in this connexion. It is synonym of words like Vita, Vyalika, and dhurta; and these words, in turn, had been applied to a category of authors called Satpradjna or bidagdha, whose main forte was to write expressions meant to expose people through sharp wit and puns. Their most favourable appreciation is that contained in a stanza,[1] quoted in Sabda-Kalpadruma.

Banabhatta's flair for slesa or multipurpose expressions is well known. It was a literary capacity which had attained a mature growth even before he was patronised by Harsavardhana. His attainments as exponent of 'slesa' had doubtless attracted wide notice. Such an achievement presupposes possession of a high intellectual calibre, which Banabhatta amply demonstrated in his work – and which, however, must have been the cause of jealousy and despair of the literary circle which had entrenched itself in Harsa-

१. धर्मार्थकाममोक्षेषु लोकतत्त्वार्थयोरपि ।
षट्सु प्रज्ञास्ति यस्योच्चैः स षट्प्रज्ञ इति स्मृतः ॥

vardhana's court before Banabhatta went there. In this coterie of authors could easily be counted Mayura, who was also related to Banabhatta, and Matanga-Diwakara, a skilled vercifier.

When Banabhatta approached Harsavardhana in his court, he greeted his sovereign according to the time honoured style of learned men. His entry led to Harsavardhana's famous observation, "Mahan ayam bhujangah", followed by an explanation that was hearsay account heard by him, on Banabhatta's strong remonstration claiming possession of a lot of learning, sober philosophic outlook and complete confidence in his own faculties and merits. What is important is to appreciate that Harsavardhan's comment was a short referance to Banabhatta's earlier fame as a master of puns, in contrast with Banabhatta's assertion of unblemished scholarship. Even Shankara, the famous commentator of Harsa Charita, noted, "Bhujango vito api'; and Banabhatta himself had referred to 'vita gosthi' iti vidagdhaih (Ucchwasa III). He has frequently punned on the word 'bhujanga'. Even 'Banabhatta's **biruda** 'Vasyavani Chakravarti', conferred on him by his imperial patron, undoubtedly, springs from a base of an extra ordinary capacity to employ words in order to suggest several alternative meanings. An excellent example is his retort to Harsavardhana in his very first audience, "Kame bhujangata" which has at least three different meanings.

How much Banabhatta detested serving a superior authority and loved his freedom, can be judged, if additional testimony were necessary, from Banabhatta's later account of the elaborate statement made by Hamsavega, an emissary of Bhaskara Varman, then ruling Kamarupa. When Harsavardhana made a delicately worded suggestion to Hamsavega that he would be pleased to receive his overlord at an early date, implying thereby a resort to a well known form of political submission to a suzerain power,

Hamsavega expatiated at length denouncing the consequences of a state of servitude. This statement so vehemently made by him, must run in all Sanskrit literature as unique exposition of caustic comment on contemporary civil service; and its significance for, appreciating the prevailing condition of state employees' life in Harsavardhana's administaation, cannot be over-estimated. Such a spirited exposition of evils confronting an employee of a public administration in that period, was made in response to a very carefully worded hint from Harsavardhana. Doubtless, this passage reflects deeply cherished notions entertined by Banabhatta himself. on account of deep seated sentiments so graphically described in it, he himself had chosen to forego any attempt aiming at securing privileges and advantages of a courtier, till that stage of his life.

The third Ucchwasa which is entitled 'Raja Darshana', is a supplementary account to that in Ucchwasa II and gives a backgrouud account of Harsavardhana's family. It is followed by Ucchwasa IV, devoted to events upto the birth of Banabhatta's imperial patron and is styled 'Chakravarti janmavarnanam'. The fifth Ucchwasa is captioned, Maharaja Marana Varnanam and contains an elaborate account of the passing away of Harsavardhana's father. The sixth Ucchwasa is named Rajapratijna Varnanam and deals with Harsavardhana's re-actions to the situation caused by his brother's murder, during negotiations consequent to a campaign against Sasanka and his allies. The seventh Ucchwasa contains an account of Harsavardhana's military forces on the march and of his conversation with an emissary of Bhaskara Varman, the ruler of Kamarupa, who had presented, significantly enough a royal umbrella to Harsavardhana - which justified the caption of the Ucchwasa 'Chhatralabdhi'.

The last in Harsa Charita, and without a caption, the

eighth Ucchwasa deals with incidents in the Vindhya region, especially, the circumstance leading to the rescue of Rajyasri. It is not difficult to imagine how Rajyasri, a widowed younger sister, assumed a relatively larger importance in her brother's life, if one were to take into account the fact that Harsavardhana's elder brother had also passed away, leaving Rajyasri as his main support in his family. But there appears to be even a more material reason why Banabhatta should have deemed it fit to devote an entire chapter to the recovery of Rajyasri. A Chinese pilgrim[5] of that period has noted that Harsavardhana carried on the administration of the kingdon with the help of his widowed younger' sister. Thus, Rajyasri was a very important personality in Harsavardhan's administration; and no contemporary could ignore this fact.

It can be surmised that Banabhatta next proposed to deal with Shasanka.

While Banabhatta himself has emphasized the perfect liberty which a poet exercises while practising his craft - Svayamutpadita chintasatanukula kavi matirivataralata na kinchittotprekshate'.

It is necessary to emphasise that Banabhatta's long passages possess individual structures of their own. They are very carefully prepared composition exercises, which spread out or close according to a deliberate design. It would be quite wrong to assume that there is no method in mapping out their length and breadth. One may also ask what could have been the process employed by Banabhatta in the preparation of his long paragraphs so as to fit them into a connected whole. Was it that he wrote dawn his impressions soon after they were experienced by him ? Is it likely that he wrote letters to his family members embodying his observations on what he saw, heard and felt ? Could it be that these despatches were, in due course, utilized by him in working

5. She-Kia-Fang-Che (page 57) Viswabharti (translated by Dr. P. C. Bagchi) written by Tao Lien (595-667 A.D.)

out his biography of Harsavardhana or, was it (as seem to be generally assumed consciously or unconsciously) that his prodigious memory had been drawn upon by him for purposes of his detailed narrations, on his return home? To my mind, even allowing for his genius for minute details and his extraordinary capacity to remember what he observed and experienced, there must have deen a body of notes which he utilized for his literary work. That people could send letters to their friends and relations in that period, would be easily conceded. That a scholar could compile such notes is also uncontestable. For how did even Huen-Tsang communicate to his countrymen in China, such elaborate accounts of regions, kingdoms, personalities, monuments, shrines, educational and religious institutions, without having recorded, from time to time, what he thought was useful information? If that was what Huen-Tsang would do, those very opportunities were undoubtedly available, probably on a larger scale, to Banabhatta also who had not to go outside his country and very likely lived quite comfortably till the end of his life.

It is wrong to assume that Sanskrit poets were not methodical or business like.

II

Unlike Kalidasa, who is claimed by many competing regions, there is no dispute whatsoever as to which part of India, Banabhatta had belonged. Admittedly, he hailed from Bihar - and most probably, from Aurangabad district, It was, therefore, very proper to pay recurring homage to this great genius of Sanskrit literature, whose works are such important sources of information of Indian culture, as it existed 1350 years age. The proposal for holding an annual celebration of a Banabhatta festival was put forward with this background.

Scholars, especially, my friend the late lamented Dr. Vasudev Sharan Agrawala, had demonstrated the accuracy

of Banabhatta's descriptions : his word paintings are perfect. I had, accordingly, suggested that an album should be prepared of paintings and sketches based on what Banabhatta wrote. Another recommendation, which I had made, was that there should be put together all technical terms used by Banabhatta that he uses a very large number of terms of technical parlance, is again a refreshing and very useful revelation of recent research.

I understand that a list of such words used by Banabhatta in their technical meaning, is under preparation-

Besides an album of paintings and sketches and a lexicon of technical terms, it was my hope that we should be able to prepare standard critical editions of Banabhatta's works, at any rate, of Harsa Charita and Kadambari, based on all available manuscript material. There is a plethora of editions of Banabhatta's principal works – in Indian languages and in English and other languages in foreign countries. But the ideal position of using all available manuscript materials does not seem to have been yet reached. One may hope that the Sahitya Academy, would take upon itself, this worthy task.

Banabhatta's psychology was quite peculiar. Though a strong individualist, unwilling to bend before Authority, he was keen to acknowledge whatever help he received from others. Possessing great curiosity coupled with an extra-ordinary high intelligence, he could easily be a master of details.

He made no reference to those who taught him. We will search in vain for particulars of what could be called his school or college career. Probably, in omitting any reference to it, he took advantage of the position that he was mainly addressing his own family members etc, who were expected to know all about these matters already .

He was fully familiar with Vedic and Buddhist literature and philosophy, vide his reference to them in his very first recorded conversation with Harsvardhana. He could have studied Buddhism at Nalanda, as did his famous contem-

porary Huen-Tsang. But there is no mention whatsoever of either Nalanda or Varanasi or any other seat of learning where he could have acquired proficiency in different subjects. It might be that he was taught at home and did not have to attend courses of education elsewhere-his family was rich enough to permit making suitable domestic arrangments Nor has Banabhatta written any particulars of his travels, much as one would have liked him to do so.

His historical passages are of great importance. It is generally agreed that there is little diverngence of statement on relevant topics between his recorded writings and those of Huen-Tsang, in regard to Harsvardhana and his empire.

As seen earlier, Banabhatta has left an incomplete account of Harsvardhana's biography. His historical allusions have not always been quite clearly understood, due to no fault of his. Yet his writings demonstrate the basic structure of his reactions to Harsavardhana'sf irst comment on him; though executed in an atmosphare of deep religious sentiments and a broad philosophical outlook, they are full of detail on all topics, which were handled so competently. In fact, no appreciation of Indian culture during Gupta and post-Gupta periods, as it existed in North India, could be complete without studying Banabhatta's works. It is a mute tragedy of Sanskrit literature that Banabhatta himself could not complete his 'Kadambari', a task ably performed by his son at his behest; and the less to literature and culture is the greater in that Harsa-Charita was left incomplete in circumstances about which one can only speculate.

The papers which are being published in this volume, have been contributed by both senior and junior students of Banabhatta's literature. The range of subjects dealt with in these pages, include appreciation of Banbhatta's personality as could be inferred from his literary works, besides studies of his literary style. Topics like Banabhatta's place of birth, his family etc. have also been discussed. While Banabhatta was a dwija, of Vatsa gotra, it would be unnecessary to classify him

further according to present day easte structure. He belonged to a galaxy of literary geniuses selected on an international basis; and it would be wrong to give him any lower denomination or regional or social group.

One may hope that this volume would be regularly followed by other publications of essays etc. dealing with Banabhatta's works, marking thereby a growing perception of his services to Sanskrit literature and Indian culture.



महाकविः बाणभट्टः

प्रथमो भागः

बाणे निबन्धमाख्यातुं वाणीं बाणाग्रदेवताम् ।
वन्दे वरदमुद्रोत्थ - शोणपाणि - विराजिताम् ॥

उपक्रमः

संस्कृत-काव्य-गगनेऽनेकेषां देदीप्यमान-कविनक्षत्राणामुदयः समये-समये समजनि येषामालोका अद्यावधि जगतीतलेऽसंकीर्णतया प्रसृताः सन्ति । वाल्मीकि-व्यास-भास-कालिदास-भवभूति-भारवि - माघ - श्रीहर्ष - सुबन्धु-दण्डि - बाणादिष्वसंख्येषु महाकविषु प्रत्येकप्रभाऽन्य-प्रभातो निश्चयेन व्यतिरिच्यमाना विभाव्यते विज्ञैः । तत्रादिकविर्वाल्मीकिर्भगवान्व्यासश्च सर्वेषामनन्तरभाविनां कवीनामुपजीव्यावेव वर्त्तेते । अन्येऽपि स्वनामख्याता महाकवयो विद्वन्मनोमन्दिरेषु श्रद्धाभरेण प्रतिष्ठापिताः सन्ति । इमे सर्वेऽपि महाकवयस्तानि काव्य-रत्नानि रचयामासुर्यान्यधीत्य चिरकालादिदानीं यावदसंख्याताः सहृदया, अमन्दानन्द-सन्दोहमन्वविन्दन्, अथ चाचन्द्र-दिवाकरं रसपिपासवस्तत्तत्काव्य-रसान् पायं पायं पिपासामुपशमयेयुः ।

एतेषामेव सुरभाषाकवीनामन्यतमो बाणभट्टो मदेतत्प्रबन्ध-प्रतिपाद्यः । महाकविर्बाणभट्टः संस्कृतगद्यलेखकानामाचार्यः । 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इत्येतदाभाणकं प्रसिद्धम् । एतन्निकष-परीक्षणे प्रखरमुत्तीर्णो बाणः । 'कादम्बरी' गद्यकाव्यस्यादर्शभूता । एनां कादम्बरीमेवानुजह्रु रर्वाञ्चोऽमरभाषागद्यकाराः ।

'उदयसुन्दरीकथा-तिलकमञ्जरी' नामानौ गद्यग्रन्थौ कादम्बरीं पुरोनिधायैव लिखितौ 'सोड्ढल-धनपालाभ्याम्'। अहमद्यैतस्य महाकवेर्विषये निबन्धमारभमाणः सच्चरित-चर्चावसर-लाभेन प्रसीदामि विषीदामि च—'अनुज्झितार्थसंबन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः' इति कटु-सत्य-स्मरणेन। फलतोऽहमधुना प्रसाद-विषादोभयाक्रान्त-हृदयोऽपि 'श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्' इति विश्वासेनाग्रे पदमाधातु कामये।

बाणभट्टस्य समयः

भारतीयनृप-परम्परायां हर्षवर्धनोऽतिजनप्रियो निजजीवने सर्वथा सफलश्च राजा समजायत। स्थानेश्वराभिधानायां राजधान्यां निवसताऽनेन महावीरेण राज्ञा नय-पराक्रमाभ्यां सर्वानरातीन् विजित्योत्तरभारते ६०६ तमं खिरताब्दमारभ्य ६४८ तमं खिस्ताब्दं यावदात्मनश्चक्रवर्त्तित्वं स्थापितम्। नागानन्दादिरूपकनिर्मातुर्महाकविपदवीसभाजितस्य विदुषामाश्रयस्यास्यनृपतेः राजसभायाः प्रमुखः सदस्यो मम प्रबन्धनायको बाणभट्टः। ६२९ तमवर्षात् ६४५ तमवर्षं यावद् भारते भ्रमतश्चीनदेशीयस्य 'ह्वेनच्वांग' नामकस्य महापर्यटकस्य स्वकृत-यात्रा-वर्णन-लेखतोऽपि संवदतीमं विषयम्।

एवञ्च हर्षवर्धनसभासदस्यस्य बाणस्यापि सुनिश्चितः समयः। अत एव सप्तमशतकस्य पूर्वभागो बाणस्याविर्भावकाल इत्यत्र प्रायो नैतिहासिकानां कश्चित्कोलाहलः। ७७९ तम खिस्तसंवत्सरतः ८१३ खिस्तसंवत्सरं यावद् भारतभुवमलङ्कृतवता वामनेन सर्वतः प्राक् स्वकीये 'काव्यालङ्कारसूत्र' नामके ग्रन्थे बाणकृतकादम्बरीकाव्यस्यैको गद्यांशः समुद्धृत इति तत्प्रामाण्येनापि बाणस्य ७७९ तमवर्षप्राक्कालिकत्वं सिद्ध्यति।

सत्येवमसंदिग्धो बाणाविर्भावकालः पूर्वोत्तरवर्त्तिनां कवीनामाविर्भावकालस्य निर्णयेऽपि प्रचुरं साहाय्यमर्पयतीति विदुषां विचारः।

बाणभट्टस्य जन्मस्थानम्

हर्षचरिताख्ये ग्रन्थे स्वकीयवंशप्रथमपुरुषपरिचयं प्रयच्छन् बाणो लिखति यत् सुलभकोपस्य दुर्वाससः शापेन सरस्वती सह सावित्रीनामिकया सख्या ब्रह्मलोकाद् भूलोकमवतरन्ती शोणापरनामानं हिरण्यवाहन्नाम महानदं ददर्श। दृष्ट्वा तं महानदं तद्रमणीयताकृष्टहृदया तत्तीर एव स्थातुमिच्छन्ती तस्य महानदस्य पश्चिमे तटे वासमरचयत्[1]। कियत्कालानन्तरं तस्य महानदस्य परतीरे निजाश्रमनिवासिनं स्वजनकं च्यवनाख्यं महामुनिं साक्षात्कर्तुं दधीचः समाजगाम। स्वावासदेशोपान्तमार्गेण गच्छन्तं दधीचं दृष्ट्वा सरस्वती तत्रानुरागं दधौ। दधीचोऽपि तस्यामनुरक्तः। पश्चाद् गान्धर्वेण विधिना दधीचः सरस्वतीमुपयेमे[2]। व्यतीतेषु वर्षेषु सरस्वती सारस्वतं पुत्रमसूत[3]। प्रसूय च सुतं सरस्वती पुनरपि ब्रह्मलोकमगच्छत्। ब्रह्मलोकं गतायां तस्यां दधीचो भार्गववंशोत्पन्नस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालानाम्नीं मुनितनयां स्वपुत्रसंवर्धनाय न्ययुङ्क्त। एकस्तनयः सारस्वतसमवयस्कोऽक्षमालाया अप्यासीत्, यस्य 'वत्स' इति नाम पितरौ चक्रतुः। समवयस्कयोः सारस्वतवत्सयोः सोदरयोरिव स्पृहणीया प्रीतिरासीत्। अथ मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्यासंभारः सारस्वतस्तस्मिन्नेव वयसि वत्सेऽपि समस्तं वाङ्मयं संचारयामास। कृतविवाहस्य वत्सस्य कृते तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीतिकूटनामानं निवासं सारस्वतश्चकार[4]। तस्मिन् प्रीतिकूट-

---

1—"अपश्यच्च हिरण्यवाहनामानं महानदं यं जनाः शोण इति कथयन्ति।......तस्यैव तीरे वासमरचयत्।...तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्।" (हर्षचरितम् प्रथम उ०)

2—"आजगाम च...मालतीद्वितीयो दधीचः। आगत्य च...यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथानुरागः शिक्षयति तथा तामभिरामां रामामरमयत्।" (तदेव)

3—"अथ दैवात्सरस्वती बभारगर्भम्। प्रसूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामम् तनयम्।" (तदेव)

4—"चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम्।" (तदेव)

नाम्नि ग्राम एव वत्सात् पावनो वंशः प्रावर्तत । क्रमेण तस्मिन्नेव वात्स्यायनकुले बाणो जनिमलभत[1] इति । एतावानेव संकेतो बाणस्य जन्मस्थानविषये तद्ग्रन्थादुपलभ्यते । इयता संकेतेनैतावन्निश्चेतुं शक्यं यत् शोणनदस्य पूर्वस्मिन् तटे वर्तमानः प्रीतिकूटनामा ग्रामो बाणस्य जन्मस्थानसौभाग्यं भेजे इति । परमसौ ग्रामोऽधुना क्वास्ति, केन च नाम्ना सांप्रतं प्रथते इत्यादिका वार्ताऽधुनावधि अनिश्चितैवास्ते । एतद्विषये ये केचनाल्पं बहु वाऽन्वेषणं व्यधुस्तदपि संदिग्धम् मिथो मतभेदग्रस्तञ्च ।

१—पार्वतीपरिणयनाटकस्य संक्षिप्तविज्ञप्तौ 'मङ्गेशरामकृष्णतैलङ्ग' महोदयेन प्रमाणं किमप्यनुद्धरतैव "कश्मीरेषु वात्स्यायनवंशोऽस्य संभूतिः" इत्युल्लिख्य बाणस्य जन्म काश्मारदेशे स्वीकृतम् ।

परमिदं मतं सर्वथा प्रमाणशून्यम् अत एव न केनचिदन्येन स्वीकृतमिति सर्वथोपेक्ष्यमेव प्रतीयते ।

२—कश्चिदपर आलोचको विहारप्रान्ते आरामण्डले बाणस्य जन्मस्थानं स्वीकरोति, तदर्थं प्रमाणमपि पुरस्करोति । प्रीतिकूटनामापभ्रष्ट-'पीरू'-नामकस्य कस्यचिद् ग्रामस्येदानीमस्तित्वमपि प्रकटयति । संस्कृतकवीनां मान्य आलोचकः श्रीबलदेवोपाध्यायोऽपि 'संस्कृतसुकविसमीक्षा' नामके स्वपुस्तके 'संभवतः' इत्येवंविधानिश्चयसूचकपदगर्भितेन वाक्येन बाणस्यारामण्डलवासित्वं समर्थयति[2] ।

1—"अथवत्सात् ...प्रावर्तत विमलोवंशः । यस्मादजायन्त वात्स्यायना... द्विजातयः ।". "तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु संसरति संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे कलौ · अलभत च चित्रभानुः.... बाणमात्मजम् ।" (हर्षचरितम्, प्रथम उ०)

2—'बाणभट्ट के पूर्वज शोण नद के तट पर प्रीतिकूट नामक नगर में निवास करते थे । यह स्थान संभवतः आरा जिले में था ।"

(चौखम्बा विद्याभवन 'वाराणसी'तः प्रकाशिता संस्कृतसुकविसमीक्षा ,पृ०सं० २६३)

३—श्रीपरमेश्वरप्रसादशर्मणा 'महाकवि वाणके वंशज तथा वासस्थान' नामके माधुरीपत्रिकाप्रकाशिते निजलेखे बाणस्य वासस्थानम् गयामण्डले स्वीक्रियते। विद्वद्वरेण्येन वासुदेवशरणाग्रवालमहोदयेनापि 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' नामकस्य पुस्तकस्य टिप्पणे मतमेतन्मूललेखकशब्दैरेवोद्धृतम्। तच्च मया तत एव टिप्पणतः समुद्ध्रियते[1]। एतल्लेखस्याध्ययनानन्तरं मम मनसि 'गया' पक्ष एव प्रबलो युक्तिसंगतश्च प्रतिभाति। वस्तुत एतद्विषये इतोऽधिक-

---

1—"शोण नद के किनारे खोज करने से च्यवन ऋषि का आश्रम आजकल भी 'देवकुर' (देवकुण्ड) के नाम से एक सुविस्तृत जंगल-झाड़ियों के बीच गया जिले में शोण नहर के आसपास, शोण की वर्तमान धारा से पूर्व की ओर गया से पश्चिम रफीगंज से १४ मील उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ है। बाण का जन्मस्थान इसी के आसपास कहीं होगा। और भी खोज करने पर इस च्यवनाश्रम के आसपास चारों ओर वच्छगोतियों की कई एक बड़ी-बड़ी बस्तियों का पता लगता है। जैसे—सोनभद्दर, परभैबँववाँ वगैरह। इन सब में सोनभद्दर आदिस्थान माना जाता है। मालूम होता है कि शोण के किनारे होने के कारण ही इस गाँव का नाम शोणभद्र पड़ा। यहाँ के रहने वाले सोनभदरिया विख्यात हुए जो अपने को वच्छगोतिया कहते हैं। वच्छगोतिया शब्द वत्सगोत्रीय शब्द का बिगड़ा रूप है। च्यवनाश्रम की समीपता, शोणभद्र की तटस्थता, तथा सोनभद्दर की प्राचीनता और वच्छगोतिया नाम के अस्तित्व के ऊपर विचार करने से यह धारणा हुए बिना नहीं रह सकती कि यह सोनभद्र गांव महाकवि बाण के बाल्यकाल का क्रीड़ास्थल था। यहीं पर बाण ने अपने कादम्बरी जैसे अनोखे उपन्यास और हर्षचरित जैसे अनोखे इतिहास की रचना की थी।"

बाण के सम्बन्धी मयूर के जन्मस्थान के विषय में भी इस लेख में लिखा है कि "गया जिला में पामरगंज स्टेशन से आजकल ग्रैण्डकॉर्ड लाइन के गया-मुगलसराय के बीच अनुग्रहनारायण रोड स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम १४ मील हट कर च्यवनाश्रम से ठीक बीस कोस दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक 'देव' नामक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ सूर्य का एक विशाल मन्दिर मयूरभट्ट की तपोभूमि का स्मरण दिला रहा है। यहाँ प्रति वर्ष कार्तिक और चैत्र की छठ को बड़ा मेला लगता है और सैकड़ों आदमी यहाँ कुष्ठरोग से छुटकारा पाने के लिए आते हैं। यह मन्दिर भी च्यवनाश्रम की तरह पश्चिम मुँह का है। इसके आसपास मरयार नाम के स्थानीय ब्राह्मणों की अनेक बस्तियाँ हैं जो अपने को मयूर का बंशज बतलाते हैं।" (हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' की टिप्पणी से उद्धृत)

स्यान्वेषणस्यावश्यकता विद्यते । आशासे निकटभविष्यति भविष्यत्यस्या आवश्यकतायाः पूर्तिरिति ।

बाणभट्टस्य मातापितरावन्ये पूर्वजाश्च

वत्साख्यान्मूल-पुरुषाद् वात्स्यायनवंशः प्रादुर्बभूव । तस्मिन्नेव वात्स्यायनवंशे क्रमेण कुबेराभिधो द्विजन्मा जन्म जग्राह । कुबेरस्य 'अच्युतेशानहर-पाशुपत' नामानश्चत्वारः पुत्रा अभूवन् । तेषां चतुर्णां सहोदराणां मध्ये कनिष्ठस्य पाशुपतस्य पुत्रोऽर्थपतिरासीत् । अर्थपतेरेकादशपुत्राः समभूवन्, येषां क्रमशः 'भृगुः, हंसः, शुचिः, कविः, महीदत्तः, धर्मः, जातवेदाः, चित्रभानुः, त्र्यक्षः, अहिदत्तः, विश्वरूपः, इति नामान्यासन् । एष्वष्टमाच्चित्रभानोः राजदेवीनामिकायां पत्न्यां समुत्पन्नो दिगन्तविश्रान्तकीर्तिरस्मच्चरितनायको महाकविर्बाणभट्टः । इयं वंशावली हर्षचरिते स्वयं बाणेन वर्णिता[1] । बाणेन कादम्बरी-प्रारम्भ-भागेऽपि कतिपयैः पद्यैः स्वपूर्वजानां संक्षेपतश्चर्चा कृता । यत्र कुबेरार्थपतिचित्रभानूनामेवोल्लेखो दृश्यते[2] । फलतस्तत्र बाणप्रपिता-

---

1—"वात्स्यायनकुले क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव द्विजपक्षपाती द्विजो जन्मलेभे । तस्याभवन्नच्युत ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्रह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सच्चक्रनन्दकास्तनयाः । तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद् भूभार इवाचलकुलस्थितिः स्थिरश्चतुरुदधि-गम्भीरोऽर्थपतिरिति नाम्ना समग्राग्रजन्मचक्रचूडामणिर्महात्मा सूनुः । सोऽजनयद् भृगुं हंसं शुचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं चित्रभानुं त्र्यक्षमहिदत्तं विश्वरूपं चेत्येकादशरुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान् पवित्रान् पुत्रान् । अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम् ।" (हर्षचरितम्, प्र० उ०)

2—"–'बभूव वात्स्यायनवंशसंभवो द्विजो जगद्गीत-गुणोऽग्रणीः सताम् ।
अनेक-गुप्तार्चित-पाद-पङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः ॥'
"हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत सुपर्णो विनितोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥'
'स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपमं क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम् ॥'
..................ततः सुतो बाण इति व्यजायत ।'–" (कादम्बरीप्रारम्भश्लोकाः)

मह्स्य पाशुपतस्य नाम नायातम् । मातू राजदेव्या अपि तत्रोल्लेखो नास्ति । अत्र हर्षचरितोक्तनामक्रम एव विश्वसनीयः प्रतीयते ।

बाणभट्टस्य शैशवम्

महाकवेर्बाणस्य बाल्यकालः सुखदुःखोभयमिश्रितो व्यतीतः । सुख-दुःखयोश्च दुःखस्यैव मात्रा प्रायो विपुला । यतो बालजीवने मातुः सहजः स्नेह एव महत्तमं सुख-साधनं भवति, मातुः क्रोड एव बालानां तारताः क्रीडा यथोचितं प्रसारमासादयन्ति, मातृमुखहास एव शिशुसहजहासहेतुर्भवति, मातैव तनयस्य बाल्यकालोचित-विविधापराध-मर्षणे क्षमते, मातुस्तास्ता वात्सल्यपूर्णाश्चेष्टा दृष्ट्वैव बालस्य नयने नृत्यतः । परन्तु बाणस्य शैशवं मातृ-सुख-विहीनमेव निरगात् । जननानन्तरं नचिरादेव बाणस्य माता परलोकं प्रयाता । मातुर्मरणानन्तरं चतुरश्चित्रभानुः पितृत्वेन सहैव मातृत्वमपि निरुवाह, अतो मातृविरहजं कष्टं न तथाऽन्वभवद् बालो बाणः । किन्तु विधिर्बाणस्य पितृसुखमपि द्रष्टुं नाक्षमत । चतुर्दशवर्षदेशीय एव बाणः पितृवियोगदुःखमप्यनुभवितुं पात्रीकृतो विधिना[1] । हन्त ! दुर्वारो दुर्दैव-विलासः ।

बाणभट्टस्य शिक्षा

यद्यपि महाकवेर्बाणभट्टस्य शिक्षायाः क्रमबद्धः प्रकारो न विज्ञातो भवति, तथाप्येतावन्निश्चयेन वक्तुं शक्यन्, यद् बाणेनोच्चकोटिका शिक्षा प्राप्ता, अपि च तेन द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां शिक्षा लब्धेति । तत्रैकः प्रकारो गुरुशिष्यभावानुगतः, अपरश्च देशपर्यटनप्रसङ्गे विविधेषु शिक्षासंस्थानेषु विविधासु गोष्ठीषु च पठन-पाठन-वाद-वितण्डा-व्याख्यानादीनां दर्शन-श्रवणाभ्यामुपबृंहितः ।

---

1 – "स बाल एव बलवतो विधेर्वशादुपसपन्नया व्ययुज्यत जनन्या । जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत् । अवर्धत च तेनाधिकतरमाध्रीयमानधृतिर्धाम्नि निजे । ······अस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पिताप्यदशमीस्थ एवास्तमगमत् ।" (हर्षचरितम्, प्र० उ०)

बाणस्य ग्रामे प्रीतिकूटे तदीयाप्तसम्बन्धिनां गृहेषु संस्कृतस्य विविधानां विषयाणामध्ययनाध्यापनयोः साधीयान प्रबन्ध आसीत्। व्याकरण-न्याय-मीमांसा-काव्य-कर्मकाण्ड-वेदानामध्यापनं नियमितरूपेण प्रीतिकूटे प्रचलति स्म। हर्षवर्धन-राजधानीतः प्रीतिकूटे परावृत्तेन बाणेनाध्ययनाध्यापनयोः छात्रसमूहस्य च विषये विशेषतः प्रश्नाः कृताः।[1] प्रीतिकूटे एवंविधाध्ययनाध्यापनव्यवस्थायां विद्यमानायां बाणोऽप्यवश्यमेव तत्र प्रागुक्तशास्त्राणामध्ययनमकरोदिति मत्येतुं शक्यते। बाणेन स्वयमपि प्रीतिकूटे स्वाध्ययनस्य संकेतः कृतोऽस्ति। बाणो हर्षचरिते आत्मकथां लिखन् कथयति—यत् मम गृहे सर्वाणि सांनिध्यान्यवर्त्तन्त, विभव आसीत्, विद्याध्ययनस्य परम्परा आसीत्, तथापि अहमित्वरोऽभूवम्, गृहं परित्यज्य देशाटनाय प्राचलम्[2] इति। अनयोक्त्या सुस्पष्टं प्रतीयते यदवश्यं बाणो निजग्रामे विद्यामध्यैष्टेति। पर्यटनकुतूहलिनो बाणस्य सुदीर्घं भ्रमणमपि लौकिकज्ञानेन सह शास्त्रीयज्ञानस्यापि वर्धकमभूत्। अद्यापि भ्रमणं शिक्षाया अङ्गमङ्गीक्रियत एव। अद्यापि शिक्षायात्रा आयोज्यत एव शिक्षणसंस्थाभिः। बाणेन स्वयमपि भ्रमणप्रयुक्तायाः स्वकीयज्ञानवृद्धेर्दिग्दर्शनमिङ्गितं कृतं वर्तते। स लिखति यत् "निरवद्य-विद्या-विद्योतितानि गुरुकुलानि सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः स्वभावगम्भीरधीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्म-वंशोचितां प्रकृतिमभजत।" इति। (हर्ष० प्र० उ०)

1—"यथाकालमधीयते बटवः? प्रतिदिनमविच्छिन्नो विद्याभ्यासः? कच्चित् स एव चिरंतनो यज्ञविद्याकर्मण्यभियोगः? तान्येव व्याकरणे परस्पर-स्पर्धानुबन्धाबन्ध्य-दिवसदर्शितादराणि व्याख्यानमण्डलानि? सैव वा पुरातनी परित्यक्तान्यकर्तव्या प्रमाणगोष्ठी? स एव वा मन्दीकृतेतरशास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः? कच्चित्त एवाभिनवसुभाषितसुधावर्षिणः काव्यालापाः?" (हर्षचरितम्, तृतीयोच्छ्वासारम्भभागः)

2—"सत्स्वपि ...... विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगात्।" (हर्ष० च० प्र० उ०)

एवमहं निश्चयेन वक्तुं शक्नोमि यद् बाणेन साङ्गवेदानां शिक्षाधिगताऽऽसी-दिति, बाणस्योक्तिर पिममेदं मन्तव्यं समर्थयति। प्रथमसाक्षात्कार एव हर्षवर्धनेन राज्ञा 'महानयं भुजङ्गः'इत्येव माक्षिप्तो बाणः कथयति—"राजन्! नैवं वक्तुमुचितम्। सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि।" इति।

बाणभट्टस्य गुरुः

बाणो हर्षचरिते स्वशिक्षाविषये किञ्चिल्लिखन्नपि स्वगुरुविषये किमपि नालिखत्। कादम्बर्याः प्रारम्भिकेषु श्लोकेषु एकः श्लोकस्तादृशोऽस्ति यत्र बाणभट्टस्य गुरोर्लघीयान् परिचयः प्राप्यते। यद्यपि कियन्तो वैदेशिका आलोचकाः कादम्बर्याः प्रारम्भिकाणां श्लोकानां बाणनिर्मितत्वे संदेहं प्रकटयन्ति, परन्तु नोचितोऽसौ संदेहः, यतः संस्कृत-कविमण्डलीपरिचयप्रवीणेन क्षेमेन्द्रेखण कादम्बरीप्रारम्भिकपद्यान्तर्गतं 'जयन्ति बाणासुर-मौलि-लालिताः' इति पद्यं बाणस्य स्वीकृतम्, अतः एते श्लोका बाणनिर्मिताः प्रमाणतया स्वीकर्तुं योग्याः।

"नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्त-सामन्त-किरीट-वेदिका-विटंक-पीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥'

इत्येतद् बाणस्य तत्पद्यम्। अत्र बाणेन 'भर्वोः' पाद-पङ्कजयोः प्रणामः कृतः, एतत्पद्यं देवनमस्कारात्परं खल-वर्णनाच्च पूर्वमुल्लिखितम्। अतइ दमनुमातुं शक्यते यदत्र गुरोरेव नाम बाणस्य विवक्षितमिति। कादम्बरीव्याख्याकारेण भानुचन्द्रेणापि अस्मिन् पद्ये गुरोरेव निर्देशः स्वीकृतः। परन्तु तेन 'भर्वोः' इत्यस्य स्थाने 'भत्सोः' इति पाठान्तरमास्थितम्। बाणनिर्मितेषु ग्रन्थेषु अन्यत्र क्वापि एतन्नाम नायातम्। सन्ततः प्राचीने 'सदुक्तिकर्णामृत' नामके सूक्तिग्रन्थे 'भर्वु' कवेर्नामैकं पद्यञ्च मिलति। 'शाङ्र्गधरपद्धतौ' 'भर्चु' नामकस्य कवे द्वौ श्लोकौ मिलतः। 'सुभाषितावल्याम्' 'भश्चु' नामकस्य कवेः त्रयः श्लोका मिलन्ति, तत्र द्वौ तावेव यौ 'शाङ्र्गधरपद्धतौ' 'भर्चोः' कथितौ। फलतः सुप्रसिद्धसूक्तिग्रन्थत्रयावलोकनेनास्य कवेर्विभिन्ननामत्रय

मुपलभ्यते—भर्नुः, भर्चुः, भश्चुश्चेति । किन्तु नामत्रयमेतदेकस्यैव नाम्नो रूपान्तरं प्रतीयते । एवञ्च 'भर्नु' नामकस्य कवेः पूर्णा ख्यातिः प्राचीनकाले आसीदिति सिद्ध्यति ।

'आहूतोऽपि सहायैरेमीत्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि ।
गन्तुमना अपि पथिकः संकोचं नैव शिथिलयति ।।'

इत्येकः पूर्वोक्तसूक्तिग्रन्थसंगृहीतो 'भर्वोः' श्लोको ध्वन्यालोके आनन्दवर्धनेनाप्युदाहृतः । बाणभट्टस्य गुरुः' इति युक्त्या 'भर्वोः' स्थितिकालः खृष्टीयषष्ठशतकस्यान्तिमभागः संभाव्यते । भर्वुः कतमत् स्थानं स्वजन्मनाऽलंचकारेति विषयेऽपि किञ्चिदनुमातुं शक्यते, यतो बाणेनोक्तप्रणामपद्य एव मौखरिद्वारा भर्वोः पूजाया निर्देशः कृतः । मौखरिनरेशाश्च वर्धननरेशाभ्युदयकालात् प्रागुत्तरभारतेऽतिप्रभावशालिन आसन् । हर्षस्य पिता प्रभाकरवर्धनः स्वकन्यायाः राज्यश्रीनामिकायाः विवाहं मौखरिवंशोत्पन्नेन ग्रहवर्मणा सह कारितवान् । एषां मौखरिणां मूलस्थानविषये ऐतिहासिकानां महान् मतभेदोऽस्ति । परन्तु अधिका विद्वांसो मौखरिणां मूलस्थानं विहारप्रान्तस्य गयामण्डलमङ्गीकुर्वते । यदीयं वार्ता सत्या, तर्हि गयामण्डलान्तर्गत-प्रीतिकूट-नामक-बाणनिवासतो नेदीयस्येव क्वचिद्देशे बाणभट्टगुरोर्भर्वोरपि वासस्थानं स्यादिति वक्तुं युज्यते ।

बाणभट्टस्य योग्यता

बाणभट्टस्य योग्यताया वर्णनं न यस्य कस्यचित् कार्यम् । बाणभट्टयोग्यतावर्णनाय बाणभट्टस्येव योग्यता समपेक्षिता, परन्तु 'देवो भूत्वा देवं यजेत' इत्येवंविधे बन्धने वर्तमानेऽपि यथा साधारणो मनुष्यो देवाराधनाय प्रयतते, तथैवाहमपि बाणभट्टयोग्यतां वर्णयितुं प्रवृत्तोऽस्मि ।

बहुमुखी गम्भीरा च बाणभट्टस्य योग्यता । बाणभट्टः स्वयमपि तु साङ्गवेदाध्ययनमात्मीयमुल्लिख्य शास्त्र-काव्य-संगीत-नृत्य-वादित्रादिनानाविधगोष्ठीसेवनञ्च स्वीयमुपवर्ण्य

समसुचदेव स्वकीयां बहुमुखीं योग्यताम् । परं न तावती तदुक्तिरेव तस्य योग्यताया बहुमुखीत्वे प्रमाणम्, अपि तु तद्ग्रन्थाध्ययने पदे-पदे तदीययोग्यतांया बहुमुखीत्वस्य प्रमाणमुपलभ्यते ।

अन्य-कवि-कृत-काव्यानां का कथा, पाणिनेरपि काव्ये 'च्युतसंस्कृति' दोषो लभ्यते गवेषकैः । परन्तु विशालयोर्बाणरचितयोर्द्वयोर्गद्यग्रन्थयोः प्रायः एकोऽपि 'च्युतसंस्कृति' दोषो न शक्यते लब्धुम् ; किमितोऽधिकं प्रमाणं स्यात् बाणस्य व्याकरणशास्त्रनिष्णातताताम् ।

हर्षचरितं कादम्बरीञ्च पश्यतो जगतः पुरस्ताद् बाणस्य साहित्य-शास्त्रीय-योग्यतायाः प्रमापणाय मुधैव प्रयासः ।

पुराणे, धर्मशास्त्रे, आयुर्वेदे, फलितज्योतिश्शास्त्रे, शकुनशास्त्रे, कामशास्त्रे, कर्मकाण्डे, दर्शने, विशेषतो बौद्धदर्शने तन्त्रशास्त्रे राजनीतिशास्त्रे, भूगोलशास्त्रे गज-शास्त्रेऽश्वशास्त्रे, वनस्पतिशास्त्रे, संगीते, नृत्ये चाप्रतिहता योग्यता बाणस्यावर्तिष्टेति हर्षचरित-कादम्बरीकाव्ययोस्तत्तदंशानां पर्यालोचनेन सुस्पष्टं प्रतीयते ।

---

१ (क) बाणस्य पुराण-प्रवीणतायाः प्रमापणाय कादम्बर्यां प्रारम्भ भागवातशूद्रकवर्णने राज्ञः सर्वदेवमयता-प्रतिपादकं वाक्यं "ब्रह्मा जनार्दनः शम्भु रिन्द्रो वायुर्यमो रविः । हुतभुग् वरूणो धाता पूषा भूमि र्निशाकरः ।। एतेचान्य च ये देवाः शापानुग्रह-कारिणः । नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्व देवमयो नृपः ।" इति पुराणवाक्यं च तुलनीयम् ।

(ख) बाणस्यधर्मशास्त्रमर्मज्ञतानुमोदनाय हर्षचरित-पञ्चमोच्छ्वासगत प्रभाकरवर्धन-मरण-तत्पत्नीसतीभवनप्रकरण मीक्षणीयम् ।

(ग) बाणस्यायुर्वेदविज्ञान विद्वत्तावेदनाय हर्षचरितपञ्चमोच्छ्वासगत प्रभाकरवर्धन रुग्णता-वर्णनप्रकरणं कादम्बरीगत शूद्रकस्नानोत्तर-क्रिया-कलाप-वर्णनप्रसङ्गे 'चरक'-चर्चित 'धूम्रवर्ति' पानवर्णनञ्च पठनीयन् ।

(घ) बाणस्य फलितज्योतिश्शास्त्रज्ञतासमर्थनाय हर्षचरितचतुर्थोच्छ्वासगत हर्षवर्धनजन्म वर्णनम्, कादम्बरीगत चन्द्रापीडजन्मवर्णनञ्च दर्शनीयम् ।

बाणभट्टस्य जातिसंप्रदायौ

महाकविर्बाणः स्ववृद्धप्रपितामहं कुबेरं वर्णयन् तद्विशेषणतया द्विजपदं प्रायुङ्क्त हर्षचरिते कादम्बर्याञ्च—'क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव द्विजपक्षपाती द्विजो जन्म

(ङ) बाणस्य शकुनशास्त्रनिपुणतानिरीक्षणाय हर्षचरितपञ्चमोच्छ्वासगत प्रभाकरवर्धन-मरणावस्थावर्णनम् षष्ठोच्छ्वासगत-हर्ष-जय-यात्रा-वर्णनञ्च द्रष्टव्यम् ।

(च) बाणस्य काम-शास्त्रकुशलतावगतये कादम्बरीगतः कादम्बरी चन्द्रापीडयो प्रसङ्गोऽध्येतव्यः ।

(छ) बाणस्य कर्मकाण्ड-विषयक-वैदुषी-ज्ञानाय हर्षचरितद्वितीयोच्छ्वासस्य प्रारम्भभागो द्रष्टव्यः ।

(ज) बाणस्य बौद्धदर्शनाभिज्ञतायाः परिपोषाय हर्षचरितपञ्चमोच्छ्वासगत राज्यवर्धन-चित्रणं चिन्तनीयम् । बाणस्य सकल-दर्शन-सारग्राहित्व-विनिर्णयाय हर्षचरिताष्टमो-च्छ्वासगत दिवाकरमित्राश्रमवर्णनप्रसङ्गे श्रमो विधेयः ।

(झ) बाणस्य तत्र विद्या विज्ञान प्रमापणाय हर्षचरिततृतीयोच्छ्वासगत-वर्धनवंश-संस्थापक-पुष्पभूति-भैरवाचार्ययोः प्रसङ्गः पठनीयः ।

(ञ) बाणस्य राजनीति-शास्त्र-पाण्डित्यज्ञानाय सामान्यतः समस्त हर्षचरितं विशेषतः सप्तमोच्छ्वास-प्रारम्भभागो विभावनीयः ।

(ट) बाणस्य भूगोल-विद्या-वैदुष्य-वीक्षणाय हर्षचरितषष्ठोच्छ्वासगताष्टादशद्वीपचर्चा सप्तमो-च्छ्वासगत युद्धयात्रि हर्षकृतसंकथा च चिन्तनीया ।

(ठ) बाणस्य गजाश्वशास्त्रविषयकज्ञानविशेषसत्यापनाय हर्षचरितस्य द्वितीयोच्छ्वासे हर्षवर्धनराजभवनवर्णनम् षष्ठोच्छ्वासगत राज्यवर्धन जययात्रा वर्णनं च निरीक्षणीयम् ।

(ड) बाणस्य वनस्पतिशास्त्राचार्यत्वसमर्थनाय हर्षचरिताष्टमोच्छ्वासगत विन्ध्याटवो वर्णनं मननीयम् ।

(ढ बाणस्य संगीतशास्त्रपरिशीलन पाटवपरीक्षणाय कादम्बरीगतंमहाश्वेताकृत शिवा-राधनवर्णनं विलोकनीयम् ।

(ण) बाणस्य नृत्यशास्त्र पाण्डित्यपरीक्षणाय हर्षचरित द्वितीयोच्छ्वासगत ग्रीष्मवर्णनं चतुर्थोच्छ्वासगत हर्षजनमोत्सव वर्णनञ्च विलोकनीयम् ।

["एतच्च दिग्दर्शनमात्रम् । वस्तुतस्तु अन्येऽपिबहवः प्रसङ्गाः प्रसङ्गेऽस्मिन्नुद्धर्त्तु" योग्याः]

लेभे' 'वभूव वात्स्ययनवंशसंभवो द्विजो जगद्गीत-गुणोऽग्रणीः सताम्' इति च। स्वविशेषणतयापि महाकविरसौ कादम्बर्य्याम् द्विजपदं प्रयुङ्क्ते—'द्विजेन तेनाक्षत-कण्ठकौण्ठया' इति। परमेतावताऽपि महाकवेरस्य जातेर्विनिश्चयो न शक्यो विधातुम्। 'द्वाभ्यां=जन्मसंस्काराभ्यां जायते' इति व्युत्पत्त्या ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यात्मक-वर्णत्रयस्य बोधो द्विजपदाज्जायते, अतोऽन्यत्प्रमाणमन्वेषणीयम्। सत्यम्, तदपि न दुरापम्। बाणः कादम्बरीप्रारम्भे स्वपितामहमर्थपतिं द्विजन्मनां पतिम् प्राह—'द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः' इति। स्वमातरं चासौ ब्राह्मणीं ब्रूते हर्षचरिते—'अलभत च चित्रभानुः राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्' इति।

इत्थमिदानीं 'बाणो ब्राह्मणजातीयः' इत्यत्र न कश्चिद् विसंवादो भवितुमर्हति। किन्तु समस्यायाः समाधानमितोऽपि न जायते, यतो ब्राह्मणजातेः प्रसिद्धासु 'सारस्वत-कान्यकुब्ज-गौड-मैथिलोत्कल-शाकद्वीपीयादिशाखासु कतमा शाखा सुशोभिता बाणेन स्वजन्मनेति जिज्ञासा जागरितैव तिष्ठति। अस्याः समस्यायाः समाधानं कठिनम्, यतोन स्वजातीय-शाखा-विशेषनिर्देशो विहितः क्वापि बाणेन।

अस्यां स्थितौ अनुमानमेव शरणीकरणीयम्। अनुमानञ्च विभिन्नविधं भवितु मर्हति। भवतु नाम। ममानुमानेन तु बाणः शाकद्वीपीयो ब्राह्मणः। ममैवंविधेऽनु-माने कियन्ति कारणानि सन्ति।

जानन्त्येवैतिहासिका यत् हर्षवर्धनस्य पिता प्रभाकरवर्धनः परमादित्यभक्त आसीत्। बाणोऽपि हर्षचरिते लिखति 'निसर्गत एव च स (प्रभाकरवर्धनः) नृपतिरा-दित्यभक्तो बभूव। प्रतिदिनमुदये दिनकृतः स्नातः सितदुकूलधारी धवलकर्पट प्रावृतशिराः प्राङ्मुखः क्षितौ जानुभ्यां स्थित्वा कुङ्कुमपङ्कानुलिप्तो मण्डलके पवित्र-पद्म-राग-पात्र-निहितेन स्वहृदयेनेव सूर्यानुषक्तेदरक्तकमलषण्डेनार्घं ददौ। अजपच्च जप्यं सुचरितः प्रत्यूषसि मध्यंदिने दिनान्ते चापत्यहेतोः प्राध्वं प्रयतेन मनसा जञ्जपूको मन्त्रमादित्यहृदयम्' इति।

अस्यां स्थितौ प्रबलेयं संभावना यत् प्रभाकरवर्धनस्य राजसभायां शाकद्वीपीय-ब्राह्मणविदुषां प्राधान्यमतिष्ठदिति । यतः शाकद्वीपीया ब्राह्मणा अपि सूर्योपासकाः न केवलं सूर्योपासका एव, अपितु सूर्य-प्रसाद-प्राप्ति-माध्यमा अपि स्वीकृताः । भविष्यपुराणे कथाऽस्ति यत् 'कृष्णस्य पुत्रः शाम्बो दुर्वाससः शापेन कुष्ठरोगग्रस्तः पुनः सूर्योपासनया नीरोगोऽभूत् । ततः शाम्बेनैकं सूर्यमन्दिरं निर्मितं तथा शाकद्वीपतो मगानामष्टादशपरिवारा आनीय द्वारकायां निवासं ग्राहिताः द्वारकायां भोजैः सह वैवाहिकसंबन्धात् 'भोजक' पदेनापि व्यपदेश्या अभवन्' इति ।

प्रभाकरवर्धनो हर्षवर्धन जन्मकुण्डलीनिर्माणाय यं ज्योतिर्विदं समाहूतवान, सोऽपि शाकद्वीपीयो बाह्मण आसीत् । हर्षचरिते बाणस्यैवोक्तिरस्ति—"राज्ञः परमसम्भतः सर्वासां ग्रहसंहितानां पारदृश्वा त्रिकालज्ञानभाक् भोजकस्तारको नाम गणकः समुपसृत्य विज्ञापितवानिति ।"

'भोजका रविमर्चयित्वा पूजका हि भूयसा गणका भवन्ति, ये मगा इति प्रसिद्धाः' इति व्याख्यातारः । मगानां भोजकपदव्यवहार्यतायां बीजं भविष्यपुराणोक्तं प्रागुक्तमेव । 'शाकद्वीपीया मगा ब्राह्मणाः सूर्यमन्दिरस्य प्रतिष्ठां कारयन्तिस्म, संभवतस्तदानीं ज्योतिश्शास्त्रस्यापि कार्यं कुर्वन्तिस्म' इति वासुदेवशरणाग्रवाल-महोदयः ।

एवञ्च प्रभाकरवर्धनस्य राज्यकाले प्रधाना राजपण्डिताः शाकद्वीपिनो बाह्मणा इति सुसङ्गतम् । यद्यपि हर्षवर्धनो न सूर्यानन्यभक्तः श्रूयते, अपितु सर्वेषु देवेषु समानादरबुद्धिः सर्व-संप्रदाय-समन्वयवादी च प्रसिद्धस्तथापि पितृपरम्पराप्राप्तानां शाकद्वीपिनां पण्डितानां तद्राज्यकालेऽपि प्राधान्यं नाश्चर्यकरम् । प्रायः सूर्यभक्ताग्रणीः मयूरभट्टोऽपि शाकद्वीपी ब्राह्मणो बाणस्य श्वशुरतया बाणापेक्षया वृद्धः पितृपरम्पराप्राप्त एव हर्षवर्धनसभासदस्यः । प्रायो बाणजातीयानां बाणात् पूर्वतो हर्षवर्धनसभासदस्यानां

मयूरादीनामेव मुखेभ्यो बाणस्य विषये नानाविधानुच्चावचान् समाचारान् श्रुत्वा हर्षो बाणमाकारितवान् ।

भट्टोपाधिधारिणः शाकद्वीपिनो ब्राह्मणा अद्यापि सन्ति, गयामण्डले सांप्रतमपि शाकद्वीपिनां ब्राह्मणानां प्रतिष्ठितानि वैदुष्यवित्तानि च कुलानि विद्यन्ते । अतो गयामण्डलवासिनौ भट्टोपाधिधारिणौ श्वशुर-जामातृ-भाव-संबद्धौ मयूरबाणौ द्वावपि शाकद्वीपिब्राह्मणाविति मे मतम् ।

समभावेन सर्वान् देवान् भावयतः सर्वान् संम्प्रदायान् समभावेन संमानयतश्च हर्षवर्धनस्य निकटसम्पर्के यापितजीवनो बाणोऽपि प्रायो न सम्प्रदायविशेषपक्षपाती, अपि तु सामान्यसनातनधर्मावलंबिवत् त्रिदेवोपासक आसीत् । बाणोपास्याश्च त्रयो देवा ब्रह्म विष्णु-महेशाः । एतस्य पुष्टिः बाणकृतमङ्गलश्लोकेभ्योऽपि भवति ।

"रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृतये.......त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः" कादम्बरी-काव्ये प्रथमो मङ्गलश्लोकः । "जयन्ति बाणासुर मौलिलालिताः... ....त्र्यम्बकपाद-पांसवः" इति द्वितीयः । "जयत्युपेन्द्रः......." इति च तृतीयः ।

त्रिदेवोपासकोऽपि बाणः शिवेऽधिकां भक्तिं दधान आसीदिति तु वक्तुं शक्यम्, यतः कादम्बर्यां सामान्यतस्त्रिगुणात्मनो नमस्कारं विधाय बाणः प्रथमं शिवमेव विशेषतः स्तौति सहैव तत्र बाणपदं प्रयुञ्जानः श्लेषेण निजनामनिर्देशमपि विदधाति । हर्षचरिते तु मङ्गलश्लोके शिवयोरेव केवलो नमस्कारः, अत एव यदि कश्चित् बाणं शैवमुद्घोषयितुं वाञ्छति, तर्हि भवतु नाम सोऽपि कृतार्थः । हर्षवर्धननृपतेरपि शैवतायाः प्रवादः प्रचलत्येव ।

बाणभट्टस्य मित्रमण्डली

महाकवेर्बाणभट्टस्य सुमहन्मित्रमण्डलमासीत् । स्वमित्रमण्डलान्तःपतितनांचतुश्च-

त्वारिंशतो जनानां नामानि बाणेन परिगणितानि। तेषु द्विविधा जना आसन् सुहृदः सहायाश्च[1]। एतस्मिन्मित्रमण्डले चतस्रो नार्योऽप्यासन्। बाण-मित्रमण्डलस्येयं सूची तदानींतनस्यैकस्य सुसंस्कृतस्य नागरिकस्य बहुमुखीं सुरुचिं सूचयति। तस्मिन्मित्र-मण्डले केचन विद्ययाकवित्वेन च संबद्धा अपरे नृत्यगीताभ्यामनुबद्धाः, अन्ये मनोरञ्जनमात्र-सहाया आसन्। सहैव कियन्तः प्रतिष्ठिताः परिचारका अप्यभूवन्, तेषां बाणमित्राणां विषय-क्रमेण विभक्ता सूचीयमस्ति——

(अ) कवयो विद्वांसश्च

१——भाषाकविरीशानः। महाकविना पुष्पदन्तेनापभ्रंश पुराणभूमिकायामीशानस्य नाम्न उल्लेखः कृतः। २——वर्णकविर्वेणीभारतः। ३——प्राकृतभाषाकविः कुलपुत्रो वायुविकारः। ४-५——अनङ्गबाण-सूचीबाणौ बंदिजनौ, यौ सुभाषितानि पठतः। ६-७——वारबाण-वासवाणौ विद्वांसौ। ८——पुस्तक-वाचकः सुदृष्टिः यस्य कण्ठस्वरोऽतिमधुर आसीत्, अयमेव बाणं प्रत्यहं वायुपुराणं श्रावयतिस्म। ९——लेखको गोविन्दकः। १०——कथको जयसेनः, यो नानाविधाः कथाः कथयतिस्म।

(आ) कलाविदः

११——चित्रकारो वीरवर्मा। १२——स्वर्णकारः चामीकरः। १३——हैरिकः सिन्धुषेणः यो हीरकान् परिचिनोतिस्म, कर्तयतिस्म च। १४——पुस्तकृत् कुमारदत्तः, यो मृण्मयक्रीडनकानि रचयतिस्म।

(इ) संगीतनृत्यज्ञाः

१५——मार्दङ्गिको जीमूतः। १६-१७——वांशिकौ मधुकरपारावतौ। १८——दार्दुरिको दामोदरः, यो दर्दुरनामकवाद्यविशेषं वादयतिस्म। १९-२०——गायकौ

---

1 "वयसा समानाः सुहृदः सहायाश्च।" (हर्ष० प्र० उ०)

सोमिलग्रहादित्यौ। २१—गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः। २२—लासकः (नर्तकः) ताण्डविकः। २३—नर्तकी हरिणिका। २४—शैलालियुवा (भरतनाट्यप्रयोक्ता) शिखण्डकः। शिलालिनामाचार्यो नटसूत्राणां प्रवर्त्तकः पाणिनिना स्वाष्टाध्याय्यां स्मृतः। "पाराशर्य्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः" इति पाणिनिसूत्राम् (४-३-११०)

(उ) साधवः सन्यासिनश्च

२५—शैवो वक्रघोणः। २६—क्षपणको (जैनसाधुः) वीरदेवः। २७—पाराशरी सुमतिः। २८—मस्करी (परिव्राजकः) ताम्रचूडः। २९—कात्यायनिका (बौद्धभिक्षुकी) चक्रवाकिका।

(ए) वैद्या मन्त्रसाधकाश्च

३० भिषक्पुत्रो मन्दारकः। ३१ जाङ्गुलिको (विषवैद्यः) मयूरकः। ३२ मन्त्रसाधकः करालः। ३३ धातुवादवित् विहङ्गमः। ३४ असुर-विवर व्यसनी लोहिताक्षः, यो धन-लाभार्थं भूविवरे प्रविश्य यक्षराक्षसादीन् साधयति स्म,।

(ऐ) धूर्ताः

३५ आक्षिकः (द्यूतकरः) आखण्डलः। ३६ कितवो भीमकः। ३७ ऐन्द्रजालिकः चकोराक्षः।

(ओ) परिचारकाः

३८—ताम्बूलदायकश्चण्डकः। ३९ सैरन्ध्री (प्रसाधिका) कुरङ्गिका।
४० संवाहिका केरलिका।

(औ) प्रणयिनः

४१–४२–रुद्रो नारायणश्च ।

(अं) पारशवौ बन्धू

४३–४४–चन्द्रसेनमातृषेणौ । शूद्रजातीयमातृगर्भोत्पन्नो द्विजपुत्रः पारशवः । अनयोश्चन्द्रसेनो बाणस्यातिप्रियो विश्वासभूमिश्चासीत् । हर्षभ्रातुः कृष्णस्य दूतं मेखलकं भोजयितुं सत्कर्तुञ्चैनमेत्र बाण आदिष्टवानासीत्[1]

बाणभट्टस्य व्यक्तित्वम्

बाणस्य व्यक्तित्वं चतुर्विधानां प्रवृत्तीनां मिश्रणेन निर्मितं प्रतीयते । एकतस्तस्य स्वभावे विलासमयाभिजात्यस्य प्रभाव आसीत् । द्वितीयतस्तस्मिन् वंशोचितविद्यायाः प्रवृत्तिरवर्तत । तृतीयतस्तस्मिन् साहित्यस्य कलानाञ्चानुरागोऽभूत् । चतुर्थतश्च तस्य मनसि वैदग्ध्यस्य समावेश आसीत् ।

१–"अभवंश्चास्य वयसा समानाः सुहृदः सहायाश्च । तद्यथा—भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम् । प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ । विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ । कात्यायनिका चक्रवाकिका । वर्णकविर्वेणीभारतः । प्राकृतकृत् कुलपुत्रो वायुविकारः । बन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ । जाङ्गलिको मायूरकः । ताम्बूलदायकश्चण्डकः । भिषक्पुत्रो मन्दारकः । पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः । कलादश्चामीकरः । हैरिकः सिन्धुसेनः । लेखको गोविन्दकः । चित्रकृत् वीरवर्मा । पुस्तकृत् कुमारदत्तः । मार्दङ्गिको जीमूतः । गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ । सैरन्ध्री कुरङ्गिका । वांशिकौ मधुकरपारावतौ । गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः । संवाहिका केरलिका । लासकयुवा ताण्डविकः । आक्षिकः आखण्डलः । कितवो भीमकः । शैलालियुवा शिखण्डकः । नर्तकी हरिणिका । पाराशरी सुमतिः । क्षपणको वीरदेवः । कथको जयसेनः । शैवो वक्रघोणः । मन्त्रसाधकः करालः । असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षकः । धातुवादवित् विहङ्गमः । दार्दुरिको दामोदरः । ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः । मस्करी ताम्रचूडः ।"

(हर्षचरितम्, प्र० उ०)

वाणस्य व्यक्तित्वे विशिष्टे द्वे वार्ते मुख्यतो विज्ञाते भवतः ।

१- जन्मत एव तस्य बुद्धिरतिगभीरा, तस्य मेधायाश्च महान् विस्तारः। यथैकस्मिन्महति भाजने बहूनि वस्तूनि सम्मान्ति तथैव तस्य चेतसि प्रत्येक-विषयस्यापरिमिता सामग्री संवर्तते स्म ।

२- वाणः प्रत्येकस्य वस्तुनः ज्ञानमर्जयितुं सदा समुत्सुकोऽतिष्ठत् । स स्वय-मचकथत्-'कस्यापि नूतनस्य विषयस्य ज्ञानाय मम मनसि तत्कालमेव कुतूहलस्येदृश आवेग उत्तिष्ठते, येनाहं विवशो भवामि[1] ।

तस्यैवंविधकुतूहलिनः स्वभावस्य प्रमाणमिदमस्ति यत् महाराजहर्षवर्धनस्य प्रथमदर्शनार्थं गच्छन्नसौ राजभवनस्य बाह्यकक्ष्यायां गजशालां दृष्ट्वा श्रुतपूर्वस्य 'दर्पशात' नाम्नो मुख्य-राजगजस्य साक्षात्कारायोत्पन्नं निजकुतूहलन्न रोद्धुमशक्नोत् अब्रवीच्च दौवारिकम्, दर्पशात-दर्शनोत्कण्ठया परवशोऽस्मि, यदि काप्यापत्तिर्न स्यात्तर्हि राजदर्शनात्प्राक् तं महागजमेव द्रष्टुमिच्छामि[2] ।' इति ।

जन्मजात-पर्यटन-प्रवृत्तिश्च वाणस्य व्यक्तित्वे तृतीयमप्येकं विशेषमुत्पाद-यामास । स च विशेषः स्वनेत्राभ्यां दर्शनोत्तरं प्राप्तः संसारस्य सजीवोऽनुभवः । वाणो यौवनारम्भ एव पर्यटनाय गृहमत्यजत्[3] ।

पर्यटनकाले च वाणश्चतुर्विधान् सामाजिकान् स्तराननुभूतवान् ।

---

१ "अति परवानस्मि कुतूहलेन" (हर्ष० प्र० उ०)

२ " स 'तमवादीत् भद्र? श्रूयते दर्पशातः। यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद् वार-णेन्द्रमेव' ।" । हर्ष० द्वि० उ०)

३ ' देशान्तरालोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः गृहान्निरगात्" (हर्ष० प्र० उ०)

सर्वप्रथमं महतां राजकुलानां नानाविधानुदारान् समुदाचारान ददर्श । ततः - प्रसिद्धेषु शिक्षाकेन्द्रेषु गुरुकुलेषु च विद्याक्रमव्यवस्थां साक्षाच्चकार । ततो गुणिनां कलावताञ्च गोष्ठीषु समुपस्थाय तेषामनर्घाभ्यो बुद्धिप्रखरतासाधिका-भ्यश्चर्चाभ्यो लाभं जग्राह । तदनन्तरञ्च विदग्धमण्डलानां सम्मेलनेषु गत्वा रसवतीर्वार्ताः शुश्राव ! इत्थं बाणस्य व्यक्तित्वे बहुमुखविशदतायाः समावेशः संजातः । बाणेन वात्स्यायनवंशं वर्णयता तत्रोत्पन्नानां द्विजानां ये गुणा वर्णिता-स्ते वस्तुतो बाणस्यैव गुणाः । तान् द्विजान वर्णयन् बाण आचष्टे—'ते श्रौताचारा-नाश्रयन् । मिथ्या-दम्भयोर्न तेषामन्तिके प्रश्रयः । कपटस्य, कुटिलतायाः विकत्थनस्य च न तेषां स्वभावः । पापात् ते सदा दूरेऽतिष्ठन् । शठतां दूरीकृत्य ते सर्वदा प्रसन्नास्तिष्ठन्ति स्म । परनिन्दातो निजचित्तानि सदा रक्षन्ति स्म । याचनावृत्तेः सदा ते पराङ्मुखा अतिष्ठन् । स्थिरस्वभावाः, प्रणयिजनेष्वनुकुलाः, कवयो, वाग्मिनः, सरसाः, भाषणप्रियाः, विदग्धजनोचित-हास-परिहास-चतुराः, जनसंपर्कनिपुणाः, नृत्य-गीत-वादित्राणि जीवनस्यावश्यका-न्यङ्गानि मन्यमानाः, इतिहासेष्वतृप्तरुचयः, दयामयाः, सत्यचमत्कृताः, साधूनामिष्टाः-, सर्वसत्वान् प्रति सौहार्दकरुणाभ्यामार्द्राः, रजोगुणेनास्पृष्टाः, क्षमावन्तः, कलाविज्ञा दक्षाश्च ते द्विजा आसन्निति[1]" ।

एषां गुणानां समावेशः पूर्णरुपेण बाणस्य व्यक्तित्वे संबभूव । बाणस्य व्यक्तित्वमात्माभिमानप्रदीप्तमासीत् । यदा हर्षभ्रातुः कृष्णस्य दूतो बाणं राजसभां नेतुमागच्छति तदा बाणश्चिन्तयतिः—'किं मया विधयम् ? कृष्णेनागमनाय संदेशः प्रेषितः । परन्तु सेवा कष्टदायिनी । प्रत्यहं नियमतो राजसमक्षो-

१ हर्षचरितम्, प्रथमउच्छ्वासः ।

परिस्थितिर्जटिला प्रक्रिया। राजसभायां बहुविधा व्यापाराः संभाविताः। मम पूर्वजानां कदापि राजसेवावृत्तौ रुचिर्नासीत्। न वा मम वंशक्रमागतो राजसभासंबन्धः। राजकुलकृतं पूर्वोपकारमपि कमपि नाहं स्मरामि।

परमथापि गन्तव्यमवश्यम्। त्रिभुवनगुरुः भगवान् शंकरो मम तत्र गतस्य सर्वविधं कल्याणं कुर्यात्।[1] इति।

राजकृतसादराह्वाने कश्चिदात्माभिमानी एव एवं चिन्तयितुं पारयति, नेतरः। एतावदेव न, अपि तु हर्षवर्धनसभायामुपस्थितो बाणो हर्षेण 'महानयं भुजङ्गः' इत्येवमधिक्षिप्तः सन् यं प्रतिवादमकार्षीत् स बाणशब्देष्वेव श्रूयताम् "देव! अविज्ञाततत्त्व इव अश्रद्दधान इव नेय इव अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि? स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितुम् अविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादयः संस्काराः कृताः। सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजङ्गता?"

एकस्य सम्राजः प्रतिवादमीदृशैः शब्दैःकर्तुं कोऽन्यो बाणात् क्षमेत? बाणस्यात्माभिमानं बोधयतः प्रसङ्गस्य नात्रैव विश्रान्तिः। तथा प्रत्युक्तेऽपि गुणग्राही हर्षवर्धनो न कोपमकरोत्, अपि तु परमेण प्रसादेन बाणमन्वग्रहीत्। बाणः सम्मानितो राजसभासदस्यः समभूत्। धनमपि पुष्कलं लेभे। तथापि बाणस्य स्वतंत्रं व्यक्तित्वं राजतन्त्रनिगडनियन्त्रणेन व्यथमानमतिष्ठत्। तस्या व्यथाया अभिव्यक्तिस्तदाभवद् यदा बाणः प्राग्ज्योतिषेश्वरकुमारस्य भास्करवर्मणो दूतस्य

---

१ हर्षचरितम्, द्वितीय उच्छ्वासः।

हंसवेगस्य मुखेन राजसेवकानां विचित्रं चित्रणमकार्षीत्। बाणेन जगति भ्रामं भ्रामं चाटुकारितापूर्णं राजभवनं स्वार्थिनां सेवकानामभिमानमदमत्तानां नृपाणाञ्च श्वास-प्रश्वास-रोधकरं वातावरणं वा यद्दृष्टम् तस्य विशदं वर्णनमत्र प्रसङ्गो स्वकीयस्य स्वतन्त्रव्यक्तित्वस्य समस्तां शक्तिं सञ्चित्य कृतम्। प्रकरणमिदमद्वितीयं विश्वसाहित्ये। दर्शनीयोऽस्य प्रकरणस्य कियानंशः।

'मानवताया गौरवस्य रक्षणेन सह मानधनिनां क्षणिकं जीवनं श्रेष्ठम्, किन्तु मनस्विनां कृते त्रिलोकीसाम्राज्योपभोगोऽपि न वरम्, यदि तदर्थं शिरो नमनीयं स्यात्[1]।

'भृतकस्य किमपि स्वतन्त्रं व्यक्तित्वं न भवति। तस्य पापकर्मणां किमपि प्रायश्चित्तमस्ति? तत्संशोधनस्य क उपायः? स शान्तिलाभाय क्व गच्छतु? किं तस्य जीवनम्? तस्मिन् पुरुषोचितोऽभिमानः कुतः? तस्य सुखविलासाः कीदृशाः? भोगविषये तस्य विचार एव कः? अयं दासशब्दः सर्वान्नीचैर्विधत्ते[2]।

या मनोवृत्तिर्मनुष्यं राज-सेवायै प्रेरयति तस्या विवेचनं कुर्वता बाणेन लिखितम्-'चिरन्तनी दरिद्रता दुर्जननीव पुरुषं भृत्यतायै प्रेरयति। तृष्णा असन्तुष्ट-

---

१ "वरं क्षणमपि कृता मानवता मानवता, न मतो नमतस्त्रैलोक्याधिराज्योपभोगोऽपि मनस्विनः"। (हर्ष० सप्तम उच्छ्वासः)

२ 'अपुण्यानां कर्मणामाचरणाद् भृतकस्य किं प्रायश्चित्तम्, का प्रतिपत्तिक्रिया? क्व, गतस्य शान्तिः, कीदृशं जीवितम्, कः पुरुषाभिमानः, किंनामानो विलासाः, कीदृशी भोगश्रद्धा, प्रबलपङ्क इव सर्वमधस्तान्नयति दारुणो दासशब्दः।" (हर्ष० सप्तम उ०)

कलत्रमिव भृत्यभावाय प्रहिणोति। यौवनसुलभो नानावस्त्वभिलाषी दुःसंकल्पो भृत्यताप्राप्तये व्याकुलयति। परप्रार्थनालभ्यस्य पदस्य लोभस्तं भृत्यतायै समाकर्षति'. इति।

अन्ते च निस्संकोचमहं वक्तुं कामये यद् बाण इव स्वतन्त्रोच्च-व्यक्तित्व-संपन्नो विद्वानितिहासेऽपि दुर्लभ एवेति।

बाणमयूरयोः संबन्धः

मयूरनामानो बहवो राजानः कवयश्च भारते बभूवुरित्यैतिहासिका मन्यन्ते। तत्र सूर्यशतकनिर्माता मयूरो बाणश्च समसामयिकौ, यतो द्वावपीमौ महाकवी हर्षवर्धन-सभा-सदस्याविति नवमशताब्दीसमुद्भूतः काव्यमीमांसाकारो राजशेखरो निश्चिनोति। राजशेखरस्य—

'अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवद् सभ्यः समो बाण-मयूरयोः॥'

इति तत् प्रसिद्ध पद्यम्। सप्तदशशताब्दीसंजातः सूर्यशतक-टीकाकारो मधुसूदनोऽपि भावबोधिनीनामिकायां टीकायां "कविजनमूर्धन्यस्य रत्नावल्याख्य-नाटिकाकर्तुः महाराजश्रीहर्षस्य सभ्यौ महाकवी बाणमयूरावास्ताम्" इत्युल्लिखन् बाण-मयूरयोरेककालवर्तित्वं समर्थयति। किंवदन्त्योऽपि तयोः समसामयिकतां पुष्णन्ति। एका किंवदन्ती, यस्या उल्लेखः सूर्यशतक-टीकाकारेण भट्टयज्ञेश्वरेण कृतः, इयमस्ति यन्मयूरस्य भगिनीपतिर्बाण आसीदिति। द्वितीया च किंवदन्ती, यस्या उल्लेखः प्रबन्धचिन्तामणिकृता मेरुतुङ्गाचार्येण विहितः, मयूरमेव बाणस्य

भगिनीपतिं सूचयति। तृतीया च किंवदन्ती, यस्याश्चर्चा पूर्वोक्तेन मधुसूदनेन सूर्यशतकटीकायां कृता, मयूरभट्टं श्वशुरं बाणञ्च तज्जामातरं कथयति।

आसु किंवदन्तीषु बाण-मयूराभ्यां मिथोऽभिशप्ततायाः प्रसङ्गोऽपि संसक्तोऽस्ति। रात्रौ कृतमानां पत्नीमनुनेतुं प्रयस्यता बाणेन तत्कालं विरच्यमानस्य "गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव, प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव। प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो" इति चरणत्रयात्मकस्य पद्यस्य "कुच-प्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्" इति चतुर्थचरणात्मिका पूर्तिः बहिः स्थितेन मयूरेण कृता, येन क्रुद्धो बाणो मयूराय 'कुष्टरोगी भवतु' इति शापं प्रादात्। मयूरोऽपि बाणाय शापं ददौ। पश्चान्मयूरः सूर्यशतकं बाणश्च चण्डीशतकं निर्माय शापमुक्तावभूताम्।

इमाः किंवदन्त्यो निराधारा न संभवन्ति, यतः आसां किंवदन्तीनामीषद्-भेदेन भूयोभूयो जैनसाहित्येषु अन्यत्र च चर्चाः कृता विलोक्यन्ते। 'नह्यमूला प्रसिद्धिः' इति रीत्या च भवितव्यमेवात्राधारेण।

मम विचारेण, यदि शापवार्ता सत्या तर्हि, मयूरस्य श्वशुरत्वं बाणस्य च जामातृत्वमेव समर्थयितुमुचितम, यतो यदि बाणमयूरयोः भावुक-श्यालक-संबन्धः स्यात्तर्हि तया घटनया क्रोधस्य शापस्य वौचित्यं न सिद्ध्येत, यतो भावुकद्वारा श्यालकपत्न्याः श्यालकसमक्षेऽपि शृङ्गारमयः परिहासः समाजे प्रचलित एव। श्यालकद्वारा स्वभगिनीसंबन्धिनी शृङ्गार-कथापि भावुकस्य कृते न तथा क्रोध-हेतुर्भवितुमर्हति, अपि तु भावुकस्य कृते श्यालकं प्रति परिहासाय नवीनां सामग्रीमेव समुपस्थापयेत्। अस्तु। एतत्किंवदन्तीत एव निष्कर्षोऽवश्यं निस्सरति यद् बाणमयूरौ समकालिकौ मिथःसंबन्धिनौ चास्तामिति।

अथेदानीमेष प्रश्नः पुरः समुपतिष्ठते यद् हर्षचरिते भूयसां संबन्धिनामन्येषाञ्च चर्चां कुर्वाणोऽपि बाणो मयूरस्य चर्चां कुतो नाकरोदिति। एतस्योत्तरे बहवः कथयन्ति यद् बाणेन हर्षचरिते मयूरस्य चर्चा कृता। बाणस्य मित्रमण्डले यो जाङ्गलिको मायूरको निर्दिष्टः स महाकविर्मयूर एव। महाकविर्मयूर एव महान् विषवैद्योऽप्यभूत्। विषयस्यास्य समर्थनाय ते—

"दर्पं कवि-भुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति॥"

इति राजशेखरपद्यञ्च समुपस्थापयन्ति। 'मैक्समूलर-पीटर्सन-महोदयावपि मयूरस्य जाङ्गलिकमायूरकत्वे सहमतावास्ताते। परन्तु 'ब्यूलर' महोदयोऽत्र विषये सहमतिदानेऽनिच्छां प्रकटयति।

मह्यमपि नेयं युक्तिः रोचते। श्वशुरजामातृविषयिणी किंवदन्त्यप्यत्र विषये प्रतिकूलेव प्रतीयते। नहि श्वशुरजामात्रोः समवयस्कता समुचिता। बाणमित्रमण्डले च समवयस्का एवासन्। बाणः स्वयं लिखति—'वयसा समानाः सुहृदः सहायाश्च' इति। अतो जाङ्गलिकमायूरकात् भिन्न एव महाकविर्मयूर इति युक्तमुपपश्यामि।

—द्वितीयो भागः—

बाणभट्टस्य कृतयः

महाकवेर्बाणभट्टस्य काः कियत्यश्च कृतयः सन्तीति विषये विदुषां नैकमत्यम्। केचित् १—हर्षचरितम्, २—कादम्बरी, ३—चण्डीशतकम्, ४—पार्वतीपरिणय

नाटकम्, ५—मुकुटताडितकञ्चेति पञ्च ग्रन्थान् बाणनिर्मितान् स्वीकुर्वन्ति। अन्ये मुकुटताडितकं विहायापरान् चतुर एव ग्रन्थान् बाणकृतान् स्वीकुर्वन्ति। इतरे पार्वतीपरिणयनाटकमपि तदीयं नाङ्गीकुर्वन्ति। एवं ते त्रीनेव ग्रन्थान् बाणकृतानामनन्ति।

अपरे चण्डीशतकस्यापि बाणनिर्मितत्वे संदिहते, निश्चिन्वन्ति च हर्षचरित-कादम्बर्योरेव बाणरचितत्वम्।

नलचम्पूटीकाकारौ जैनौ चन्द्रपालगुणविजयगणिनामानौ विद्वांसावेव केवलं मुकुटताडितकन्नाम नाटकं बाणकृतमुद्घोषयामासतुः,

"आशाः प्रोज्झितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्त-महाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव।
बिभ्राणाः क्षय-काल-रिक्त-सकल-त्रैलोक्य-कष्टां दशाम्
जाताः क्षीण-महारथाः कुरुपतेर्दैवस्य शून्याः सभाः॥"

इत्येकं पद्यञ्चोद्धृतवन्तौ। परमन्यत्र क्वाप्यस्य नाटकस्य नाम न श्रूयते, न वाद्याप्युपलब्धमिदं नाटकम्। अत एतद्विषये किमप्यधिकं वक्तुमशक्यमेव।

पार्वतीपरिणयनाटकमपि वस्तुतो न हर्षचरितनिर्मातुरेतत्प्रबन्धनायकस्य बाणभट्टस्य कृतिरपि तु सप्तदशशतके समुत्पन्नस्य बाणोपनामकस्य वामनभट्टाभिधस्य कस्यचिद्दाक्षिणात्यस्य कवेः।

अन्तरङ्ग-परीक्षयापि नैतन्नाटकं कादम्बरीकारस्य कृतिः सिद्ध्यति। अस्मिन्नाटके न कादम्बरीकारस्य शैली क्वचिल्लक्ष्यते, न वा दृढबन्धः।

यो बाणो गन्धर्वजातीयस्य पितुश्चित्ररथस्य कुमारकन्या-कादम्बरी-विवाह-चिन्तायाः वर्णनप्रसङ्गे "समुपारूढनिर्भरयौवनामालोक्य स तां बलवदुपताप-परवशः क्षणमपि न धृतिमलभत" एतावदेवोल्लिख्य पितृमर्यादां रक्षति, स एव पार्वतीपरिणयार्थं चिन्तितस्य हिमवतो मुखात्

"कुचयुगलं परिणद्धं यथा-यथा वृद्धिमेति तन्वङ्ग्याः।
वरचिन्ताहृतमनसः तथा तथा कार्श्यमेति मे गात्रम् ॥"

इत्येतादृशं पितृमर्यादाप्रतिकूलं वाक्यं न निस्सारयितुमर्हति।

चण्डीशतकस्यापि बाणनिर्मितत्वे न मनागपि ममास्था तत्पुरतकं परिशीलयतो जागर्ति। बाणभट्टस्य भाषा गद्ये पद्ये वा सर्वथा सुपरिष्कृता दृश्यते। न स क्वचिदेतादृशमपूर्णं वाक्यं लिखति, यस्यार्थबोधायाक्षेपोऽपेक्ष्येत। चण्डीशतकस्य तु प्रायः नैकोऽपि श्लोकस्तादृशो यस्यान्वयबोधोऽध्याहारमन्तरा संपद्येत !

"मा भाङ्क्षीर्विभ्रमं भ्रू रधर विधुरता केयमस्यास्य रागम्
पाणे प्राण्येव नायं कलयसि कलह-श्रद्धया किं त्रिशूलम्।
इत्युद्यत्कोपकेतून् प्रकृतिमवयवान् प्रापयन्त्येव देव्या
न्यस्तो वो मूर्ध्नि मुष्यान्मरुदसुहृदसून्संहरन्नङ्घ्रिरंहः ॥"

इत्ययं प्रथमश्लोक एव चण्डीशतकस्य परीक्ष्यताम्। अस्मिन्प्रथमश्लोके क्वापि महिषस्योल्लेखो नास्ति, अथ चाग्रिमश्लोकेषु सर्वत्र प्रायस्तदुल्लेखः कृतोऽस्ति। कीदृशोऽयं क्रमः ? प्रथमश्लोके कृतस्य कस्यापि पदस्यार्थस्य वाऽध्याहारोऽग्रिमश्लोकेषु सुलभो भवति। किञ्चात्र श्लोके 'कस्य मूर्ध्नि न्यस्तोऽङ्घ्रिः' इति जिज्ञासायां महिषासुरस्येति बलादाक्षेप्यं भवति। एवमेतत्पद्यस्थस्य 'अयम्' इत्यस्य व्याख्या॰ 'महिषासुरः'

इति बलादेव करणीया, महिषासुरस्येतः प्रागनुल्लेखात् ।

एकोऽपरोऽपि श्लोकः आलोचनानिकषे निक्षिप्यताम् ।

"दत्ते दर्पात्प्रहारे सपदि पदभरोत्पिष्टदेहावशिष्टाम्
श्लिष्टां शृङ्गस्य कोटिं महिषसुररिपोर्नूपुरग्रन्थिसीम्नि ।
मुष्याद्वः कल्मषाणि व्यतिकरविरतावाददानः कुमारो
मातुः प्रभ्रष्टलीलाकुवलयकलिकाकर्णपूरादरेण ॥"

अस्य श्लोकस्य व्याख्यां कुर्वन् व्याख्याकारो लिखति-'अस्मिन्श्लोके 'कुमारो वः कल्मषाणि मुष्या'दित्यन्वयो यदि विधीयते तदा कुमारस्याप्राकरणिकत्वा दप्रस्तुतान्वयता स्यात् । तस्मादेवमध्याहृत्य व्याख्येयम्-सा माता वः कल्मषाणि मुष्यात् यस्या मातुः कुमारः........' इति ।

नैतादृशी विशंष्ठुला रीतिर्महाकवेर्बाणस्य भवितुमर्हति । तस्मात्कादम्बरीकाराद य एवायं चण्डीशतककर्ता बाणः, यो मयूरकृतसूर्यशतकमनुकुर्वन् चण्डीशतकमेनच्चकार । परन्तु सूर्यशतकस्य वैशिष्ट्यं लेशतोऽपि नानेतुं शशाक । फलतो महाकवेर्बाणभट्टस्य हर्षचरितं कादम्बरी चेति द्वावेव ग्रन्थाविति ममकीनः पक्षः ।

"हारो, जलार्द्रवसनं, नलिनीदलानि, प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः,
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि, निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥
'एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकविज्ञानिकाः
सन्त्येते धनिनः कलासु सकलास्वाचार्यचर्याचणाः ।

अप्येते सुमनोगिरां निशमनात् विस्म्यत्यहो श्लाघया
धूते मूर्धनि कुण्डले क्वणतः क्षीणे भवेतामिति ॥'

इतीमौ द्वौ श्लोकावेतादृशौ बाणनाम्ना क्रमशः 'औचित्यविचारचर्चायाम्' 'सुभाषितावल्याञ्च' समुद्धृतौ स्तः, यौ बाणस्य ग्रन्थे न समुपलभ्येते। अतो बाणभट्टस्य कोपि 'पद्यमयोऽन्योऽपि ग्रन्थ आसीत्, योऽधुना नोपलभ्यते इत्यपि बहवो वदन्ति। पद्यकादम्बरी अपि बाणेन लिखिता यस्या एव 'हारो जलार्द...' इत्यनुपदोक्तं पद्यमित्यपि केचित् कथयन्ति।

बाणकृतिषु स्मृताः प्राक्तनाः कवयः

कादम्बरीकाव्ये कमपि प्राक्तनं कविमरमरतापि बाणेन स्वकीये हर्षचरिते महाभारतकारो भगवान् व्यासः गद्यप्रबन्धप्रणेता भट्टारहरिचन्द्रः, गाथासप्तशतीसंग्रहीता सातवाहनः, सेतुबन्धनिर्माता प्रवरसेनः, स्वप्नवासवदत्तादि-नाटक-चक्रप्रणेता भासः, प्रसिद्धः कालिदासः इतीमे महाकवयोऽत्यादरेण स्मृताः[1]।

१– "नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे। चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव-भारतम् ॥"

"पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः। भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥"

"अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः। विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव-सुभाषितैः ॥"

"कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला। सागरस्य परंपारं कपिसेनेव-सेतुना ॥"

"सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव"

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव-जायते ॥"

वासवदत्ता-बृहत्कथेति ग्रन्थद्वयमपि लेखकनामरहितं स्मृतम्[2]। एतद्ग्रन्थ-द्वयकर्तारौ सुबन्धु-गुणाढ्यौ सुविदितौ। अस्मिन्प्रसङ्गे आदिकविर्वाल्मीकि-स्तदीयं रामायणं वा कुतो न बाणेन स्मृतमित्याश्चर्यम्।

बाणभट्टकृतिषु प्राक्तनकविकृतिप्रभावः

पूर्ववर्तिकविकृतिप्रभाव उत्तरवर्त्तिकविकृतिषु पततीति सुनिश्चितः सर्व-सम्मतश्च सिद्धान्तः। तत्रापि यः कविर्यस्य पूर्ववर्तिनः कवेर्भक्तः स तस्यैव कृतिषु रुचिं धत्ते, तस्यैव कृतीः पुनः-पुनरधीते च, अतस्तस्यैव पूर्ववर्तिनः कवेः कृतीनां प्रभावः प्रमुखतया तस्योत्तरवर्तिनः कवेः कृतिषु पतेदित्यपि निर्णीतम्।

एवञ्च बाणेन ये पूर्ववर्तिनो महाकवयः श्रद्धया स्वकृतिषु स्मृतास्तेषां कृतीनां प्रभावो बाणकृतिषु पतितो भवेदिति वक्तुं शक्यते। इदानीं तत्प्रभावस्थलानां बाण-कृतिष्वन्वेषणमस्माकं कर्तव्यम्। परन्तु लघुकलेवरे लघुकाललिखिते चास्मिन्नि-बन्धे बहुकालसाध्यं तादृशमन्वेषणं न संभवति, तथापि सामान्यतोऽन्यकविकृतिप्र-भावस्थलानि कानिचित् बाणकृतितोऽत्र निर्दिश्यन्ते।

"कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलाः
तुदन्त्यलं बन्धन-शृङ्खला इव।

२– "कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया। शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया-कर्णगोचरम्॥"
समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना। हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥"
(हर्ष० प्र० उ०)

मनस्तु साधु-ध्वनिभिः पदे-पदे
हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥"

इत्येतस्मिन्प्रसिद्धे कादम्बरीस्थे बाण-पद्ये—

"शब्दैर्निसर्गकटुभिर्मलिन-स्वभावाः
श्रोत्रं खला निगडवत् परितस्तुदन्ति ।
श्रव्यैरलुप्तपदबन्धतयाऽतिमञ्जु
मञ्जीरवत्तु सुजना जनयन्ति मोदम् ॥"

इत्यार्यभट्टपद्य-प्रभावः सुस्पष्टमवलोक्यते । कोऽयमार्यभट्टः ? कदा चायमभवत् ? का चास्य कृतिरित्यादि यद्यपि न विज्ञायते, तथापि कवि-कण्ठाभरणकारः क्षेमेन्द्रः एनमार्यभट्टं बाणात् प्राचीनमभिमन्यते । क्षेमेन्द्रः कविकण्ठाभरणे—

"छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी ।
भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा सकलोपजीव्यः ॥"

इति स्वसिद्धान्तोदाहरणदानप्रसङ्गे बाणस्यार्यभट्टसकलोपजीवित्व-मुदाजहार ।

महाभारतप्रभावस्तु बहुशो बाणकृतिषु विलोकयितुं शक्यः । मुखतोऽपि महाभारतप्रभावः स्वीकृत इव बाणेन । कादम्बर्यां विलासवत्या अनपत्यता-विषादवर्णनप्रसङ्गे उक्तम्—'अद्य चतुर्दशीति भगवन्त महाकालमर्चितु-मितो गतया (विलासवत्या) तत्र महाभारते वाच्यमाने श्रुतम्—अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः । पुंनाम्नो नरकात् त्रायत इति पुत्रः........इति ।

अग्रे चास्मिन्नेव प्रकरणे 'परिजनोऽपि चास्याः सततमुपश्रुत्यै निर्जगाम' इत्येकं वाक्यमस्ति । अस्मिन् वाक्ये चर्चिताया 'उपश्रुति' देव्याः प्रसङ्गो महाभारते उद्योगपर्वणि समागतः ।

कालिदासप्रभावोऽपि यत्र तत्र दृश्यते बाणग्रन्थेषु । हर्षचरिते 'एतेन (हर्षेण) च खलु राजन्वती पृथ्वी' इत्युल्लिखता बाणेन 'कामं नृपाःसन्तु सहस्र-शोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेनभूमिम्' इतिरघुवंशपद्यं ध्याने रक्षितम् ।

कादम्बरीद्वारा चन्द्रापीडसत्कारप्रसङ्गे प्रतिहारीविशेषणतया कथितम् 'संवृत-मुख-न्यस्त-हस्त-दन्त-शब्द- निवारण-संज्ञाः' इतीदं वाक्यं नूनं—

'लता गृह-द्वारगतोऽथ नन्दी,
वाम-प्रकोष्ठार्पितवेत्रयष्टिः ।
मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव
मा चापलायेति गणान् व्यनैषीत् ॥'

इति कुमार संभवस्थं पद्यं स्मारयति ।

बाणभट्टस्य साहित्यिकमान्यता

बाणेन काव्यशैलीविषये स्वविचारो हर्षचरिते प्रकटितः । स कथयति— इह लोके रागद्वेषपरीता वाचालाः स्वच्छन्दतया काव्यकर्तारः कुकवयो बहवः सन्ति[1] । 'ईदृशाः कवयो गृहे-गृहे विद्यन्ते ये वस्तुनो यथावद् वर्णनमेव काव्य

१— "प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः । कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः ॥" (हर्षचरितम्)

मभिजानन्ति, किन्तु नवनिर्माणकारिणः कवयः परिगणिता एव।[1] एतादृशार्थके पद्ये-'जातिभाजः' इतिपदमायातम्। जातिपदेनात्र स्वभावोक्तिरभिप्रेता। पदमिदं प्रयुञ्जानेन बाणेन स्वपूर्ववर्तिनीं शैलीं प्रतीङ्गितं कृतम्। प्राक्तनेभ्यः कविभ्यः स्वभावोक्तिरेव रोचतेस्म, परन्तु शनैः शनैः स्वभावोक्तेः (यथावद्-वस्तुवर्णनस्य) व्यापकप्रचारेणैका प्रतिक्रियोत्पन्ना तथा लोकानां प्रवृत्तिः वक्रोमुन्खी बभूव। श्लेषप्रधान-शैल्याः प्रचारो ववृधे। सुबन्धुना या निरन्तरश्लेषघना शैली समुद्भाविता, बाणेन मुहुर्मुहुस्तस्याः प्रशंसा कृता, सहैव जातिप्रधानवर्णनमपि ग्राह्यममन्यत। बाणस्य कथनमस्ति—'उदीच्येषु श्लेषप्रधानशैलीप्रचारः, पश्चिमभारते शैली न तथा समादृता, यथार्थकथावस्तु वा समादृतम्, दाक्षिणात्यदृष्टौ कल्पनाचमत्कारः उत्प्रेक्षा वा काव्यगुणः, किन्तु गौडदेशीयाः (प्राच्यभारतवासिनः) विकटशब्दयोजनायै एव स्पृहयन्ति।[2]

वस्तुतः काव्यशैलीविषये इयमेकाङ्गिनी दृष्टिः। बाणः स्वयं कथयति---'तदेव काव्यं श्रेष्ठं यत्र नूतनोऽर्थः अग्राम्या जातिः, अक्लिष्टः श्लेषः सुलभो रसः विकटाक्षरबन्धश्चेति पञ्चानामपि तत्त्वानां सहभावो भवेत्। यत्रैते पञ्चापि गुणाः संहत्य तिष्ठन्ति सैव रचना श्लाध्या।[3]

---

१ "सन्ति-श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥" (हर्षचरितम्)

२ 'श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्। उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षर डम्बरम्॥' (हर्षचरितम्)

३ "नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः। (हर्षचरितम्)
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥"

एतत्समन्वयप्रधानदृष्टिकोणस्वीकार एव बाणस्य विशेषः साफल्यरहस्यञ्च। बाणकृतिषु विषयस्य नवीनता, श्लेषमयशब्दयोजना, वस्तुनो यथार्थचित्रणम्, समासबहुलपदविन्यास इतीमे चत्वारो गुणाः समाहृता एव, सहैव वहन्ती रसधाराऽपि सहजसुलभा विद्यते।

बाणस्य काव्यविषये एकाऽपरापि मान्यता ध्याने समानेतुं योग्या। स मन्यते यत्तदेव काव्यं काव्यं यस्मिन् संसारस्य सर्वे पदार्था वर्ण्यन्ते, यच्च लोकप्रियं प्रचुरप्रचारञ्च भवतीति[1]।

बाणभट्टस्य गद्यम्

बाणस्य गद्यं त्रिप्रकारकम्। एको दीर्घसमासमयः प्रकारः, द्वितीयोऽल्पसमासः, तृतीयश्च समासरहितः। संस्कृतालङ्कारशास्त्रे इमे त्रयः प्रकाराः क्रमेणोत्कलिका-चूर्णकाविद्धनाम्ना समाम्नाताः[2]। एकश्चतुर्थोऽपि प्रकारो गद्यस्य भवति, यस्य नाम वृत्तगन्धीति शास्त्रे श्रूयते, परमस्य प्रकारस्य प्रयोगो बाणेन प्रायो न कृतः। चतुरशिल्पीव बाणः परिवृत्य परिवृत्य गद्यस्य त्रीन् प्रकारान् काव्ये प्रयुङ्क्ते। येन वर्णनं भारावहं (बोझिल) न भवति पाठका उद्विग्नतां नानुभवन्ति। उत्कलिकोत्तरं चूर्णकं चूर्णकोत्तरञ्चाविद्धमिति क्रमो बाणस्य। युवक

---

१ "किं कवेस्तस्य काव्येन:सर्ववृत्तान्तगामिनी। (हर्षचरितम्)
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्॥"

२ "चूर्णकमल्पसमासं दीर्घसमासमुत्कलिकाप्रायम्। समासरहितमाविद्धं वृत्तभागान्वितं वृत्तगन्धि॥"

दधीचवर्णने स्पष्टोऽयमालोक्यते क्रमः। तस्य वर्णनस्य केचनांशा दर्शनीयाः।

"अनवरतश्रमोचितमांस-कठिन-विकटमकरमुखसंलग्नजानुभ्याम् अतिविशालवक्षःस्थलोपलवेदिकोत्तम्भनशिलास्तम्भाभ्याम् चारुचन्दनस्थासक स्थूलतरकान्तिभ्याम् ऊरुदण्डाभ्याम् उपहसन्तमिव ऐरावतकरायामम्,......उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्याम् आसन्नपरिचारिकाभ्याम् दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम्,....अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलास प्रायमिव जीवलोकं......जनयन्तम् असंतोषमिव कौतुकस्य,.......रसायनमिव यौवनस्य......युवानमद्राक्षीत्।"

पृथक् पृथक् त्रयाणां प्रकाराणामुदाहरणानि तु शतशो लभ्यन्ते।

हर्षचरितस्याख्यायिकात्वं कादम्बर्याः कथात्वं च

बाणो हर्षचरितमाख्यायिकां कादम्बरीञ्च कथां कथयति।[1] 'आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा' इत्येवममरकोशे कथाख्यायिकयोर्भेदो निर्दिष्टः। हर्षचरितमस्य भूलोकस्य तथ्याऽख्यायिका, कादम्बरी तु भूलोके दिव्यलोकमवतारयन्ती कविकल्पना। अग्निपुराणानुसारं यत्र विस्तृतं कविवंशवर्णनम्, कन्याहरणं, संग्रामः प्रदीप्ते रीति-वृत्ती, उच्छ्वासपदेन विभागः, चूर्णकशैलीबाहुल्यम्, वक्त्रापवक्त्रनामके वृत्ते च भवन्ति सा आख्यायिका, कथा च सा यत्र संक्षिप्तं वंशवर्णनम्, मुख्यार्थावतारणाय द्वितीयकथोपन्यासश्च भवतः, विभागश्च न भवति,

१ (क) "करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्।" (हर्षचरितम्)

(ख) "धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा।" (कादम्बरी)

लम्बकशब्देन वा क्वचिद् त्रिभागो भवति[1]। दण्डी तु काव्यादर्शे कथाख्यायिकयो र्भेदं वक्तुमुपक्रममाणोऽप्यन्ते तयोरैक्यमिव स्वीकृत्य नाममात्रेण भेदं ब्रूते। बाणस्तयोः काव्य-विधयोर्वैलक्षण्यमनुमन्यते। अग्निपुराणोक्तभेदोऽपि हर्ष-चरितकादम्बर्योः साधु संघटते।

हर्षचरितस्यैतिहासिकता

हर्षचरितन्नामालङ्कृतशैल्यामभिव्यक्तानां बहूनामैतिहासिकतथ्यानां क्रोडी-करणादैतिहासिकं काव्यम्। हर्षचरिते वर्णितानि बहूनि पात्राणि ऐतिहासि-कानि। मुख्यपात्रं हर्षवर्धनस्तु भारतीयेतिहासस्य प्रसिद्धः पुरुषः। किन्तु हर्षचरितेऽलौकिकपात्राणामप्यवतारणा कृतास्ति। स्थाने स्थाने पौराणिक-कथाया अप्युपयोगो विहितः। कस्या अपि घटनायास्तिथिक्रमो न निर्दिष्टः। कियतामैतिहासिकपात्राणामुल्लेखोऽपि नास्ति। अतोऽस्यग्रन्थस्यैतिहासिकं महत्त्वं ह्रसति। अथाप्ययं ग्रन्थः सांस्कृतिकेतिहासोऽवश्यं वक्तुं योग्यः। यतः संस्कृतिसंबद्धाः यावन्तः पदार्थाः—आचार-विचार-वेष-भूषा-मूर्त्तिकला-स्थापत्य-कलादयः-तेषां तदानीं का स्थितिरासीदित्यस्य सुस्पष्टं चित्रं हर्षचरितमुपस्थापयति। कवीनां स्थितिकालस्य निर्णये तु वस्तुतो हर्षचरितमितिहासः।

कादम्बरीगतपात्राणां प्रतीकात्मकता

डा० वासुदेवशरण अग्रवालमहोदयः 'कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन' एत्येत-न्नामकस्य निजपुस्तकस्य परिशिष्टभागे कादम्बरीगतपात्राणामाध्यात्मिक

---

१ (अग्निपुराणम्–३३६।१३ १४, ३३६। १५ १६)

प्रतीकरुपतामङ्गीकृत्य व्याख्यां करोति। एतत्प्रकरणमतिगभीरतया कियदंशे दुर्बोधमवश्यमस्ति, किन्तु सर्वथाऽसुश्लिष्टं न प्रतीयते। 'तेन शूद्रक' पदस्या-ध्यात्मिकव्याख्यां कुर्वता कथ्यते-यो यः संसारे लिप्तः-काम-वासना-वशीभूतः स एव शूद्रः'। शुचमभिदुद्राव शुचा वाऽभिदुद्रुवे इति शूद्रः। अवयवार्थसंभवाद् रूढ्यर्थस्य चासंभवात्, दृश्यते चायमर्थोऽस्यामाख्यायिकायाम्। (ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्यम्, १।३।३४, अपशूद्राधिकरणम्)। श्वेतकेतुः पुण्डरीकः मन्त्रिपुत्रो वैशम्पायनः शुकवैशम्पायनः इतीमे ज्ञानधाराप्रतीकाः। महाश्वेता प्रज्ञाप्रतीक-भूता। चन्द्रापीडो मनस्तत्त्वस्य प्रतीकः। अच्छोदसरोवरः पारमेष्ठ्यसमुद्र-स्य प्रतीकः। कादम्बरी विश्वमूल-कामतत्त्वप्रतीकरुपा। मनस्तत्त्वरुपस्य चन्द्रापीडस्य कामसंकल्परुपो वाहन इन्द्रायुधः। सृष्टेर्मातृतत्त्वस्य संज्ञा 'आपः' अद्भ्यः सरन्तीत्यप्सरसो मातृतत्त्वप्रतीकाः।

एवं प्रकारेणाग्रवालमहोदयेनैतस्य काव्यस्य विषये एका नूतना दिशा प्रदत्ता नवीनो दृष्टिकोण उपस्थापितः। परमयं दृष्टिकोण इदानीं शैशवावस्थाया-मास्ते। अस्य संवर्धनमपेक्षितम्। आशासेऽग्रे आलोचका अत्र विषये ऽधिकां रुचिं दर्शयिष्यन्ति,।

पद्यकाव्यनिर्माणे बाणभट्टस्याप्रवृत्तौ बीजम्

कादम्बरीकाव्येऽन्यत्र वा यानि कतिचित् पद्यानि बाणस्योपलभ्यन्ते, तानि न न्यूनस्तरकाणि इति यद्यपि सत्यम्, तथापि गद्ये यं चमत्कारं यद्वैलक्षण्यं तल्लेखनी ससर्ज, तयोस्तदीयपद्येषु सर्वथाऽभावः। मुख्यतो गद्यगतां बाणस्य गाढबन्धतां पश्यतां विदुषां मानसेषु 'शिथिलबन्धानि तानि पद्यानि बाणस्य' इति

विश्वासो नोदेति। प्रायः एतेनैव हेतुना 'डा० पिटर्सन' महोदयः कादम्बर्या एतानि प्रारम्भिकाणि पद्यानि बाणस्य रचितानि न स्वीकरोति परमीदृशी वार्ता वस्तुतो नास्ति, सन्ति नाम तानि बाणस्यैव। किन्तु बाणो गद्यनिर्माणे यथा प्रवीणो, न तथा पद्यनिर्माणे। उक्तञ्च—'यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्य-बन्धे न तादृशः' इति। सर्वथा सत्यमिदमाभाणकम्। अत एव बाणस्य पद्यानि तदीयगद्यसम्मुखे यदि हीनानि भासन्ते, तर्हि तत् सुसङ्गतमेव नाश्चर्यकरम्।

परमथापि शक्यते नामैतद् वक्तुं यद् यदि बाणः कमपि पद्यग्रन्थमरचयिष्यत्तदा स ग्रन्थोऽपि सहृदयसमाजस्य हृदयहार एवाभविष्यत्। तद् युगं गाढबन्धताया आसीदिति सत्यम्। मयूर इव सफलगाढबन्धप्रणेता बाणस्याग्रेऽवर्तत इत्यपि सत्यम्। परन्तु गाढबन्धतैव न काव्यसर्वस्वम्। गाढबन्धतां विनापि कालिदासादयो बहवो महाकवि-पदःलाभ-सौभाग्यं भेजिरे।

परमथापि कुतो न बाणः पद्य-काव्यनिर्माणे प्रवृत्त इत्येको जटिलः प्रश्नः। एतस्य प्रश्नस्य समाधानमनुमानस्याधारेणैव कर्तुम् शक्यम्।

बाणमयूरयोः श्वशुर-जामातृभावात्मकः संबन्धो यैराधारैः साध्यते तैरेवाधारैस्तयोर्मिथः स्पर्धा विद्वेषो वापि सिद्ध्यति। सूर्यशतकव्याख्याता मधुसूदनो लिखति—'मयूरभट्टः श्वशुरः बाणभट्टः तस्य जामाता। तयोः कवित्वप्रसङ्गे परस्परं स्पर्धाऽऽसीत्' इति।

मेरुतुङ्गाचार्योऽपि 'मयूरबाणाभिधानौ पण्डितौ मिथः स्पर्धमानौ' इत्युल्लिखति। भक्तामरस्तोत्रटीकाकारो यज्ञेश्वरोऽपि 'द्वयोः (बाणमयूरयोः) अन्योन्यं मत्सरः' इत्युल्लिख्य प्राकृतगद्यांशमेकं कुतश्चिदुद्धरति—"न सहन्ति इक्कमिक्कं न विणा

चिट्ठन्ति इक्कमिक्केन। रासह वसह तुरङ्गा जुयारी पण्डिय डिम्भा' (गर्दभः बलीवर्दः, अश्वः, द्यूतकरः पण्डितः बाल इतीमे परस्परं न सहन्ते न वा वियुक्ता स्थातुं पारयन्ति)'' इति बाणमयूरयोरियं स्पर्धा पश्चात् विद्वेषे परिणता। तयोर्मिथः शापविषयिणी दन्तकथापि तयोर्विद्वेषस्यैव साक्षिणी। ममत्विद्-मप्यनुमानम्-यन्मयूरेण सह विद्वेषं रक्षन् बाणो मयूरतनयां निजपत्नीं प्रत्यपि नानुकूलतां वहतिस्म। इदमेव कारणं बाणद्वारा निजपत्न्या अनुल्लेखे। अन्यथा रसिकशिरोमणिर्बाण आत्मना सह निजप्रेयस्याः पत्न्या नामामरं कर्तुं नेच्छे-दित्यत्र का युक्तिर्भवितुमर्हति। अस्तु, सिद्ध इव बाणमयूरयोः स्पर्धा-मूलो विद्वेषः।

एवं स्थितौ कियदधिकवयस्केन मयूरेण लिखितं मयूर (सूर्य) शतकन्नाम गाढ-बन्धमयं काव्यं पश्यन् स्वयमपि गाढबन्धपक्षपाती किन्तु तादृशगाढबन्धमयपद्य काव्यनिमाणेऽसमर्थः बाणः कथंकारं पद्यकाव्यनिर्माणे प्रवर्तेत, को वा स्वाभि-मानी स्वप्रतिद्वन्द्विसंमुखे स्वहीनतासूचकंसाधनं स्वयं संचिनुयात्?

अतो मम मनो निश्चितरुपेण कथयति यद् बाणो मयूरकाव्यकोटिकं मम पद्यकाव्यं न भवितुमर्हति' इति संभावनया समुत्थितंभयं हृदि रक्षन्नेव पद्य-काव्यनिर्माणाद् विमुखो बभूव, गाढबन्धमयं गद्यकाव्यमेव निर्माय स्वप्रतिद्वन्द्विनं मयूरं पराजेतुमियेष च। सा च बाणस्येच्छा सर्वथा परिपूर्णेत्यत्र न कश्चित्-संदेहः।

बाणभट्टकृतिषु साहित्यिकसौष्ठवम्

सामान्यतो बाणस्य सर्वासु कृतिषु विशेषतः कादम्बर्यां सर्वविधानि साहि-

त्यिकसौष्ठवानि सन्तीति प्रायः समे स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः। परमिह लघुनिबन्धे सर्वविधसौष्ठवानां सह समुद्धरणैः समुल्लेखो न संभवति। तथापि केवलं दिग्-दर्शनाय कलाभावोभयपक्षाधारेण विवेचनमिदं विधातुं प्रवृत्तोऽस्मि। विवेचनेऽस्मिन्नलङ्काररसयोः समीक्षा मुख्यतो विधया विद्यते। औचित्यस्य ध्यानं नियमतो रक्षणीयमस्ति। सामान्यतो यद्यपि बाणेन सर्वेषामेवालङ्काराणां प्रयोगः स्थाने स्थाने कृतः, परन्तु प्राधान्यं शब्दालङ्कारेषु श्लेषस्यार्थालङ्कारेषु चोपमारुपकोत्प्रेक्षाऽपह्नुति-विरोधाभास-परिसंख्यानामवलोक्यते। प्रथमत एषामलङ्काराणामेव सोदाहरणा समीक्षा प्रस्तूयते।

सुबोधता श्लेषस्य प्रधानो गुणः। स्वयमुक्तं बाणेन-'श्लेषोऽक्लिष्टः' इति। श्लेषं प्रयुञ्जानेन बाणेनास्य गुणस्य रक्षा सावधानतया कृता। परीक्षणाय दीयतां दृष्टिः कियत्सु श्लेषेषु। "मधुमासलक्ष्मीमिव षट्पद-पटलापह्रियमाण-कुसुम-रजो-धूसर-पादपरागाम्, उदधि-वेला-वन-लेखामिव मधुकरकुलनीलतमालकाननाम्, वनराजिमिव पाण्डुश्यामलवल्लीलतालङ्कृतमध्याम्" इमानि त्रीणि कादम्बरी विशेषणानि सन्ति। प्रथमविशेषणे वसन्तलक्ष्म्या सह द्वितीयविशेषणे समुद्र तटस्थितवनरेखया सह, तृतीयविशेषणे च काननपङ्क्त्या सह कादम्बर्यास्तुलना क्रियते। तुलनायामुपमानोपमेययोः सादृश्यस्य नियामको धर्मः समपेक्षितो भवति। सादृश्यनियामकश्च धर्मः स भवति य उपमाने उपमेये च तिष्ठति। यथा "कमलमिव मुखं मनोज्ञमेतत्" इत्यत्र कमलमुखयोः सादृश्यस्य नियामकं मनोज्ञत्वं गुणात्मको धर्मः। 'चन्द्र इव मुखं चकास्ति' इत्यत्र चन्द्रमुखयोः सादृश्यस्य नियामकं चकाशनं क्रिया। प्रकृते मधुमासलक्ष्मीकादम्बर्योः, उदधिवेलावनलेखाकादम्बर्योः, वनराजिकादम्बर्योश्च सादृश्यस्य नियामकास्त्रयः समानशब्दप्रतिपाद्या धर्माः 'षट्पदपटले'ति 'मधुकरकुले'ति, 'पाण्डुश्यामे'ति च विशेषणत्रयेण समुपस्थाप्यन्ते। त्रीण्यप्येतानि

विशेषणानि श्लिष्टानि। श्लेषमहिम्ना चैषु प्रत्येकस्य विशेषणस्य द्वौ द्वावर्थौ भवतः, यत्रैकैकोऽर्थः मधुमासलक्ष्मी-समुद्रवेलावनलेखा-वनराजिरूपोपमानेषु संघटते, अपरापरार्थश्च कादम्बरीरूपोपमेये संगच्छते। मधुमासलक्ष्मीपक्षीयार्थकरणाय 'षट्पदपटले'ति विशेषणस्य 'षट्पद पटल, अपह्रियमाण, कुसुम, रजः, धूसर, पादप, राग' इत्येवं पदच्छेदो विधेयः येन 'यत्र (मधुमासलक्ष्म्याम्) पादपानाम् (वृक्षाणाम) रागः (आरुण्यम्) भ्रमर विसर-नीयमान-पुष्प-धूलिभिः धूसरः' इत्यर्थः संपद्यते। कादम्बरीपक्षीयार्थकरणाय क्रियमाणे पदच्छेदे'........पाद, पराग,इति विशेषः, शेषं पूर्ववत्, येन 'यस्याः (कादम्बर्याः) पादयोः परागः (उपरागः) भ्रमरगणानीयमानपुष्परजोभिर्धूसर' इत्यर्थो जायते। एवमुदधि-वेलावनलेखापक्षीयार्थकरणाय 'मधुकरकुल.......इति विशेषणस्य 'मधुकर, कुल, नील तमाल, कानन' इतिच्छेदः येन 'मधुकरकुलेन नीलं तमालस्य काननं यस्याम्, इत्यर्थः। कादम्बरीपक्षे च मधुकर, कुल, नीलतम, (अलक) आनन इतिच्छेदः, येन मधुकरकुलेन मुखसौरभलोभसमागतेन नीलतमाः अलका यत्र तादृशमाननं यस्याः' इत्यर्थः। इत्थं वनराजिपक्षे 'पाण्डुश्याम—' इति विशेषणस्य 'पाण्डु, श्याम, लवली, लता, अलङ्कृत, मध्य, इतिच्छेदः येन 'पाण्डुश्यामाभिः लवलीलताभिः अलङ्कृतः मध्यभागो यस्याः' इत्यर्थः। कादम्बरी-पक्षे 'पाण्डु, श्यामल,वली, लता अलङ्कृत, मध्य' इतिच्छेदः, येन 'पाण्डुश्यामाभिः त्रिवलीरूपाभिः लताभिः अलङ्कृतः मध्यमः (कटिदेशः) यस्याः' इत्यर्थो भवति। अत्र वर्तमानाः दुर्बोधतया प्रसिद्धा अपि त्रयः सभङ्गश्लेषाः काव्याध्ययनपरि-ष्कृतशेमुषीकाणां सचेतसां कृते वस्तुतो न बोद्धुं कठिनाः स्पष्टत्वादिति चातुरी श्लेषप्रयोगे बाणस्य। कविमातुरुपमायाः उपमानोपमेययोर्लिङ्गवचनादि-भेदाभावः, बाह्याभ्यन्तरोभयविधसाम्यमूलकत्वम्, वर्णनीयविषयवस्तुप्रस्फुटन कारित्वञ्च गुणाः स्वीक्रियन्ते आलङ्कारिकैः। यथा—

"सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥"

इत्यत्र कालिदासोद्भाविता दीपशिखेन्दुमत्योरुपमा। अत्र दीपशिखेत्युपमान बोधकः शव्दो यथा स्त्रीलिङ्गस्तथैवोपमेयवोधकः 'सा पतिंवरा' इति शव्दोऽपि। वचनमप्युभयोः समानं द्वयोरेकवचनान्तत्वात्। सञ्चरणशीलत्वमपि द्वयोस्तुल्यम्। राजमार्गे नीयमाना दीपशिखा संचारिणी, नृपयुवकसभामध्ये पतिवरणायोत्सुका इन्दुमत्यपि सञ्चारिणी, बाह्यसाम्यान्येतानि। अन्तः साम्यमपि रमणीयम्, उभयोः सुवर्णवद्दीप्यमानत्वात्। एवमनयोपमया 'बहुलयुवजनमध्ये स्वचक्षुषा निरीक्ष्य पतिं वरीतुमितस्ततो भ्रमन्तीन्दुमती यं यमिन्दुमती लाभाशया प्रसन्नाननं राजानं पश्चात्त्यक्त्वा पुरोऽसरत् स स राजा इन्दुमतीलाभ निराशतया विवर्णो जातः' इत्येतस्य वर्णनीयार्थस्य कीदृशं प्रस्फुटत्वं संपन्नमित्यस्य हृदयङ्गमीकरणाय ध्यानीयमेकं दृश्यम्—प्रशस्तो राजमार्गः तस्योभयत उन्नताः प्रासादाः। राजमार्गश्च रात्रौ तमसाच्छन्नो जातः, प्रासादा अपि तमोमग्नाः। तावत् दीपशिखाम् आदाय कश्चिद् राजमार्गे समायाति, मन्दं मन्दञ्चाग्रे गच्छति। तदीयकरतलनिहिता सञ्चरन्ती दीपशिखा यस्मिन् यस्मिन् सम्मुखस्थे प्रासादे स्वप्रभां विक्षिपति, स प्रासादोऽकस्माच्चमत्कृतो भवति परन्तु यदैव दीपशिखाऽग्रे गच्छति, पश्चात् स्थिताः प्रासादास्तमोमलिना जायन्ते।

इयमुपमा संस्कृतसाहित्ये निरुपमा 'उपमा कालिदासस्य' इत्युक्तिं सत्यापयति।

अथेदानीं बाणभट्टस्योपमा निभालनीया।

"क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत" (कादम्बरी) इत्येका बाणभट्टस्य रमणीयोपमा। अस्यामुपमायामपि सर्वे एवोपमागुणा गणयितुं शक्याः। उपमानभूता तपोवनधेनुर्यथा दिक्षु विहृत्य सायंकाले परिवर्तमाना कपिलवर्णा रक्तनेत्रा पवित्रा च तथैव क्वचिदज्ञातदेशे विहृत्य समागच्छन्ती कपिलवर्णा रक्तनक्षत्रा सन्ध्यापि वर्तते। तपस्विनामाश्रमे तपोवनधेनोस्तुलनाया औचित्यं पृथगेव चमत्करोति सचेतसश्चेतः।

यद्यप्यस्या उपमायाः श्रेयोऽधिकांशे कालिदासस्यैव लभ्यम्, यतो निश्चितमस्या उपमायाः प्रेरणा—

"पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिन-क्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥"

इत्यस्मात्कालिदासपद्यादेव प्राप्ता। तथापि च्छायामात्रमेव गृहीतं न दोषाय। कियती नवीनतापि संपादिता वाणेन स्वकीयोपमायाम्। कालिदासपद्ये सन्ध्योपमानम्, धेनुरुपमेया, अत्र तु धेनुरेवोपमानम्, सन्ध्यैवोपमेयभूता। त्यज्यतां वेयमुपमा, अन्विष्यतामुपमान्तरं वाणस्य। दृश्यताम्—"कदा हारिद्रवसनधारिणी सुतसनाथोत्सङ्गा द्यौरिवोदितरविमण्डला सवालातपा मामानन्दयिष्यति देवी" (कादम्बरी)। बाणस्येयमप्युपमा स्वकीय-समग्र-गुणग्रामैः पाठकानाकृष्टुं क्षमते, यथाद्यौः बालातपकपिला क्रोडीकृतदिवाकरा च, तथैव पीतवसनपरिधाना तनयशोभितोत्सङ्गा देवी। देवीदिवोर्न वाह्यमेव साम्यम्, विशदाशयत्वाद्याभ्यन्तरसाम्यमपि। सूर्यसुतयोरपि तेजस्वितादिमूलं साम्यं मनोरमम्।

अन्या अपि एतादृशी उपमा बाणग्रन्थे वह्वी गवेषयितुं शक्या। रूपकप्रयोगेऽपि प्रवीणो वाणः।

"एष प्रवाहः करुणारसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, परशुस्तृष्णालता-गहनस्य, सागरः सन्तोषामृतरसस्य" (कादम्बरी)। कीदृशी रूपकपरम्परा ? इयं रूपकसंततिर्वर्णनीयस्य मुनेः करुणामयत्वं, सदुपदेशद्वारा सन्मार्गप्रवर्तकत्वं, निरीहत्वं, सदा सन्तुष्टत्वञ्च विवृत्य दर्शयतीव।

उत्प्रेक्षायास्तु आचार्य एव बाणः। अस्योत्प्रेक्षापि निरीक्ष्यताम्—"अपरसागराम्भसि पतिते दिवाकरे वेगोत्थितमम्भःशीकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसन्ध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः" (कादम्बरी)।

दिवसावसानोत्तरकालेऽकस्मादाकाशे बहवस्ताराः प्रकटीभवन्ति, तासु तारकासु पश्चिमपयोनिधिजले दूराद्दिवाकरस्य पतनेनोत्पततां जलकणानां कल्पना, तारकिते वियति सिद्धकन्यकाभिर्विक्षिप्तैः सन्ध्यार्चनकुसुमैः कर्बुरितत्वस्य संभावना, स्वाभाविके सन्ध्यारागगलने उन्मुखमुनिजनद्वारोपरिविकीर्णप्रणामाञ्जलिजलकर्तृकक्षालनहेतुकत्वोत्प्रेक्षा च महतीं समीचीनतां धत्ते। अत्रोत्प्रेक्षाङ्गतया सन्ध्यार्चनकुसुम-प्रमाणाञ्जलिसलिलयोश्चयनमाश्रमीयवातावरणस्य सर्वथाऽनुकूलमिति परमौचित्यचुम्बितेयमुत्प्रेक्षा।

अपह्नुते रमणीयतापि बाणग्रन्थे नापह्नोतुं योग्या।

दृश्यताम्—"अथ कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। ऊरुकम्प एव गतिं रुरोध। नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमयशो लेभे। निश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ। लज्जैव

वक्तुं न ददौ, मुखकमलपरिमलागतालिवृन्दं द्वारतामगात्। मदनशरप्रहार वेदनैव सीत्कारमकरोत्, कुसुमप्रकरकेतकीकण्टकक्षतिः साधारणतामवाप।" (कादम्बरी)

समुचितेऽवसरेऽपह्नुतेः सुन्दरतमोऽयं प्रयोगः। अत्रापह्नुतिमयीयं वाक्य-विन्यासशैली विलक्षणमाकर्षणमुत्पादयति। कामकलाप्रथमपरिचयोद्यताया मुग्धाया नायिकायाः सलज्जसस्पृहभावाभिव्यक्तयेऽस्या अपह्नुतिमयालङ्कृत-शैल्याः प्रयोगः परमोपयुक्तः प्रतिभासते।

विरोधाभासोऽपि बाणग्रन्थे विपुलो विभासते।

"यत्र मत्तमातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च अभुजङ्गगम्याः कञ्चुकिन्यश्च लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः" (हर्षचरितम्)

"अपरिमितबहलपत्रसञ्चयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजन सेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम" (कादम्बरी)।

विरोधाभासस्येमौ प्रयोगौ कवीनामादर्शभूतौ अनेकालङ्कारग्रन्थसमुद्-धृतौ च।

परिसंख्या तु प्रियतमेव बाणस्य न कदापि विस्मर्यते।

"यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, रतिकलहेषु दूतप्रेषणानि न प्रजानामासन्"। (कादम्बरी)

"यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु" (कादम्बरी)।

"यत्र महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्" (कादम्बरी)।

एवं परिसंख्यायाः सर्वेऽपि प्रभेदा बाणेन प्रयुक्ताः। एताः परिसंख्या न वाग्विलासमात्रम्, अपि तु वर्णनीयवस्तुतत्त्वप्रतिभासिकाः सहृदयेभ्यो नितरां रोचन्ते।

अतिशयोक्तिस्तु सर्वालङ्कारमूलम्। 'कोऽलङ्कारोऽनया विना' इत्यालङ्कारिकसंप्रदायः। अतो बाणस्यालङ्कारप्रियस्य ग्रन्थे सुतरामतिशयोक्ति-प्रयोगः संभवति।

शब्दशिल्पं बाणस्य प्रसिद्धं सर्वत्र सुलभञ्च। एवञ्च पुष्टो बाणस्य कलापक्ष इत्यत्र न काचन विचिकित्सा। किन्तु बाणस्य कला भावानुगामिनीति उदाहृतस्थलेषु सर्वत्रानुसन्धानेन बोद्धुं शक्यम्। सर्वत्र समीक्ष्य कृतोऽलङ्कारप्रयोगो बाणेन भावं पुष्णाति।

कलापक्ष इव भावपक्षोऽपि प्रबलो बाणस्य। पटीयान् खलु बाणो रससृष्टौ। रससृष्ट्यर्थं बाण ईदृशं वातावरणं रचयति, ईदृशीं शब्दशय्यां सज्जयति ईदृशीमलङ्कारपरम्परां ग्रन्थाति, येन रसस्रोतस्विन्या अजा धारस्राः प्रवहन्ति, मग्नाश्च तत्र सहृदयाःपायं पायं रसपीयूषं मत्ता भवन्ति, नान्यच्चेतयन्ते।

"कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयतेजनोऽयम्" इतीयमुक्ति र्न केवलं प्रशंसा, अपि तु परमार्थकथनमेव।

राज्ञस्तारापीडस्य भोगविलासं वर्णयन्नयं महाकविः संभोगशृङ्गारस्योदात्तं स्वरुपमभिव्यक्तवान् । तथाहि—

"कदाचिदुल्लसत्कठोरकपोलपुलकजर्जरितकर्णपल्लवानां प्रणयिनीनां चन्दन-जलच्छटाभिरिव स्मितसुधाच्छविभिरभिषिच्यमानः, कर्णोत्पलैरिव लोचनांशुभिरता-ड्यमानः, कुङ्कुमधूलिभिरिवाभरणप्रभाभिराकुलीक्रियमाणलोचनः, धवलांशुकैरिव करनखमयूखजालकैराहन्यमानः, चम्पककुसुमदलमालिकाभिरिव भुजलताभि-राबध्यमानः, दष्टाधराधूतकरतलचलन्मणिवलयकलकलरमणीयम्, अतिरभस दलित-दन्तपत्रदलदन्तुरशयनम्, उत्क्षिप्तचरणतलगलदलक्तकरक्तशेखरम्, सरभसकचग्र-हचूर्णितमणिकर्पूरम, उल्लसितकुचकृष्णागुरुपङ्कपत्रलताङ्कित- प्रच्छदपटम्, अच्छ. श्रमजलकणिकालुलितगोरोचनतिलकपत्रभङ्गम्, अनङ्ग परवशः सुरतमाततान ।"

दीर्घमिदं प्रकरणम् । आलम्बनविभावेन सहैव सर्वाण्युद्दीपनानि अनुभा-वाश्च सर्वे सम्भोगशृङ्गारस्यात्र वर्णितानि, अत एव परिपुष्टोऽत्र संभोगोऽभिव्यज्यते ।

विप्रलम्भशृङ्गारस्तु मुख्य एवास्मिन् ग्रन्थे । महाश्वेताकादम्बर्यो-र्विलापेषु विप्रलम्भस्य मधुरतराभिव्यक्तिः । महाश्वेता यदा—

"हा नाथ जीवितनिबन्धन आचक्ष्व । क्व मामेकाकिनीमशरणामकरुणं विमुच्य यासि । पृच्छ तरलिकाम् त्वत्कृते मया यानुभूतावस्था । युगसहस्राय-माणः कृच्छ्रेण नीतो दिवसः । प्रसीद । सकृदप्यालप । दर्शय भक्तवत्सल-ताम् । ईषदपि विलोकय । पूरय मे मनोरथम् । आर्तास्मि । भक्तास्मि । अनुरक्तास्मि । अनन्यशरणास्मि । मदनपरिभूतास्मि । किमिति न करोषि

दयाम्। कथय किमपराद्धम्। किं वा नानुष्ठितम् मया। कस्यां वा नाऽऽज्ञायामादृतम्। कस्मिन्वा त्वदनुकूले नाभिरमितम्। येन कुपितोऽसि" इत्येभिरक्षरैर्विलपति। कादम्बरी वा यदा....

"पत्रलेखे! वल्लभतया तस्मिन् स्थाने न तातो नाम्बा न महाश्वेता न मदलेखा न जीवितम्, यत्र मे भवती दर्शनात् प्रभृति प्रियासि, न जाने केन कारणेनापहस्तितसकलसखीजनम् त्वयि विश्वसिति मे हृदयम्। कमपरमुपालभे। कस्य वान्यस्य कथयामि परिभवम्। केन वान्ये न सह साधारणीकरोमि दुःखम्। दुःखभारमिदमसह्यं निवेद्य भवत्यास्त्यक्ष्यामि जीवितम्। जीवितेनैव शपामि ते। स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि, किमुतापरहृदयेन। साहं न संकल्पिता पित्रा, न दत्ता मात्रा, नानुमोदिता गुरुभिः। कातरा चानाथेव बलादवलिप्तेन गुरुगर्हणीयतां नीता कुमारेण चन्द्रापीडेन। कथय महतां किमयमाचारः? किं परिचयस्येदं फलम्? यदेवं मे मनः परिभूयते। प्राणपरित्यागप्रायश्चित्तेन प्रक्षालयाम्यात्मनः कलङ्कम्।" इत्येवंविधैर्वाक्यैश्चन्द्रापीडमुपालभते। तदा विप्रलम्भेन सह करुणोऽपि रसो मूर्तिमानिव पुरः समुत्थितो भवति पाठकानाम्। प्रसङ्गमेनं दृष्ट्वालङ्कारिकाः करुण-विप्रलम्भाभ्यां भिन्नं 'करुणविप्रलम्भ' नामकमेकं रसं स्वीचक्रुः।

जरद्द्रविडधार्मिकवर्णने हास्यरसोऽपि प्रकटमभिव्यक्तः। नायिकासौन्दर्यवर्णने पटुतरा बाणस्य लेखनी। चाण्डालकन्यायाः, शूद्रकस्नानवेलायां समुपस्थितानां वारविलासिनीनां महाराज्ञ्या विलासवत्याः, ताम्बूलकरङ्कवाहिन्याः पत्रलेखायाः, तपःपूताया महाश्वेतायाः, गन्धर्वराजतनयायाः कादम्बर्याश्च रूपवर्णने बाणस्य कल्पना राजोचितोदात्तगत्या पुरः प्रसर्पति। शब्दसंपत्तिः, अलङ्कार-

ततिः, स्वभावोक्तिः, रसमन्दाकिनी च स्वतो महाकविसेवायां समुपतिष्ठन्ते ।

स्त्रीणां नखशिखावर्णन इव पुरुषाकृतिवर्णनेऽपि दक्षो बाणः। शूद्रक-चन्द्रापीडयो राजोचितवर्णन एव नहि, अपि तु जाबालि-हारीत-पुण्डरीक-कपिञ्ज-लादीनां तपस्विजनोचितवर्णनेऽपि बाणेन सूक्ष्मेक्षिकायाः परिचयो दत्तः। शवर-सेनापतेर्मातङ्गस्य भीषणवर्णने जरद्द्रविडधार्मिकस्य भयजुगुप्साहास्यमिश्रितवर्णने च बाणस्य लेखनी नाल्पं साफल्यमुपलेभे ।

प्रकृतिचित्रणेऽपि चतुरो बाणः। बाणेन प्रकृतेः कोमलकठोरयोरुभयो रूपयोश्चित्रणं महता साफल्येन कृतम् ।

"कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः संफुल्लमल्लिकाधवला-ट्टहासो महाकालः" इत्यादिना हर्षचरिते कृतं ग्रीष्मवर्णनं "अस्ति जलनिधि वेलावलग्ना······ प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कत्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा" इत्यादिना कादम्बर्यां कृतं विन्ध्याटवीवर्ण-नञ्च प्राकृतिककठोररूपवर्णनेषूत्कृष्टतमम् ।

प्राकृतिककोमलरूपवर्णनप्रसङ्गे च प्रभात-सन्ध्या-चन्द्रोदय-मलय-मारुत-वसन्तादीनां वर्णनानि बाणकृतान्यादर्शभूतानि कवीनाम्। सन्ध्यावर्णनमति-प्रियं बाणस्य प्रतीयते। हर्षचरिते चतुर्षु स्थलेषु कादम्बर्यां च चतुर्षु स्थलेषु बाणेन सन्ध्यावर्णनं विहितम्। सर्वेषु च सन्ध्यावर्णनेषु भिन्ना रीतिः भिन्ना शैली भिन्नमेव चोपादानं बाणेन स्वीकृतानि। उद्ध्रियन्ते च कियतां सन्ध्या-वर्णनानां कियन्तोंऽशाः ।

"प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्, निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीतिप्रीते सुषुप्सति मृदु मृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकन्धरे धुतपक्षराजिवीजितराजीवसरसि राजहंसयूथे" (हर्षचरितम्)

"जलनिधिजलप्रतिविम्बितरविबिम्बराजिभास्वराभ्रावलंबिनी गृहीतार्द्रमांसभारेव चावभासे वासरावसानवेला वेतालनिभा" (हर्ष० अष्टम उ०)

"क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंससितदुकूलपरिधाना मृणालयज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिवसकरे वेगोत्थितमम्भःशीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसन्ध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः" (कादम्बरी)

"क्रमेण च प्रतीचीकर्णपूररक्तोत्पले लोकान्तरमुपगते भगवति गभस्तिमालिनि कृष्णागुरुधूमलेखास्विव तिमिरलेखासु स्फुरन्तीषु दिशामुखेषु अलिकुलमलिनेन कुवलयवनेनेव रक्तकमलाकरे तिमिरेणोत्सार्यमाणे सन्ध्यारागे कमलिनीनिपीतमातपमुन्मूलयितुमन्धकारपल्लवेष्विव प्रविशत्सु रक्तकमलोदराणि मधुकरकुलेषु निशाविलासिनीमुखावतंसपल्लवे गलिते सन्ध्यारागे" (कादम्बरी)

एषां चतुर्णां प्रकरणानां वर्ण्यविषय एक एव सन्ध्या, किन्तु न क्वापि पौनरुक्त्यम् । महती खलु कवित्वशक्तिर्बाणस्य, विचित्रा च कल्पनाचातुरी । धन्यो बाणः ।

—तृतीयो भागः—

बाण–प्रशस्तयः

[१]

अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि,,

[२]

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य
शक्तिं न केऽत्र कविताास्त्रमदं त्यजन्ति ।
मान्द्यं न कस्य च कवेरिह कालिदास·
वाचां रसेन रसितस्य भवत्यधृष्यम् ॥

[३]

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभा,
एकातपत्रं भुवि पुष्यभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव ॥
(त्रयोऽपि श्लोकाः सोड्ढलस्य, उदय,)

[४]

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।

किं पुनः वल्कृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ॥

(धनपालस्य, तिलक,)

[५]

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि,
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी वाणो बभूवेति ॥

(गोवर्धनस्य, आ० स०)

[६]

कादम्बरीसहोदर्या सुधया वै बुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकयाख्यायि बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥

(धनपालस्य, तिलक म०

[७]

रुचिरस्वरपर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी ? नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

(धर्मदासस्य)

[८]

सहर्षचरिता शश्वद्धृतकादम्बरी सदा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा चरति क्षितौ ॥

(राजशेखरस्य, सू० मु०)

[९]

बाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोपि पदक्रमः ।

प्रायः कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ।।

(राजशेखरस्य, सू० मु०)

[१०]

दण्डिन्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः ।
प्रविष्टेत्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते ।।

(हरिहरस्य)

[११)

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ।।

(सोमेश्वरस्य, की० कौ०)

[१२]

उच्छ्वासोऽपि न निर्याति बाणे हृदयवर्तिनि ।
किं पुनर्विकटाटोपपदबन्धा सरस्वती ।।

(सु० र० को०)

[१३]

यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः ।
गत्यां गत्यामियं देवी विचित्रा हि सरस्वती ।।

(भोजराजस्य सर० कण्ठा)

[१४]

वीणापाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम् ।

भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥

(कस्यापि)

(१५)

शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निश्शेषो रञ्जितो जनः ॥

(त्रिविक्रमस्य)

(१६)

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्त्तय–
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम् ॥

(रुय्यककृतव्यक्तिविवेकव्याख्याने)

[१७]

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थघटने चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी –
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

(श्री चन्द्रदेवस्य)

एतत्प्रशस्तिपद्यपठनेन बाणस्य जनप्रियतातिशयः प्रतीतो भवति ।

उपसंहारः

रसप्रवणता, कलासौन्दर्यम्, वक्रोक्तिमयाभिव्यक्तिप्रणाली, सानुप्राससमस्तासमस्तद्विविधपदावली, स्वभावोक्तेः रुचिरा योजना, वर्णनीयविषयविशेषानुरोधिविविधालङ्कारप्रयोगश्च बाणपरिशीलितशैल्या वैशिष्ट्यम्,

इदञ्च वैशिष्ट्यं संस्कृतकविसमाजे महाकवेर्बाणस्य स्थानं सर्वोन्नतं साधयति ।

बाणस्य कथा इयद्रसमयी विद्यते यया सा स्वयं पदशय्याऽश्रिता संजायते । बाणस्योक्तयः कलामय्यः कोमलाश्च । भावपक्षस्य (रसस्य) कलापक्षस्य (कलालापविलासस्य) च विचित्रमिमं समन्वयं समीक्ष्य सचेतसस्तथैव चमत्कृता भवन्ति- यथा कलामयीमुक्तिं प्रयुञ्जानायाः कोमलाया नवोढाया रसपरिपूर्णतया स्वयं शय्यायां समागमने नायकस्य हृदयं चमत्कृतं भवति ।

"स्फुरत्कलालापविलासकोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥"

[ओं शान्तिः ओं शान्तिः ओं शान्तिः]

ॐ

वश्यवाणीककविचक्रवर्त्ती बाणभट्टः

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

प्रसन्नराघवकारजयदेवस्य,

गीर्वाणवाण्यां सत्सु अपि परः सहस्रेषु पद्यप्रबन्धेषु गद्यकाव्यानां गणना प्रायेण अङ्गुलिपरिच्छेद्या एव । नायमवसरस्तस्य कारणविवेचनाय । किन्तु सुप्रतिपन्नमेव एतत् यत् एतेषु गद्यकाव्यप्रणेतृषु बाणभट्ट एव सर्वगद्यकारकवीनां मौलिमधिशेते । बाणस्य हर्षचरितकादम्बरीनामकं गद्यकाव्यद्वयं सर्वेषां गद्यकाव्यानां मूर्धानमधिरोहति । अत्र प्रतिपदमेव अस्य कविचक्रवर्त्तिनो नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा विद्योतते । हर्षचरितं तु आख्यायिका, कादम्बरी कथास्ति । यथाह बाणः हर्षचरितप्रस्तावनायाम् :—करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलमिति । पुनश्च कादम्बरीप्रस्तावनायाम्—धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा इति । यद्यपि पाश्चात्यविद्वांसः एतत्कृतिषु क्लिष्टतामनुभवन्ति अतः ते तास्तथा न समाद्रियन्ते, तथापि प्राचीनार्वाचीनभारतीयपण्डि-

तमण्डलीषु अस्य महाकवेः भूयान् समादरो भवति। बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति कथयता आलोचकेन बाणभट्टः सकलकविमण्डलीमूर्धनि अधिरोपितः। गोवर्धनाचार्यस्तु तं वाग्देवतावतारमेव मन्यते। तदुक्तं तेन—प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति। कोऽपि अपरः श्रद्धावान् परवर्त्ती कविस्तम् इत्थमुपवर्णितवान्—

परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी।
बाणेन तु वैजात्यात्कथयति नामैव वाणीति॥

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इति समालोचकाः आलोचन्ते। पद्ये काव्यरचना यादृशी सुकरा सुगमा चास्ति, गद्ये न सा तादृशी। तथापि अस्माकं बाणः अस्मिन् कठिनगद्यकाव्यरचनानिकषे अपि कषितः सन् निर्मलः स्वच्छः उत्तीर्णः।

यथार्थतस्तु बाणात् प्रागेव बहवो गद्यग्रन्था लिखिताः। परन्तु तेषु केवलं पञ्चषा एव लभ्यन्ते। तेषां प्रभावः परवर्त्तिगद्यकाव्येषु अल्पोऽपि न लक्ष्यते। परवर्त्तीनि गद्यकाव्यानि बाणस्य गद्येन यथाऽनुप्राणितानि प्रभावितानि च सन्ति न तथा अन्यकवेर्गद्येन। पद्यकाव्यरचनायां कालिदासस्य यत् स्थानं मन्यते गद्यरचनायां बाणस्यापि तदेव स्थानं मन्यते। कालिदासस्य पद्यकाव्यं यादृशं सुन्दरं सरसमुत्कृष्टञ्चास्ति तादृशमेव उत्कृष्टं सरसं महत्त्वशालि चास्ति बाणस्यापि गद्यकाव्यम्। बाणः स्वगद्यरचनासु यत् प्रौढं परिमार्जितं च रूपं गद्यकाव्यस्य प्रस्तुतं कृतवान् तदेव रूपम् अग्रे संस्कृतसाहित्यस्य परवर्त्तिगद्यकवीनामनुकरणीयमभवत्। पद्यसाहित्यस्य समक्षे गद्यसाहित्यस्य °अत्यल्पता

पाठकानां हृदयं दलयति। तथापि बाणो वश्यवाणीकः कविः हर्षचरित-कादम्बरीरत्नद्वयमुत्पाद्य समस्तालपतायाः समग्रां पूर्त्तिमेकदैव कृतवान्। हर्षचरितं बाणस्य प्रथमः काव्यरचनाप्रयासः। तथापि अस्मिन्नेव प्रारम्भिकप्रयासे कादम्बर्याः उत्कृष्टगद्यरूपस्य साक्षात्कारो भवति। इदमपि कथयितुं शक्यते यत् हर्षचरितस्य गद्यं कादम्बर्याः भाविगद्यस्य प्रस्तावनैव। हर्षचरिते बाणेन या काव्यसाधना कृता सैव साधना कादम्बर्यां सिद्धेव प्रतिभाति। यत्र तस्य काव्यप्रतिभा हर्षचरितस्यापेक्षया अत्यन्तं देदीप्यमाना दृश्यते। कादम्बर्यां बाणस्य गद्यम् एतावत् प्रौढम् एतावत् परिपक्वम् एतावदुच्चकोटिं प्राप्तञ्चास्ति यत् न कोऽपि अन्यः कविः गद्यकाव्ये तस्य तुलामारोढुं शक्नोति। भाव-दृष्ट्या कलादृष्ट्या वा दृश्येत, बाणस्य काव्यद्वयं सर्वाङ्गपूर्णमेव भाति। परन्तु हर्षचरितस्य केचिदधिका विशेषाः सन्ति। अत्र तत्कालीनभारतीयसभ्यतायाः संस्कृतेश्च मनोहरं चित्रमङ्कितमस्ति। स्वदेशीया विदेशीया वा विद्वांसः सर्वे-हृदयेन मन्यन्ते यत् साहित्यिकदृष्ट्या, ऐतिहासिकदृष्ट्या, सामाजिकदृष्ट्या, धार्मिक-दृष्ट्वा सांस्कृतिकदृष्ट्या च हर्षचरितं संस्कृतसाहित्यस्याऽमूल्यं ग्रन्थरत्नमस्ति। अतो विदुषां दृष्टौ हर्षचरितम् उत्तरगुप्तकालीनभारतीयसंस्कृतेः विश्वकोश एव अस्ति। अनया दृष्ट्या इदं ग्रन्थरत्नमन्यान्येभ्यः पुस्तकेभ्योऽत्यधिकमूल्यकं प्रतीयते। अस्य मूल्यम् अङ्कितुमशक्यम्। इयमस्या एका अधिका विशिष्टता यत् अत्र कविना आत्मचर्चा अपि कृता। बाणात् प्राक् न केनापि अन्यकविना स्वग्रन्थे आत्मचरितं वर्णितम्। अतो वयं तेषां जीवनविषये न किञ्चिदपि जानीमः। का कथान्यस्य ? स्वयं कविकुलगुरुकालिदासस्य जीवनविषये अपि वयमद्यावधि अनभिज्ञा एव। परन्तु सौभाग्येन अयं विहारप्रान्तवासी मग-

धविलासी वत्सकुलप्रकाशी कविः बाणः आत्मविषये स्वजन्मभूमेः, स्ववंशस्य, स्वजीवनस्य कतिपयप्रसिद्धघटनानां च पर्याप्तं वर्णनं हर्षचरितस्य प्रारम्भिकेषु त्रिषु उच्छ्वासेषु कृतवान् येन वयं तस्य जीवनस्य पर्याप्तं ज्ञानं प्राप्नुमः। न केवलमात्मवर्णनमेव, स्वपूर्वगामिनाम् अष्टानां कवीनां वर्णनमपि अनेन हर्षचरितस्य प्रस्तावनायां कृतम्। येषु कतिपये तु अनेन वर्णनेनैव विस्मृति-गर्भपतनात् निवारिताः सुरक्षिताश्च। हर्षचरितात अन्यत्र कुत्रापि भट्टारकहरिश्चन्द्र सातवाहनाढ्यराजानां काव्यानां नामापि वयं न लभामहे। भास-कालिदास-प्रवरसेनादीनामपि समयः हर्षचरितवर्णनेनैव निश्चितः। बाण एषां वर्णनं नाकरिष्यच्चेत् तेषां नामापि न वयम् अज्ञास्याम। तेषां कालविषयेऽपि वयम् अन्धकारे एव निमग्नाः स्याम।

बाणस्य कालः

काव्यशैल्यां गुम्फिता बाणस्य आत्मकथापि अतीव मनोहारिणी। असौ वश्यवाणीककविचक्रवर्त्ती बाणः अवनिधवचक्रर्त्तिनः नरेन्द्रप्रवरस्य हर्षवर्धनस्य आश्रितः सभापण्डित आसीत। हर्षस्य जीवनकालः ५९० ईशवीयाब्दात् ६४८ ईशवीयवर्षपर्यन्तम्। बाणः आत्मानं हर्षस्य सभापण्डितं वर्णयति। स कान्यकुब्जनगरे हर्षस्य सभायां बहुवर्षपर्यन्तं सभ्य आसीत्। अतः हर्षस्य समय एव बाणस्यापि समयः। अतो बाणभट्टस्य जीवनकालं खिष्टाब्दस्य षष्ठशतकस्याऽन्तिमभागे सप्तमशतकस्य पूर्वार्द्धभागे च मन्यामहे।

चालुक्यनृपतिजगदेकमल्लस्य शासनकाले दुर्गासिंहः स्वरचिते कर्णाटपञ्चतन्त्रे लिखति यद् बाणः हर्षस्य आश्रित आसीत। अवनिधवचक्रवर्ती नरेन्द्रप्रवरः हर्षदेवः बाणं 'वश्यवाणीककविचक्रवर्त्ती" इति उपाधिना विभूषित-

वान्। जगदेकमल्लस्य कालस्तु ख्रिष्टाब्दस्य अष्टमशतकमस्ति। वामनोऽपि अष्टमे शतके कादम्बरीतः स्वपुस्तके उद्धरणानि दत्तवान्। अतः बाणस्य कालः सप्तमे शतके एव पतति।

अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि॥

[सौठ्लस्य]

बाणस्य वंशजन्मादिवर्णनम् एवमनुश्रूयते-एकदा पितामहचतुर्मुखस्य सभायाम् उपमन्युना सह कलहायमानं दुर्वाससं विस्वरं साम गायन्तं श्रुत्वा सरस्वती जहास। प्रकृतिकोपनेन तेन ऋषिणा शप्ता सती सा दुःखार्त्ता भूत्वा स्वसखीसावित्रीसहिता मन्दाकिनीमनुसरन्ती शोणस्य पश्चिमे तीरे अवतीर्य तत्र लतामण्डपे वासं चकार। तत्र विधिवत् पार्थिवं शिवं पूजयन्ती फलमूलेन स्वशरीरस्थितिं कुर्वती सा कतिपयदिवसानन्तरम् उत्तरस्यां दिशि अश्वानां हेषितं श्रुत्वा कुतूहलात् लतामण्डपात् सावित्रीसहिता बहिरागता। अपश्यच्च युव-प्रायेण सहस्रमात्रेण पदातिबलेन सनाथमश्ववृन्दम्, मध्ये च तस्य अश्वारूढम् अष्टादशवर्षदेशीयं युवानम्, तस्य पार्श्वे च दीर्घकायं जनमेकमश्वारोहिणमागच्छन्तं ददर्श। युवासौ पदातिमुखात् तयोः सुन्दर्योः कन्ययोः तत्रोपस्थितिं श्रुत्वा ते द्रष्टुं लतामण्डपसमीपं पुरुषद्वितीयः आगतः। वृत्ते शिष्टाचारे सावित्री प्रवयसं कुमारस्य परिचयं पृष्टवती। ततः सोऽवादीत्।

अयं राजकुमारो महर्षेश्च्यवनस्य आत्मजः। अस्य मातास्ति सुकन्या महाराजशर्यातस्य राजपुत्री। सा स्वपितुः गृहे एनमजनयत्। अनन्तरं सा

पतिसमीपं गता। परन्तु तस्याः पिता शिशुं कुमारं नप्तारं स्नेहात् स्वगृहे एव पोषितवान्। अधुना असौ प्राप्तयौवनः सन् मया सार्धं स्वपितुरन्तिकं प्रेषितः। इतश्च गव्यूतिमात्रम् इव पारेशोण च्यवनस्य च्यावनं नाम काननं निवासः। तत्रैव आवां गच्छावः। वयमपि भवत्योः वृत्तान्तं श्रोतुमिच्छामः। तत् देहि स्वपरिचयम् इति। ततः सावदत्, श्रोष्यति भवान् सर्वं यथाकालम्। भूयसो दिवसानत्र स्थातुमभिलषति नौ हृदयम्। अल्पीयांश्चायमध्वा। परिचय एव प्रकटीकरिष्यति। तदनन्तरं कुमारः सपरिकरः पितुः दर्शनार्थं गतः। परन्तु अस्मिन्नेव प्रथमसमागमे प्रेमी च प्रेयसी च उभौ परस्परं गाढमनुरक्तौ। इतः सा प्रेमविह्वला तमेव सततं ध्यायति। ततः कुमारोऽपि तस्यामनुरक्तः तामेव अनिशं चिन्तयन् भोजनं पानं विस्मृत्य कृशगात्रोऽभवत्। अनन्तरं दूतीमालतीद्वारा तयोः मिलनं शोणतटे एव घटितम्। गान्धर्वविवाहश्च तयोरभवत्। अनन्तरं तेन सार्धं रमयन्ती सरस्वती सुखातिशयेन दिवसमेकमिव संवत्सरमधिकमनैषीत्। दैवयोगात् सा सुतं प्रसूतवती। जातमात्राय एव तस्मै वरमदात् :--सम्यक् सरहस्याः वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कलाः मत्प्रसादात्स्वयमेवाविर्भविष्यन्तीति'। तदुपरि सा शापापगमे सावित्रीसहिता पितामहसकाशं ब्रह्मलोकमधिरुरोह।

गतायां तस्यां दधीचः वज्राहतः सन् भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालाभिधेयां--मुनिकन्यकां स्वतनयस्य संवर्धनाय नियुज्य स्वयं शोकाकुलो भूत्वा तपश्चरितुं वनं जगाम। यस्मिन्नवसरे सरस्वत्यास्तनयो जातः तस्मिन्नेव काले अक्षमालापि सुतं प्रसूतवती। सा तौ उभौ शिशू निर्विशेषं समानस्तन्यादिना समवर्धयत। तयोरेकः सारस्वतो नाम आसीत् अपरश्च वत्स-

नामा । तयोर्मध्ये सहोदरभ्रातृस्नेहः आसीत् ।

अथ यौवनारम्भे एव सारस्वतः मातुर्महिम्ना आविर्भूतसकलविद्याकलापोऽभवत् । अनन्तरं स प्रेयांसं प्राणसमं भ्रातरं वत्सं समस्तं वाङ्मयं शिक्षयामास । तस्य च विवाहं सम्पाद्य तस्य परिवारस्य वासार्थं प्रीतिकूटनामानं निवासं तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव च्यवनाश्रमसंनिधौ निर्मितवान् । आत्मना च जटावल्कलं धृत्वा तपस्यतः पितुरन्तिकमेव वनं जगाम ।

अथ तस्मात वत्सात् प्रावर्त्तत पावनः विमलो वंशः यः क्षितितले विस्तीर्णः सन् बहुभिर्नृपैः पूजितः महामुनीनामपि मान्यो बभूव । तस्मात् अजायन्त वात्स्यायना नाम गृहमुनयः । ये गृहेषु वसन्तोऽपि मुनिवत् वैदिकाचारान् अनुतिष्ठन्ति स्म । ते पङ्क्तिभोजनं न हि अकुर्वन् । स्वयमेव स्वभोजनमपाचयन् । ते एतावत् सन्तुष्टाः द्विजाः आसन् यत् कमपि किमपि न हि अयाचन्त । ते कवयः वाग्मिनः काव्यरसिकाः नृत्यगीतवादित्रादिषु कलासु च निपुणा आसन् । एतादृशः विद्वांस आसन् यत् ते सर्वेषां ग्रन्थानां ग्रन्थिगणमुद्घाटयामासुः । संक्षेपेण अमी वात्स्यायनब्राह्मणा असाधारणा आसन् ।

अथ गच्छति काले, आगते च कलियुगे, विकाशिनि च वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेरनामा द्विजो जज्ञे ।

बभूव वात्स्यायनवंशसंभवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम् ।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः ॥ कादम्बरी प्रस्ता—१०

पण्डितकुबेरः एतादृशः विद्वान धर्मात्मा चासीत् यत् अनेके गुप्तवंशीयाः नृपाः तं सम्पूजितवन्तः । तस्य चत्वारः पुत्राः-अच्युतः ईशान हरः पाशुपत-

श्चासन्। पाशुपतस्य केवलमेकः एव अर्थपतिनामकः पुत्रो बभूव। तस्य अर्थपतेस्तु एकादश पुत्रा जाताः। तेषु अष्टमः चित्रभानुः पण्डित आसीत्। चित्रभानोः केवलः पुत्रः बाणो राजदेवीगर्भात् उत्पन्नः। अलभत चित्रभानुः राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्'। बाल्ये एव तस्य माता मृता। अतः पितैव तस्य लालनं पोषणं च माता इवाकरोत्। पित्रा सदा चिन्त्यमानो बाणो स्वगृहे एव अवर्धत। यथा कालं तस्य सर्वे द्विजोचितोपनयनादयः संस्काराः कृताः। समावर्त्तनसंस्कारोऽपि तस्य विहितः। अनन्तरं यदासौ चतुर्दशवर्षदेशीय आसीत् तदा तस्य पितापि अकाले एव कालकवलितो बभूव। मृते च पितरि बाणः महता शोकेनाभिभूतः कथंकथमपि कतिपयान् दिवसान् स्वगृहे एवानैषीत्। शनैः शनैः तस्य शोकः क्षयति स्म। अधुनासौ पूर्णतया स्वतन्त्र आसीत्। न कोऽपि तस्य शासिता। न कोऽपि तस्य नियन्त्रकः। स्वतन्त्रता तु अविनयं जनयति एव। अतः बाणो महान् उज्जड उद्दण्डश्चाऽभवत्। स शैशवोचितानि अनेकानि चापलानि अकरोत्। कीदृशानि तानि चापलानि इति नावदत् बाणः कुत्रापि। अनन्तरं स बाल्यात् मित्राणामधीनतामुपगतः। तेषामेव वचनानि शुश्राव। अनन्तरं स देशाटनं कर्तुकामो बभूव। अभवन् चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहायाश्च चतुश्चत्वारिंशत्संख्यकाः। तेषां मध्ये तस्य पारशवौ भ्रातरौ भाषाकविः ईशानः अन्ये विद्वांसो बहवः कलाविदश्चासन्। एतां बृहतीं मण्डलीमादाय देशदर्शनलालसयैव गृहात् बहिर्गतः। तस्य गृहे पितृपितामहोपार्जितं पर्याप्तं धनमासीत्। विद्याप्रसंगोऽपि तत्र अविच्छिन्न एव। केवलं देशान्तरावलोकनकुतूहलेन आकृष्टः सन् बाणः चिरं देशाटनं कृतवान्। नवयौवनमदेन उन्मत्तो भूत्वा ग्रहगृहीत इव भूताविष्ट इव सोऽतीव

स्वेच्छाचारी सन् कस्यापि ज्यायसः सम्बधिनो वचनं नहि अश्रृणोत्। कस्यापि शासनं नहि अमंस्त। अतः सर्वे तस्य प्रवयसः ज्यायांसश्च तमुपहसन्ति स्म। सर्वत्र तस्य उपहासोऽभवत्।

परन्तु अनेन देशान्तरभ्रमणेन बाणस्य महान् लाभोऽभवत्। अस्मिन् देशाटनक्रमे स बृहन्ति राजकुलानि वीक्षते स्म। अनेकानि प्रसिद्धानि विद्या-केन्द्राणि गुरुकुलानि सेवते स्म। गुणवतां गोष्ठीषु उपतिष्ठते स्म, विदग्ध-जनमण्डलीषु अरमत। इत्थं संसारस्य कटुं मधुरमनुभवं च प्राप्य जीवनस्य नानाविधपीडाचपेटाघातेन बाणस्य बुद्धिः कालक्रमेण परिपक्वाऽभवत्। तस्य मस्तिष्कमधुना पूर्णविकसितं बभूव। वयसा सह ज्ञानमपि ववृधे तस्य। विगता तस्य तदानीं बाल्यकालीना चञ्चलता। स्थिराऽभवत् तस्य मतिः। गम्भीरा-सीत् अधुना तस्य प्रकृतिश्च। अनन्तरं बाणः पुनरपि स्वप्रख्यातवंशोचितां विद्वज्जनसदृशीं गभीरां परिष्कृतां च प्रकृतिमभजत्। बहुकालानन्तरं पुनरपि आत्मनो जन्मभूमिं वात्स्यायनवंशाश्रयं ब्राह्मणाधिवासं प्रीतिकूटमगाद् बाणः। तत्र आ-प्तजनैः अभिनन्दितागमः बाणः बालमित्रमण्डलीमध्यगतः। चिरदृष्टानां बान्ध-वानां प्रीयमाणः तेषां भवनानि भ्रमन् सुखमतिष्ठत्।

एकदा यदा बाणः भोजनोत्तरमपराह्णकाले विश्रामं करोति स्म, तदा तस्य पारशवः भ्राता चन्द्रसेनः प्रविश्याकथयत्—एष खलु महाराजहर्षदेवस्य भ्राता कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं विश्वासी दूतः प्रहितो द्वारि तिष्ठति' इति। श्रुत्वैव बाणेनादिष्टम्! अविलम्बं प्रवेशय एनम्' इति। अनन्तरं दूतः आगत्य प्रणम्य उपविश्य चोवाच :—'एष स्वामिना भवतां लेखः प्रेषितः' इति विमुच्य अर्पितवान्। बाणः पत्रं स्वयमेव अवाचयत्—

:—'मेखलात संदेशं श्रुत्वा शीघ्रमेव अत्र आगन्तव्यम् । एतावदेव अर्थजातम्" .इति पृष्टः सन् मेखलः संदेशमकथयत् :—'अदृष्टेऽपि त्वयि मम हृदयं विना कारणं स्निह्यति, । यतः भवतां शैशवचापलानि कथयन्तो दुर्जनाः महाराजहर्षस्य कर्णौ अभरन् । अतो देवस्त्वामधुनान्यथा मन्यते । परन्तु वयं तत्त्वान्वेषिणः न तत् तथा मन्यामहे । देवोऽपि किं करोतु बहुमुखेभ्यः तव अपवादं श्रुत्वा श्रुत्वा स तथा मन्यते ।

परन्तु वयं त्वदर्थं देवमित्थं विज्ञप्तवन्तः—'यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्व एव चापलं कुर्वन्ति । तत्तु शैशवस्य दोषः । स्वामिनापि तथैव स्वीकृतम् । हर्षदेवः दयालुः नृपेन्द्रः अस्ति । महता पुण्येन अस्य पादपल्लवस्य च्छाया-वाप्यते । अतो भवता शीघ्रमेवागत्य द्रष्टव्यो देवः । अवश्यं स त्वयि अनुग्रहं करिष्यति' इति । श्रुतसंदेशः बाणः तमेव भ्रातरं चन्द्रसेनमादिशत् । गच्छ एनं भोजय विश्रामय च इति ।

बाणः रात्रौ राजसंनिधिगमनार्थम् अत्यन्तसंकल्पविकल्पानन्तरं निश्चितवान् :— 'मया तत्रावश्यमेव गन्तव्यम् । देवदेवो महादेवः मम शरणम् । स एव मम भद्रं करिष्यति' इति । अथ अन्यस्मिन् दिने बाणः प्रातरुत्थाय स्नात्वा शिवस्य विधिवत् पूजां विधाय प्राङ्मुखीं धेनुं प्रदक्षिणीकृत्य, बन्धुबान्धवान् प्रणम्य आशिषश्च तेभ्यः प्राप्य, शुभे मुहूर्ते, अप्रतिरथं मन्त्रं जपद्भिः निजैः द्विजैः अनुगम्यमानः प्रीतिकूटात् निरगात् । प्रथमेऽह्नि स चण्डिकावनमतिक्रम्य रात्रौ मल्लकूटग्रामे निजसुहृदो जगत्पतेः गृहे आतिथ्यं स्वीकृत्य भ्रात्रा चन्द्रसेनेन सम्यक् कृतसपर्यः सुखं न्यवसत् । द्वितीये दिवसे गङ्गामुत्तीर्य यष्टिगृहकनाम्नि

वनग्रामे निशामगमयत्। तृतीये दिवसे अजिरावतीतटे उपमणितारं स्कन्धावारं समासाद। राजभवनस्य नातिदूरे अतिष्ठत।

अनन्तरं तस्मिन्नेव दिने अपराह्णे राजद्वारं गतः। दौवारिकेण देवदर्शनाय प्रवेशितः सन् आत्मानं कृतकृत्यं मन्यमानः चक्रवर्त्तिनं महाराजमद्राक्षीत्। तदनतरं प्रसन्नमनसा समुपसृत्य चोपवीती भूत्वा स्वस्तिशब्दमकरोत्। राजा तु तच्छ्रुत्वा अपृच्छत् :—एष स बाणः इति। 'यथाज्ञापयति देवः, सोऽयम्' इति विज्ञापितो द्वारपालेन। न तावदेनमकृतप्रसादः पश्यामि' इति वदन् चक्षुषी परिवृत्य स्वपृष्ठतः उपविष्टस्य मालवराजपुत्रस्याकथयत् :—महानयं भुजङ्गः' इति। देवस्य वचनस्य अभिप्रायम् अनवधार्य सकलराजलोकः मौन्यभवत्। मुहूर्तमिव बाणोऽपि तूर्ष्णीं स्थितः। अनन्तरं तस्य ब्रह्मतेजः प्रज्वलितम् अभवत्। अतः स एभिः तीक्ष्णैः शब्दैः व्यज्ञापयत्

:—देव। कस्मादेवम् आज्ञापयसि। मन्ये यत् त्वं तत्त्वं नहि जानासि। लोकवृत्तान्तं च न वेत्सि। कथम् अश्रद्दधान इव अन्यैः नेय इव आचरसि। लोकस्य स्वभावा विचित्रा विचित्रा भवन्ति। ते यदृच्छया यत्किञ्चित इच्छन्ति तत् प्रवदन्ति, प्रवादं प्रचारयन्ति। परन्तु महान्तः पुरुषास्तु यथार्थदर्शिनो भवेयुः। नार्हसि मामन्यथा संभावयितुम् प्राकृतजनमिव सामान्यलोकमिव। ब्राह्मणोऽस्मि, जातोऽहं सोमपायिनां वात्स्यायनानां कुले। यथाकालं मम उपनयनादिसंस्काराः कृताः, सम्यक् पठितो मया साङ्गो वेदः, श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि। विवाहसमयात् अहं पारिवारिको जनः अस्मि। अधुना सम्यग्वृत्या स्वपरिवारस्य भरणपोषणस्य भारं वहामि। वृत्तिर्मे

समीचीना। अतो मयि कां भुजगङ्गतां पश्यसि? का मे भुजङ्गता। कामया भुजाभ्याम् आलिङ्गिता यंत् अहं भुजङ्गः अस्मि। नाहम् इदम् अपलपामि यत् मम शैशवं चापल्येनाशून्यमासीत्। परन्तु न ईदृशं पापं येन लोकद्वयं विरुध्येत। अनेन अहं पश्चात्तापं करोमि। इदानीं देवस्य शासनकाले कः अविनयं कर्त्तुम् उत्सहते। कालेन स्वामी मां स्वयं ज्ञास्यति। यतः बुद्धिमान् निर्दोषाणां सरलस्वभावानां चित्तवृत्तिं काले आगते अवगच्छतीत्यभिधाय तूष्णीमभवत्। महाराजोऽपि 'एवमस्माभिः श्रुतम्' इत्युक्त्वा मौनमधारयत्। न तु तस्मै आसनं ददौ, न हि वा तं संबभाषे। अनन्तरं संध्यामुखे राजलोकं विसृज्य देवः अभ्यन्तरं प्राविशत्।

बाणोऽपि ततो निवृत्य निवासस्थानमगात्। रात्रौ शयानः एव मनसि अचिन्तयत :—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षः। यतो यद्यपि स मम शैशवकृतचापलानां कौलीनं श्रुत्वा मे क्रुद्धः प्रतीयते तथापि मयि मनसा स्निह्यति एव। यदि अहं तस्य अक्षिगतः स्याम् तर्हि स न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति असौ मां गुणवन्तं द्रष्टुम्। धिक् माम् अधन्यम्। अहं स्वदोषान् नहि पश्यामि। तान् प्रति अन्धः। अनादरं प्राप्य पीडितः अस्मि। दुःखितो भवामि गुणवन्तं नरेन्द्रं प्रति अन्यथा च चिन्तयामि। अधुनाहं सर्वथा तथा करोमि यथा स मां कालेन पूर्णरूपेण जानाति" इति। इत्थं विचार्य परेद्युः कटकात् निर्गत्य सुहृदां बान्धवानां च गृहेषु तावत् अतिष्ठत् यावत् अस्य स्वभावं सम्यक् ज्ञात्वा नरेन्द्रः अस्मै प्रसादं चकार। स राज्ञः प्रसादं प्राप्य पुनरपि नृपतिभवनं प्राविशत्। स्वल्पैरेव दिनैः सम्राट् अस्य गुणैर्मुग्धो बभूव।

अतिप्रसन्नो भूत्वा बाणं प्रति महान्तम् अनुग्रहं दर्शितवान्। अनन्तरं स कालक्रमेण 'प्रसादजन्मनः मानस्य, प्रेम्णो विस्रम्भस्य, द्रविणस्य, नर्मणः, प्रभावस्य, परां कोटिमनीयत' नृपेन्द्रेण। अथ गच्छत्सु दिवसेषु शरदारम्भे राज्ञः समीपात बाणो बन्धून् द्रष्टुं पुनरपि तं ब्राह्मणाधिवासं प्रीतिकूटमागतः। राजद्वारे बाणः अतिसम्मानं प्राप्तवान्' इति श्रुत्वा तस्य सर्वे ज्ञातयः अतीव प्रसन्नाः अभवन्। ते सर्वे तं श्लाघमानाः ग्रामात् निर्गम्य उपसृत्य तस्य स्वागतं चक्रुः। बाणः तान् सर्वमुखीनं कुशलक्षेमं पृष्टवान्। ते ऊचुः—सर्वथा सुखिनो वयम्। विशेषेण तु वयम् इदम् दृष्ट्वा सुखिनः स्मः यत् त्वम् अधुना आलस्यं विहाय उच्चपदं प्राप्य महाराजहर्षदेवस्य पार्श्वे वेत्रासने विराजसे' इति। ततश्च सर्वे स्वस्वगृहं गताः। अनन्तरं भोजनोत्तरं सर्वे ज्ञातयः बाणं परिवृत्य उपविष्टाः। तेषाम् अग्रे मधुकरपारावतौ वंशीं वादयतः स्म। तदा बाणस्य पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः तत्र आगत्य वायुपुराणमपठत्। पुराणपाठकाले बाणस्य चत्वारः पितृव्यपुत्राः भ्रातरः गणपतिः, अधिपतिः, तारापतिः, श्यामलः च तत्र उपस्थिताः आसन्। ते सर्वे महाविद्वांसो महाकवयश्च आसन्। तेषां कनीयान् श्यामलो नाम बाणस्य प्रेयान् भ्राता तं बभाषे :—'तात! अमुतः हर्षात् कृते न कोऽपि भूपतिः निष्कलङ्क अस्तिः। अस्य च बहूनि आश्चर्याणि श्रूयन्ते। अतो वयं पुराणराशेः अस्य चरितं वंशानुक्रमेण श्रोतुमिच्छामः। कस्य न भवेत् कौतूहलम् अस्य चरितं द्वितीयं महाभारतं श्रोतुम्। भवतु अयं शुचिः भार्गववंशः शुचितरः, अस्य चरितमाकर्णय। तत्कथय अस्य चरितम् इत्यभिधाय तूष्णीमभवत्।

बाणस्तु विहस्य उवाच :—'आर्य, न युक्तियुक्तमुक्तम्। भवतां कुतूहलं पूर्यमाणं नहि दृश्यते। क्व मे अल्पसंख्यकाः परिमिताः शब्दाः क्व च संख्यातीताः देवस्य गुणाः? कः खलु पुरुषायुषशतेनापि तस्य सम्पूर्णं चरितं वर्णयितुं शक्नुयात्। एकदेशे यदि वः कुतूहलं, सज्जा वयम्। इयं मे अधिगतकतिपयाक्षरलवलघीयसी जिह्वा क्व उपयोगं गमिष्यति। अद्य तु परिणतप्रायः दिवसः। सूर्यः अस्तं याति, श्वो निवेदयितास्मि' इति। सर्वे च ते तथेति अङ्गीकृतवन्तः। नातिचिरात् उत्थाय सन्ध्यावन्दनं कर्तुं बाणः शोणतटं ययौ।

अन्येद्युर्बाणः प्रातः काले संध्यामुपास्य ताम्बूलं मुखे निधाय तत्र स्वगृहे एवातिष्ठत्। अत्रान्तरे सर्वे तस्य ज्ञातयस्तत्राऽगत्य परिवृत्य तम् आसाञ्चक्रिरे। असावपि तदा हर्षचरितं वर्णयितुम् आरेभे।

एतावत् एव बाणस्य वृत्तम् लभ्यते। जनश्रुतिरस्ति—मरणासन्नो बाणः कादम्बरीम् अपूर्णां दृष्ट्वा अतीव चिन्ताकुलः आसीत्। तस्य नयनाभ्याम् अजस्रम् अश्रुधारा वहति स्म। पृष्टः सन् स्वचिन्तायाः कारणम् पुत्रान् अकथयत्। तान् शुष्कवृक्षस्य वर्णनं कर्तुमादिदेश। कनिष्ठः पुत्रः भूषणः अपरनाम्ना पुलिन्दः तस्य सरसं वर्णनं कृत्वा बाणं तुतोष। संतुष्टः पिता भूषणस्य हस्ते कादम्बरीसमाप्तेः भारं समर्प्य दिवङ्गतः।

बाणस्य कृतयः

कादम्बरी सहोदर्या सुधया वा बुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्।

सौढलस्य

१ हर्षचरितम् :—इदम् आख्यायिका अस्ति । यथाह बाणः हर्षचरिते:--

करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥

२ कादम्बरी कथास्ति । यथा 'धिया निबद्धा अतिद्वयी कथा' ।

इदं कृतिद्वयं तु महाकवेः जगत्प्रसिद्धमेवास्ति ।

३ चण्डीशतकम् अपि बाणस्यैव कृतिः । अत्र शार्दूलविक्रीडितच्छन्दोबद्धाः शतं श्लोकाः सन्ति । अस्य उद्धरणानि सरस्वतीकण्ठाभरणे (भोजदेवस्य) काव्यप्रकाशे (मम्मटस्य) अमरुशतकटीकायां च लभ्यन्ते । अमरुशतकटीकायाम् अर्जुनवर्मदेवः उद्धरणं (च० श० ३७ श्लो०) दत्त्वा लिखति 'उपनिबद्धं च भट्टबाणेन एवंविध एव संग्रामप्रस्तावे । अतः चण्डीशतकम् अर्जुनवर्मदेवेन बाणस्य कृतिः मन्यते । अर्जुनवर्मदेवः त्रयोदशे शतके अस्फुरत् ।

४ शिवशतकम् त्रिपुरविजयमधिकृत्य कृतम् । इदमपि बाणस्यैव कृतिः अस्ति ।

५ मुकुटताडितकनाटकमपि बाणस्य रचना मन्यते । परन्तु इदमधुना अलभ्यमस्ति । नलचम्पूटीकायाम् चण्डपालगुणविजयगणी मुकुटताडितकात् उद्धरणानि दत्तवन्तौ । लिखितञ्च ताभ्याम् 'यथाह मुटुकताडितकनाटके बाणः—आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गृहाः इत्यादि । भोजनृपेणापि शृङ्गारप्रकाशे बाणस्य मुकुटताडितकनाटकात् श्लोकः गृहीतः । अतः इदं नाटकमवश्यमेव बाणेन प्रणीतमधुना न लभ्यते क्वापि ।

६ सर्वचरितनाटकम् बाणस्य कृतिः कथ्यते । परन्तु न क्वापि उल्लेखः प्राप्यते, न च पुस्तकं स्वयं प्राप्यते । अतः न किमपि सबलं प्रमाणमस्ति येन 'इदमपि बाणस्यैव कृतिः' इतिः बुधैर्मन्तव्यम् ।

७ शारदचन्द्रिकानाटकम् :–शारदातनयः स्वप्रणीतभावप्रकाशे अस्य उल्लेखं करोति। तत् यथा—कल्पितं भट्टबाणेन यथा शारदचन्द्रिका। दशरूपकमपि अस्य उल्लेखं करोति। यथा–

चन्द्रापीडस्य मरणं यत्प्रत्युज्जीवनान्तिकम्।
कल्पितं भट्टबाणेन यथा शारदचन्द्रिका॥

८ पद्यकादम्बरी :–क्षेमेन्द्रः औचित्यविचारचर्चानामके स्वरचितपुस्तके बाणस्य एकं श्लोकम् उद्धृतवान्। यथा वा भट्टबाणस्य—हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि इत्यादि। विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथा-वर्णनम् इत्यादि।

पुनरपि क्षेमेन्द्रस्य कविकण्ठाभरणे बाणस्य सप्त श्लोकाः लभ्यन्ते। यत्र कादम्बर्याः विरहावस्था वर्णिता। स्पष्टतः तत्र लिखितञ्च क्षेमेन्द्रेण—"यथा वा भट्टबाणस्य"। एतानि उद्धरणानि दृष्ट्वा इदमनुमीयते यत् बाणेन सम्भवतः पद्यकादम्बरीनामकं पुस्तकमपि प्रणीतं यदधुना न प्राप्यते कुत्रापि।

९ एम्० कृष्णमाचारियमते तु बाणेन एकं दर्शनशास्त्रविषयकं पुस्तकमपि अलेखि। टीकाकारः आनन्दजीवी बाणस्य वेदान्तग्रन्थस्य चर्चां करोति न्यायरत्न-दीपावलीटीकायाम् तत्त्वविवेकाख्यायाम्।

१० पार्वतीपरिणयनाटकम् :—बहवो विद्वांसः विशेषतस्तु महाराष्ट्रियाः—मन्यन्ते यत् इदं नाटकं बाणस्यैव कृतिः अस्ति। परन्तु आर० मी० कृष्णमाचारियेण स्वसम्पादितपार्वतीपरिणयस्य भूमिकायां सुष्ठुरूपेण प्रतिपादितम् यत् इदं नाटकं वामनभट्टबाणेन (अभिनवबाणेन) ईशवीयपञ्च-

दशशतके कोण्डवीरुनरेश-वेमभूपस्य राजद्वारे लिखितम्। गणपति-शास्त्री अपि इत्थमेव मन्यते। कीथमहोदयेन युक्तिभिः प्रतिपादितम् यत् अस्य प्रणेता वामनभट्टबाणः एव आसीत् न तु कदापि प्रसिद्धः कादम्बरीकारः बाणः। वामनभट्टबाणः अतीव उत्सिक्तः दम्भी कविः, यथाः-

अस्ति कविसार्वभौमः वत्सान्वयजलधिसंभवो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलङ्घ लासिका वाणी।

यथात्र तथैव अन्यत्रापि अस्य आत्म-प्रशंसा दृश्यते। असौ वामनभट्टबाणोऽपि महाविद्वान् महाकविः च आसीत्। अस्य उपाधिरासीत् 'षड्भाषावल्लभः'। अपरश्च कविसार्वभौमः इत्यस्य श्रूयते। उपरिलिखितश्लोके कविसार्वभौमपद-दर्शनात् वत्सान्वयपदव्यवहारेण अवश्यमेव अस्य प्रणेता वामनभट्टः एव निर्णीयते न तु बाणः। यतः बाणः वात्स्यायनपदं व्यवहरति न तु वत्सान्वयपदम् वत्सकुलं वा। वीरनारायणचरिते वामनभट्टः भट्टबाणेन सह स्पर्धते। यथाः—

वाणकवीन्द्रादन्ये काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु।
इति जगति रूढयशसो वत्सकुले वामनोऽधुना मार्ष्टि॥

असौ अपि वत्सगोत्रीयः। अत एव अपकीर्त्तिं मार्ष्टि। भट्ट-वाणवामनभट्टवाणमध्ये महदन्तरमस्ति। भट्टबाणः विनम्रः अविकत्थनः अस्ति। वामनस्तु प्रतिग्रन्थम् आत्मश्लाघां दर्शयति। प्रकृतिः शीघ्रं न परिवर्त्तते। वामनभट्टः पञ्चदशशतके स्फुरितः। पार्वतीपरिणयस्य पञ्चदशशतकात् प्राक् कुत्रापि उल्लेखः नहि प्राप्यते। अतः प्रति-पद्यते यत् वामनभट्टस्यैव इदं नाटकं, न तु बाणभट्टस्य।

मैथिलबाणकविरचितपार्वतीपरिणयस्य चर्चा हिस्ट्री ऑफ तिरहूत-नामके ग्रन्थे प्राप्यते। अस्य कालः इशवीयपञ्चदशशतकम्। असौ

भण्डारीसममूलधारी वत्सगोत्रीयः ब्राह्मणः मनीगाछीसमीपे भण्डारीसमग्रामे खिष्टाब्दस्य पञ्चदशशतके न्यवसत्। बाणकविना स्थापिता वाणीश्वरीभगवत्याः प्रतिमा अद्यावधि तत्र तिष्ठति। वाचस्पतिझापण्डितः अस्य परम् मित्रमासीत्। बाणकविमृत्युमधिकृत्य वाचस्पतिना यत् कविरुदितकं रचितम् तत् अधुनापि तीरभुक्तिविभागस्य पुरातनपण्डित-मुखेभ्यः श्रूयते।

ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणिमहारत्नराशिः विशीर्णः,
शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमाणिक्यकोषः।
दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा हता दिव्यवाणी,
बाणे दूरप्रयाणे प्रतिहतविधिना प्रापिते दीर्घनिद्राम्॥

श्रूयते यत् अस्मिन् पार्वतीपरिणये मिथिलादेशीयाः विवाह-कालीनाः लोकाचाराः विधिव्यवहाराः सुष्ठुरूपेण वर्णिताः। आश्चर्यं महदाश्चर्यम् यत् त्रयः एव समगोत्रीयाः समाननामानः समाननामक-नाटकस्य प्रणेतारः मन्यन्ते। नूनमत्र भ्रमेण भाव्यम्।

प्रीतिकूटस्य परिज्ञानम्

प्रीतिकूटग्रामः सरस्वतीपुत्रेण स्वयं सारस्वतेन निर्मितः इति बाणस्य मतम्। तत्र वात्स्यायना ब्राह्मणा अनादिकालात प्रतिवसन्ति स्म। बाणस्य पूर्वजाः कुबेरपाशुपतार्थपतिचन्द्रभानुभट्टाः अपि तत्रैव न्यवसन्। बाणस्यापि जन्म तत्रैव चन्द्रभानोर्धर्मपत्न्या राजदेव्या गर्भादभवत्। स तत्रैव समवर्धत। देशाटनं कृत्वा बाणः आत्मनः आत्मभुवम् वात्स्यायनाश्रयं ब्राह्मणाधिवासम् अगमत्। हर्षदेवस्य दर्शनार्थं गन्तुकामः बाणः प्रीतिकूटात् निरगात्। राज्ञः समीपात् बाणो बन्धून् द्रष्टुं तत्रैव ब्राह्मणाधिवासमगात्। असौ ग्रामः शोणस्य पूर्वतटेऽव-स्थित आसीत्। अस्ति च अधुनापि शोणस्य पुरातनत्यक्तधारातटे। सर-

स्वत्याः ब्राह्मलोकारोहणे सति दधीचः भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुः ब्राह्मणस्य जायाम् अक्षमालाभिधेयाम् स्वसूनोः संवर्धनार्थं नियुज्य वनं गतः। अक्षमालापि पुत्रमजनयत् तस्मिन्नेव काले यस्मिन् सरस्वती तनयमसूत। प्रसवकाले अक्षमाला अवश्यमेव स्वपतेः समीपे श्वशुरालये च्यवनाश्रमे एव आसीत्। सा तत्रैव उभौ शिशू अपोषयत्। नास्ति किंचित् कारणं येन सा स्वपतिगृहं त्यक्त्वा अन्यत्र गमिष्यति। सरस्वत्याः लतामण्डपे कोऽपि नास्ति। सरस्वती सावित्रीसहिता ब्रह्मलोकं गता। दधीचः तपसे वनं जगाम। तत् स्थानं तु तदा नितरां निर्जनं भयावहम् आसीत्। तादृशि निर्जने वने अबलाया अक्षमालायाः अवस्थानं कथं सम्भवति। कल्पनातीतोऽयं विचारः। अतः अक्षमाला च्यवनाश्रमे वत्सं सारस्वतं च समवर्धयत्। तत्रैव सारस्वतो वत्सं सकलंवाङ्मयं शिक्षयामास। तत्रैव वत्सस्य विवाहोऽपि कृतः। अनन्तरं सारस्वतः चकार चास्य कृतदारपरिग्रहस्य तस्मिन् एव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम् तस्मिन् एव प्रदेशे यत्र च्यवनाश्रमः आसीत्। च्यवनाश्रमः गयामण्डलान्तर्गतः गोहथानाप्रखंडे विद्यमानोऽस्ति।

गणितगणनया अपि प्रीतिकूटः अधुना गयाजिलावर्त्ती एव। यतः शोणस्य पश्चिमतटात् च्यवनाश्रमः केवलं गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणम् (शोणस्य पूर्वतटे) आसीत्। उभयोः स्थानयोः अन्तरम् अत्यल्पमेव तदासीत्। यथा सावित्री अन्यत्र कथयति विकुक्षिम् :—'अल्पीयांश्चायमध्वा'। अस्मिन् दीर्घकाले शोणः पश्चिमायां दिशि अपसृतः। अधुना शोणस्य पश्चिमतटात च्यवनाश्रमस्य दूरता तु महती अस्ति पञ्चक्रोशमात्रमिव षट्क्रोशमात्रमिव वा। यत्र पुरा सरस्वत्याः लतामण्डपस्थानमासीत् तत् स्थानमधुना गयाजिलामण्डलान्तर्गतमेव वर्त्तते। यतोऽधुना गयासाहाबादमण्डलयोः सीमा शोणस्य मध्यधारास्ति।

याऽधुना च्यवनाश्रमात् प्रायः पञ्चक्रोशदूरीभूता पश्चिमायां दिशि वर्त्तते ।

पुनश्च हस्ते कङ्कणः चेत, आदर्शेन किम् ? संस्कृतमतिभिः विद्वद्भिः तत्र गत्वा स्वयं चक्षुर्भ्यां द्रष्टव्यः प्रीतिकूटग्रामः, श्रोतव्या च तत्र ग्रामवृद्धानां पुरातनी कथा ।

अधुना प्रीतिकूटः च्यवनाश्रमस्य संनिधौ एव पीरूनाम्ना विद्यते । असौ अतिपुरातनो ग्रामो मन्यते । शोणनदस्य मृतधारायाः पूर्वतटे च्यवनाश्रमात् पश्चिमायां दिशि सार्द्धक्रोशाभ्यन्तरे वर्त्तमानोऽस्ति । परन्तु तत्र अधुना वात्स्यायनाः ब्राह्मणाः नहि वसन्ति । निवसन्ति च तत्राधुना वत्सवंशीयाः पैठानाः । परन्तु ते सर्वे स्मरन्ति स्ववंशम् । यदा अन्वेषकमण्डली १९६० ई० दिसम्बर मासे तत्र गता, तदा ग्रामवृद्धाः यवना सर्वे अवोचन् :—अस्माकं ग्रामोऽतिप्राचीनोऽस्ति । प्राक्काले अस्य नाम अतिसुन्दरमासीत् प्रीतिपुरमिति । अस्माकं पूर्वजाः अस्मात् स्थानात् निष्क्रम्य अन्यत्र कियालगढादिस्थानेषु निवासं चक्रुः । अनन्तरं अकबरदूतसुलतानस्य राज्यकाले यदा ते महम्मदीयाः कृताः तदा ते यशवन्तसिंहब्राह्मणेन बेलहारानिवासिना उद्वेजिताः उपद्रुताः सन्तः अस्मिन्नेव पुरातने स्वकीये उत्सृष्टे निर्जने ग्रामे आगत्य निवासं चक्रुः । अत्र दीपः सदा दीप्यते स्म । नासौ कदापि दीपविहीनो ग्रामोऽभवत् । अधुनापि डीहाब्राह्मणस्य एकः परिवारः अत्रास्ति यस्य पूर्वजाः अत्र रात्रौ दीपज्वलनार्थम् अस्माकं पूर्वजैः नियुक्ताः । अस्य परिवारस्य भरणपोषणम् अस्माभिः क्रियते अद्यावधि । अस्माकं पुरोहिता अपि शाकद्वीपीयब्राह्मणाः सन्ति । असौ शशिभूषणमिश्रः अस्माकं कुलक्रमागतः पुरोहितोऽस्ति । सोऽपि सर्वं मन्यते । अधुनापि असौ अस्माकं कन्यकानां विवाहे तिलकधनस्य पञ्चकं [प्रति] शतं वृत्तिं प्राप्नोति । शाकद्वीपीयाः एव अस्माकं तिलकधनं वरगृहे हरन्ति । अद्यावधि वयं बहून् ब्राह्मणाचारान् अनुतिष्ठामः । पम्मेहेनिवासिभातृणाम् मरणविवाह-

कर्मसु अपि वयं संमिलिताः भवामः। आराधार्मिककलहात्प्राक् अस्माकं स्त्रियः अपि निमंत्रिताः सत्यः पम्मेहेग्रामं गच्छन्तिस्म गीतं गातुं विधिव्यवहारान् कर्तुं च इति।

अनन्तरं ते अस्मान् कूपखननात् बहिरागतं मूर्त्तित्रयं दर्शितवन्तः, प्राचीनम् उत्खातं कूपमपि च। ग्रामस्य चतुर्दिक्षु परिखाः सन्ति, या अधुना यत्र तत्र मृद्भिः पूर्णाः क्षेत्ररूपेण अवस्थिताः। यत्र तत्र पुरुषदघ्नं जलमपि वर्षपर्यन्तं तिष्ठति। नहि ग्रीष्मेऽपि शुष्यति। पैठानानां निवासः उच्चस्थले अस्ति यं ते गढ' इति वदन्ति। तस्य च चतुर्दिक्षु परिखाचिह्नं सूचयति यत् अत्र अत्युच्चगढ इत्यासीत् प्राचीनकाले।

पीरूनिवासी शशिभूषणमिश्रः एव प्रथमं च्यवनाश्रमे अकथयत्—अस्माकं ग्रामस्य नाम प्राचीनकाले प्रीतिपुरम् आसीत्। वृद्धेभ्यः वयं श्रृणुमः एतत्। परन्तु रुपाइचग्रामवासिना राघवमिश्रेण प्रीतकूटमिति कीर्त्तितम्। आसन्नग्राम-निवासिनः पुरोहितब्राह्मणाः कथयन्ति यत् ते स्वपितृपितामहेभ्यः अश्रृण्वन् यत् अस्य ग्रामस्य प्राचीननाम प्रीतिकूटेति आसीत्। एतेषां पैठानानां पूर्वजाः ब्राह्मणाः आसन्। यदा ते मोहम्मदीया अभवन् तदा ग्रामस्य नाम पीरू इति अभवत् पीरपूजनात्। परन्तु मया अनुमीयते यत् प्रीतिकूटशब्दात् एव प्रथमंपीऊरशब्दः, पुनश्च पीरूशब्दः प्राकृतभाषायां व्युत्पन्नः।

पम्मेहैवासिनः वात्स्यायनाः अपि कथयन्ति :—पीरू-वनतारा-निवासिनो यवना अस्माकं सगोत्राः दायादा एव सन्ति। अस्माकं पूर्वजः कमलनयन-सिंहः सभ्रातृकः बहादुरसाहसुरत्राणेन महम्मदीयः कारितः। तस्य पुत्राः अन्यैः ब्राह्मणैः उपद्रुताः निर्जनग्रामे प्राचीनस्थाने पुनर्वासिताः। पीरूग्रामे वनताराग्रामे च गत्वा ते न्यवसन्। कमलनयनसिंहः अत्रैव अवसत, अत्रैव

पम्महैग्रामे अम्रियत। अत्रैव अस्माकं मध्ये एव शवगर्त्ते निहितः शेते। अस्माकं स्त्रियः तस्य कब्रस्थानस्य पूजां कुर्वन्ति विवाहादिषु। पीरूवासिभिः पैठानैः सह अस्माकं सगोत्रवत् संबन्धः अस्ति।

हैमिल्टनमहोदयस्य विहारजिलासर्वेरिपोर्टनामकेषु राजकीयपत्रेषु लिखितमस्ति :--महम्मदकादरीनामकः यवनः अरबदेशात् आगत्य अत्र (देवकुण्डसमीपे) हिन्दून् (infidels व्यापादितवान्। तस्य शवः अमझरग्रामे कब्रस्थाने निखातः अस्ति। तस्य वंशधराः यवना धर्मगुरवः (पीरजादा) सन्ति' इति। अमझरग्रामं गत्वा तस्य साधोः शिष्यपरम्परया आगता वंशावली लब्धा। तत्र लिखितमस्ति :—महम्मदकादरी सूफीफकीरः १४०७ ईशवीयवर्षे अरबदेशे जातः। मक्कातीर्थयात्रिणा नरहनाग्रामनिवासिना निमंत्रितः सन् स अत्र मगधेषु धर्मप्रचारार्थम् चत्वारिंशदनुचरान् आदाय आगतः। नरहनाटालस्य राजानं हत्वात्र धर्मप्रचारं कृतवान्। स प्रथमम् देवकुण्डेन्यवसत्। तत्रत्यबालापुरीमठाधीशेन सह तस्य मैत्री आसीत्' इति।

असौ एव सूफीसाधुः च्यवनाश्रमशिवमन्दिरस्य, प्रीतिकूटस्य, अन्येषाम् प्रसिद्धस्थानानां च विनाशस्य मूलकारणम्। तस्यैव प्रयत्नेन जौनपुरस्य सुरत्राणः इब्राहिमः, दिल्लीश्वरः सिकन्दरलोदी च मगधदेशस्य मन्दिराणि मठान् प्रसिद्धस्थानानि च अभञ्जयताम्। सूफीमीआँफकीरः च्यवनाश्रमस्य मन्दिरस्य वहिर्भागे सर्वैः अधुनापि पूज्यते। देवलेन शशिभूषणमिश्रेण कथितम् :—सूफीमीआँकः अत्र शिवस्य पूजां करोतिस्म। अतः हिन्दवः तान् पूजयन्ति। परन्तु मठाधीमहाशयेन उक्तम्, असौ फकीरः अत्र न्यवसत्, अस्मांकम् आदिगुरुं बालापुरी महाठाधीशं योगचमत्कारप्रदर्शनार्थम् आह्वयतेस्म। मठाधीशमहोदयेन असंख्यकाः शूकराः योगबलेन उत्पादिताः। तेषाम् उपद्रवेण उद्वेजितः सूफीयवन इदं स्थानं त्यक्त्वा असमझरग्रामं गतः' इति।

अत्रास्ति किञ्चित् ऐतिहासिकतथ्यम् किञ्चित् कपोलकल्पितञ्च मिश्रितम। पुनरपि तेन भणितम् :— 'एकदा अहं ध्वंसावशेषस्य पूर्वतटे भूमिं खनन् कतिपयान् विशालान् अस्थिपञ्जरान् प्राप्तवान्। तेषां मुण्डानि अपि दीर्घाणि आसन्। तेषां पादाः च पूर्वस्यां दिशि आसन्, शिरांसि च पश्चिमायां दिशि। मन्दिरस्य निकटस्थेषु आम्रवणेषु मृतकस्थानानि (कब्रगढ): दृश्यन्ते यद्यपि क्रोश. द्विक्रोशाभ्यन्तरे एकमपि यवनगृहं नास्ति।

सर्वेभ्यः प्रमाणेभ्यः एतदेव अवगम्यते यत् अत्र भयंकरं धर्मयुद्धमभूत् पुरा। स्वपावनच्यवनतीर्थरक्षार्थं वात्स्यायनाः, नहि, सर्वे हिन्दवः, सूफीमीआँफकीरस्य वा जौनपुरस्य इब्राहिमसुरत्राणस्य वा, दिल्लीपतिबादशाहदिल्लीपति सिकन्दरसम्राजो वा सैनिकैः सह महत् युद्धम् कृतवन्तः। परन्तु पराजिताः ते। शिवमन्दिरं भग्नं स्यात्, शिवलिङ्गम् भग्नं स्यात्। अधुना भूतनाथस्य मस्तकोपरि महम्मदीयाः शवाः शेरते। श्मशानवासिनः महादेवस्य शिरसि प्रेताः नृत्यन्ति।

च्यवनाश्रमस्य शिवमन्दिरे लिंगस्थाने सूफीसाधुना मृतका निखाताः। मन्दिरस्थानम् अपवित्रम् दृष्ट्वा बालापुरिणा तस्य अधस्तात् गुहां निर्माय शिवलिंगं स्थापितम्। अद्भुतमेतन्मन्दिरम्। पराजिताः वात्स्यायनाः यत्र तत्र पलायिताः। तेषां प्रीतिकूटादीनि (दुर्गाणि) भस्यासात्कृतानि मुषितानि प्रज्वलितानि च। ये केचित् यवनदलपतयः तस्मिन् युद्धे हताः तेषां शवाः मन्दिरस्थले प्रतिमास्थाने (शिवलिङ्गस्थाने) निखाताः। इयमेव तेषां परिपाटी। सामान्यसैनिकानां शवाः तु अन्यत्र निखन्यन्तेस्म। अतः ध्वंसावशेषस्य पूर्वतटे कब्रगढस्थाः अस्थिपंजराः, आम्रवणेषु च अनेकमृतकस्थानानि। वात्स्यायनाः योद्धारः तु पराजिताः सन्तः पलायिताः। परन्तु तेषां शूकरसेना, गोरायतरक्षके हते, न अन्यत्र गता। तत्रैव वने स्वच्छन्दीभूता विचरतिस्म। अतः कथ्यते मठाधीशबालापुरिणा शूकराः सृष्टाः। यैः उपद्रुतः सूफीमीआँकः पलायितः

इति । दुस्साधगोरायतस्य पूजा अद्यावधि वात्स्यायनानां गृहे गृहे भवति । अहो आश्चर्यम् ब्राह्मणानां गृहे दुस्साधस्य पूजा । परन्तु इयम् पूजा कृतज्ञतां वात्स्यायनानां दर्शयति । गोरायतस्य महान्तम् उपकारम् च प्रकटयति ।

पुनरपि काले गते अकबर-शेरशाहादिशासनसमये कतिपये वात्स्यायनाः परावृत्य आश्रमसंनिधौ उषित्वा उन्नतिं कृतवन्तः । अतः आयर्नीअकबरीपुस्तके लिखितमस्ति 'कियालगढमहालभूमिः ब्राह्मणाधीना' इति ।

बाणमयूर-सम्बन्धः

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥

—राजशेखरस्य

वात्स्यायनब्राह्मणमण्डलीषु इयम् जनश्रुतिः प्रचलति यत् मयूरः बाणस्य शिष्यः आसीत् । सोऽपि वत्सगोत्रीयो गुरुशापात् कुष्ठी बभूव । पश्चात् देवनामकग्रामे सूर्यशतकस्य पाठं कृत्वा सूर्यमुपास्य कुष्ठरोगात् मुक्तोऽभवत् । अतः अद्यावधि सहस्रशः कुष्ठरोगिणः प्रतिवत्सरं षष्ठीपूजावसरे कार्त्तिकमासे सूर्योपासनां कर्त्तुं देवग्रामस्थसूर्यमन्दिरं गच्छन्ति । परन्तु पण्डितमण्डलीषु इदम् पुनःश्रूयते यत् बाणः मयूरस्य भगिनीपतिरासीत् । एकदा मयूरस्य श्लोकपाठं श्रुत्वा भगिनी क्रुद्धा सती तं शशाप । यस्मात् स सूर्यशतकस्य पाठेन देवग्रामे सूर्योपासनया मुक्तिं प्राप ।

जैनकविः मानतुङ्गाचार्यः त्रयोदशशतके भक्तामरस्तोत्रटीकायां अलिखत् यत् मयूरः बाणस्य श्वशुरः आसीत् । मधुसूदनोऽपि सूर्यशतकटीकायां मयूरं बाणस्य श्वशुरमेव मन्यते । परन्तु मेरुतुंगाचार्यः १३६२ विक्रमाब्दे प्रबन्ध-

चिन्तामणिग्रन्थे लिलेख— बाणः मयूरस्य भगिनीपतिरासीत्' इति । यज्ञेश्वर-भट्टोऽपि सूर्यशतकस्य टीकायां प्रबन्धचिन्तामणिम् उद्धृत्य इत्थम् एव मन्यते । अयमेव स श्लोकः यं श्रुत्वा मयूरस्य भगिनी चुकोप ।

गतप्राया रात्रिः कृशतनु ! शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव ।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो
मयूरस्य पूर्त्तिः—कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डिकठिनम् ॥

इयं कथा जैनपण्डितैः कल्पिता सर्वथा अश्रद्धेया विश्वासातीता । प्रथमतः मानतुंगाचार्यात् प्राक् न केनापि कुत्रापि अस्य उल्लेखः कृतः । अथ बाणमयूरौ उभौ वत्सगोत्रीयौ सगोत्रौ । सगोत्रविवाहस्तु धर्मशास्त्रनिषिद्धः । 'न सा स्वकीया भगिनी, सम्बन्धेन भगिनी,' मातुलस्य दुहिता वा, पितुः स्वसुः दुहिता वा स्यात् इति चेत्' ! तथापि नेयम् कथा विश्वासमर्हति । यतः तादृशो विदुषः स्वसम्बन्धिन्याः समक्षे ईदृशः श्लोकस्य गानं न कदापि श्रद्धेयम् । जडोऽपि शिष्टाचारम् अनुवर्त्तते । किं तर्हि मयूरसदृशस्य विदुषः कथनम् । अतः इदमेव फलितम् यत् केनापि कारणेन कुपितः गुरुः एव मयूरम् शशाप । स्थानीय-वंशपरम्परया आगच्छन्ती जनश्रुतिरपि ईदृशी एव । गुरुशिष्ययोः संघट्टं श्रीहर्षः चक्रे इति नव-साहसाङ्कचरिते—२०१८ तमश्लोके वर्णितमस्ति । मयूरस्य पुत्रः श्रीशंकुकोऽपि काव्यरसिकः आसीत् । तेन नाट्यशास्त्रस्य नैयायिक दृष्टिकोणेन टीका लिखिता । काव्यप्रकाशे मम्मटेन श्रीशंकुकस्य नैयायिक मतम् उद्धृतम् । दुर्वाराः स्मरमार्गणाः प्रियतमो दूरे मनोऽत्युत्सुकम्' इत्यादि-श्लोकस्य व्याख्यां कुर्वन् वामनाचार्यः काव्यप्रकाशटीकायाम् लिखति :—'मयूरसूनोः शंकुकस्य पद्यमिदमिति शार्ङ्गधरपद्धतौ स्पष्टम्' ।

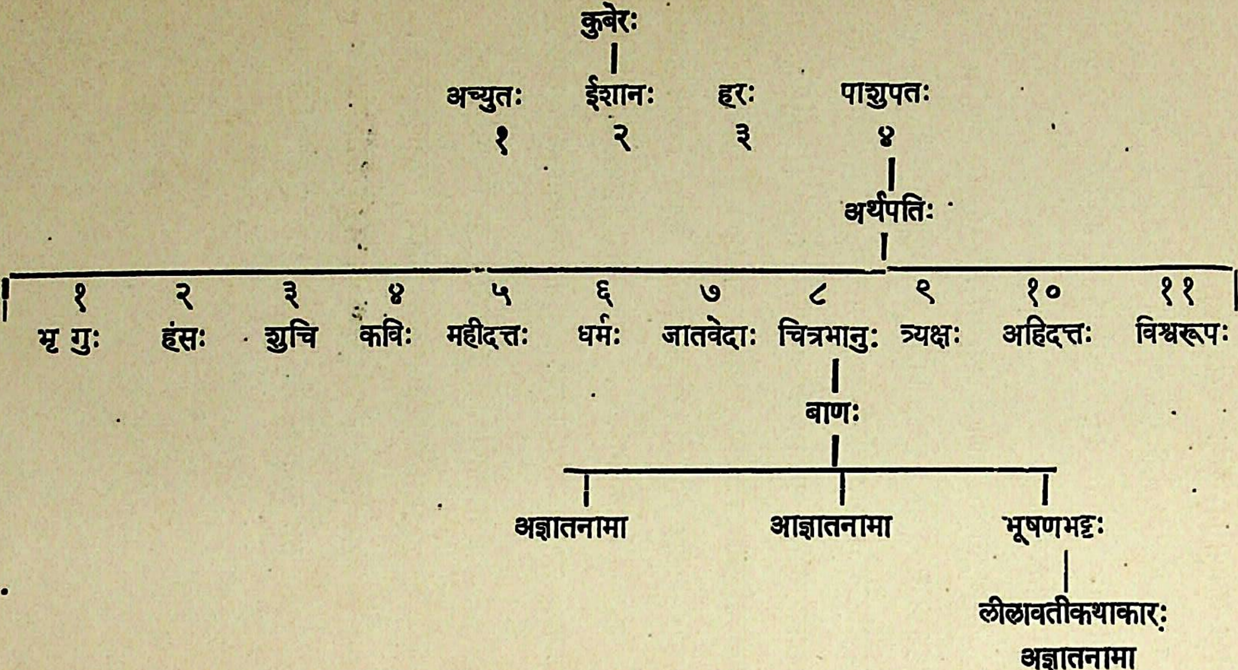
मयूरः अद्यापि स्ववंशधरैः अन्यैश्च पूर्णतया स्मर्यते। यतः देवनामक ग्रामस्य सूर्योपासना लोकान् सदा मयूरविषये स्मारयति। वात्स्यायनानां शाखाद्वयम्। एका नोनारगढीयशाखा, अपरा कियालगढीया। नोनारगढीया वात्स्यायनाः आत्मनः मयूरस्य वंशधरान् मन्यन्ते। कियालगढीयांश्च बाणस्य वंशधरान् कथयन्ति।

अनुश्रूयते यत् बाणस्य त्रयः पुत्राः आसन्। तेषां मध्ये कनिष्ठः भूषणभट्टः मृतवृक्षस्य सरसं वर्णनं कृत्वा पित्रे संतोषमदात्। सन्तुष्टः पिता अस्य हस्ते कादम्बरीसमाप्तेः भारं समर्प्य सुखेन प्राणान् जहौ। अनन्तरम् भूषणः कादम्बरीं समाप्तमकरोत्। भूषणभट्टस्य पुत्रोऽपि विद्वान् कविः आसीत्। तेनापि शालिवाहनस्य चरितमादाय लीलावतीकथा प्राकृतभाषायां रचिता। परन्तु तस्य नाम न ज्ञायते। 'लीलावती' अपि न लभ्यते। केवलम् अस्याः उल्लेखः एव प्राप्तः।

अहो विधेर्विधानाम्। एतादृशो विद्वांसोऽपि विस्मृतप्राया अधुना। अस्माकम् उपेक्षैवात्र कारणम्। गुणाः नैवगताः, मृता गुणग्राहिणः।

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्त्तयः
ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम्॥

वैश्यवाणीककविचक्रवर्त्ती वाणः



बाणस्य वंशः निवासस्थानञ्च

प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहन-विहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः ।

वश्यवाणीकस्य कविचक्रवर्तिनो बाणस्य कवित्व-निरूपणं नात्रास्माकं प्रधान विषयः । तत्तु प्रासङ्गिकरूपेण भविष्यति । अस्य निबन्धस्य मुख्यविषयः कविवंशपरिचयस्तज्जन्मस्थानपरिचयश्च । अस्य गद्य—सार्वभौमस्य प्रादुर्भावो वात्स्यायनवंशे निवासस्थानञ्च ब्राह्मणाधिवासे प्रीतिकूटे आस्ताम् ।

अत्र वत्सस्य प्रादुर्भावो वर्णनीयस्तद्वंशजाश्च निरूपणीयाः । प्रीतिकूटस्य च सीमाङ्कनं सीमानिरूपणं वा कर्तव्यमस्ति । मिथिलामाहिष्मती-(महिषी) कल्पस्य प्रीतिकूटस्य विद्या-वैभवमपि वर्णनीयमस्ति ।

वात्स्यायनवंशादिपुरुषस्य वत्सस्य कृते दाधीचिः सारस्वतः प्रीतिकूटं नाम ब्राह्मणाधिवास कुत्र स्थापितवान् ? हिरण्यवाहस्य शोणस्य पूर्व-तटे पश्चिम तटे वा ?

तत्रैको वादः समुपस्थाप्यते तत्त्वबोधार्थम्, यत्र प्रमाणैः स्वपक्षस्य साधनं भविष्यति । तर्कैश्च परमतोपालम्भ इति गौतमन्यायप्रतिपादितवादपद्धत्या वक्ष्यामि ।

प्रथमं तावत् पात्र-परिचयः आवश्यकः । सरस्वत्याः ब्रह्मदुहितुर्मर्त्यलोक-पदार्पण-प्रसङ्गः समुपस्थाप्यः । सरस्वत्या निवासः कुत्र अभूत् ? भगवतश्च्यवनस्य चाश्रमः शोणस्य पूर्वतटे पश्चिमतटे वाऽसीत् । इमां भूमिकां विना ग्रन्थ-ज्ञानं नैव सम्भाव्यते ।

निम्नलिखितोद्धरणेन ज्ञायते यत् सरस्वत्याश्रमः शोणस्य पश्चिम-तटे आसीत् । च्यवनाश्रमश्च शोणस्य पूर्व-तटे इति । ब्रह्मसभायामुपमन्युना समुपस्थापिते वादे क्रुद्धः दुर्वासाः साम-गानमशुद्धं चकार ।

तत्रोपस्थितया ब्रह्म-दुहित्रा सरस्वत्या उपहास्यतां गतो महर्षिर्युताग्रभुक् तां शशाप ।

"मर्त्यलोकवासिनी भव पुत्रजन्म यावत् ।" ततश्चावातरत् मर्त्यलोकमालिन्यं प्रक्षालयितुं सरस्वती मगधे हिरण्यवाहस्य शोणस्य पश्चिमे तटे सख्या सावित्र्या सह । तत्रत्यां सुवर्णमयीं भूमिं हिरण्यवाहजलक्षालितां शोणजलशोणायिताञ्च विलोक्य तत्र निवसितुमाश्रमितुं विश्रमितुं वा मनो दधे । तथा च—

"अभिनन्दितवचना च सरस्वती तथेति तया सावित्र्या पश्चिमे तीरे समवातरत्" । (हर्ष-चरितम्) पृ० ३०)

अथैकदा च्यवनसम्पर्कात् सुकन्यायां प्रादुर्भूतो दधीचो मातामहस्य शर्यातस्य गृहे पालितः सम्वर्धितः प्राप्तयौवनः पितरं च्यवनं द्रष्टुं शोणपूर्वतटस्थे च्यवनाश्रमे गन्तुं प्रवृत्तो मध्येमार्गं शोण-पश्चिमतटस्थे सरस्वत्याश्रमे भृत्यविकुक्षि द्वितीयः सख्या सावित्र्या सह सरस्वतीं दृष्ट्वा प्रहृष्टमनाः संजातः, सीतां दृष्ट्वा राम इव शकुन्तलां दृष्ट्वा दुःष्यन्त इव वा ।

"असंशयं ब्रह्मपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि तन्मनः ।"

तत्र परिचय-प्रदान-प्रसंगे विकुक्षिः सरस्वतीं कथयति—

"इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मित व्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः ।"

(ह० च० १ पृ० २७)

पश्चिमतटस्थां सरस्वतीं प्रति एतत् कथनं सूचयति 'यत् पारेशोणम्' इत्यस्य शोणस्य पूर्वतटे इत्यर्थः संभवति ।

तत्र सरस्वत्याश्रमे किञ्चित् विश्रामानन्तरम्—

"उत्तीर्य च शोणमचिरेण कालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम" इत्येतद् वर्णनं सूचयति यत् शोणस्य पारे सरस्वत्याश्च्यवनस्य चाश्रम आसीत्। यतः "अचिरेण जगाम" इत्युक्तम्।

यथा हंसो नलदमयन्त्योर्विवाह-सम्बन्धं प्रेम-सम्बन्धं वा स्थापितवान् तथैव कालक्रमेण दधीचदूती मालती दधीचसरस्वत्योः परिणयसम्बन्धं स्थापितवती ततश्च—

"आजगाम मालती-द्वितीयो दधीचः।"

(ह० च० १ पृ० ३७)

अनेन एतत् सूचितं यत् शोण-पश्चिम-तटस्थे सरस्वत्याश्रमे दधीचविवाह प्रसंगे द्वावेव जनौ च्यवनाश्रमादागतौ। दधीचः मालती दूती च।

च्यवनभार्यया सुकन्यया सह शोणपूर्वतटस्थे च्यवनाश्रमे निवसन्ती भार्गव वंशीयस्य दधीचभ्रातुर्जायाक्षमाला नैव जगाम। युक्तञ्चैतत् देवरविवाहे भ्रातृजाया कथं गच्छेत्? नायं शिष्टाचारः।

जाते परिणये "तेन तु सार्धमेकदिवसमिवानयत् संवत्सरमधिकम्।"

[ह० च० १ पृ० ३८

अनेनारास्थभोजपुरीकार्यालयसदस्यस्य श्रीरघुवंशनारायणसिंहस्य एतत् स्थापनं परास्तं यत् "दधीचः सपरिवार एव तत्र सरस्वत्याश्रमे न्यवसत्।"

जायाद्वितीयो दधीचो वर्षादधिकं भार्याश्रमे न्यवसदथवा पितुराश्रमे (च्यवना-श्रमे) सरस्वतीमानीय न्यवसदिति तु न महत्त्वपूर्णम्।

महत्त्वपूर्णन्तु एतद् यत् जाते पुत्रे दुर्वाससः शाप-मुक्ता सरस्वती ब्रह्मलोकं गता। दधीचः स्वपुत्रं सारस्वतमक्षमालायै समर्प्य वनं जगाम।

"ब्रह्मलोके गतायां च तस्यां सरस्वत्यां दधीचोऽपि भार्गववंशसमुद्भूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालाभिधानां मुनि-कन्यकामात्मसूनोः सम्वर्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात् ।" [ह० च० १पृ० ३८]

अत्र प्रश्नः समुदेति यदक्षमाला कुत्रासीत् ? सरस्वत्याश्रमे च्यवनाश्रमे वा ? नाद्यः, "आजगाम मालतीद्वितीयो दधीचः" इति वर्णनेन तृतीयजनस्य तत्रा गमनात् । द्वितीयश्चेत्, सिद्धं नः समीहितम् ।

"यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सूतं प्रसूतवती । एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत् । अपरोऽपि वत्सनामासीत ।"

[हि० ह० च० पृ.६२]

अनेनैतदवगतं यन्मातृ-पितृभ्यां त्यक्तस्य सारस्वतस्य पालनमक्षमालया वत्समात्रा एव च्यवनाश्रमे शोण-पूर्वतटस्थे कृतम् ।

तस्य च्यवनाश्रमस्य सन्निधावेव प्रीतिकूटनामकमुत्तुङ्गशृङ्गम् नगरं वात्स्यायन शोणभद्रीयवंशमूलपुरुषाय वत्साय सारस्वतः समस्थापयदिति । तथा च :—

"चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य वत्सस्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूट नामानं निवासं सारस्वतः । आत्मनापि जटी भूत्वा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम् ।" [ह. च. १। पृ. ३८]

तस्मिन्नेव प्रदेशे—(च्यवनाश्रमप्रदेशे) यस्मिन् सुकन्यया सह स्थितायै अक्षमालायै समर्पितः सारस्वतः प्रव्रजता पित्रा दधीचेन । तस्मिन्नेव प्रदेशे—च्यवनाश्रमसीमायामिति अर्थं हर्षचरितस्य सांस्कृतिकाध्ययने भारतस्य महान् विचारको भारत-संस्कृत्यम्बुधिमन्थनशीलः श्री वासुदेवशरणाग्रवालोऽपि चकार ।

न च "तस्मिन्नेव प्रदेशे" इत्यस्य व्याख्यानं सरस्वत्याश्रमे शोणपश्चिमतटे, इत्यारास्थभोजपुरीकार्यालयस्थस्य श्रीरघुवंशनारायणसिंहस्य तर्क-निकष-

परिशुद्धम्, अक्षमालायाः तत्र गमन-वर्णनाभावात्, देवरभार्यालये भ्रातृजायायाः गमनस्य शिष्टाचारविरुद्धत्वात् मत्पक्षस्य चाप्ताप्रवालव्याख्यानपुष्टत्वात्। एवं-प्रकारेण प्रमाणैः प्रीतिकूटस्य शोण-पूर्ववर्त्तित्वं साधयित्वाधुना श्रीरघुवंशनारायण सिंहस्थापितपक्षस्य तर्कैरुपालम्भः क्रियते—

तस्मिन् शोण-पूर्व-तटस्थे च्यवनाश्रम-प्रान्तस्थे प्रीतिकूटे काल-क्रमेण वत्स-वंशे वात्स्यायन-कुवेर-पाशुपतार्थपति-चित्रभानुक्रमेणातिद्वयीकथालेखको महान् कुतूहलपरवान् बाणः समाजायत इत्यत्र न कोऽपि विवादः।

तत्र श्री सिंहस्य तर्को यत् बाणः शोण-पूर्वतटवर्त्ती आसीच्चेत् श्रीहर्षनगर-गमन-काले बाण-कृतशोणोत्तरणवर्णनं कथन्न कृतं वस्तुनश्चित्र-(बिम्ब) ग्रहण-प्रतिभावता गद्यगुरुणा बाणेनेति चेत्, सत्यम्,

हर्ष-प्रासादे बाण-प्रयाणस्य निदाघ-कालिकत्वेन तस्य सिकतामयनदस्य शुष्कनीरत्वात् सदानीरत्वाभावात् ग्रीष्मेऽन्तःसलिलत्वाच्च। तथा च "रोमाञ्चितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः। शनैश्चण्डिकायतन काननमतिक्रम्य 'मल्लकूट'नामानं ग्राममगात्।" [हि. ह. च. पृ. ९२]

न च हर्ष-नगरात् परावर्त्तनसमये शरदि शोणं-तरणं कथन्न वर्णितमिति वाच्यम्, तस्य वर्णनीयस्य विषयस्य दृष्टिपक्षात् स्खलितत्वात् कादम्बर्यां पाशुपतवर्णन-विस्मरणवत्।

किञ्च पूर्वं भावप्रमाणैरेव विचार्यताम्। अभावस्य प्रामाण्यन्तु विवादास्पदम्। अस्मिन् विषये दार्शनिका बहुधा विप्रवदन्ते। किञ्च भवतां पक्षे वर्णनाभावरूपं प्रमाणं प्रमाणाभावं सूचयति। व्यतिरेकिप्रमाणमन्वयिप्रमाणासंभवे एवं दीयते। नात्र "यन्नैवं तन्नैमिति" कथनस्य स्थितिः।

यतो हि बाणः स्ववंशस्वभावस्वनिवासस्थानादिविषये हर्षचरितस्योच्छ्वासद्वये बहु वर्णितवान्। अस्तु।

श्री सिंहः "कथयति यत् "सरस्वत्या" गन्तव्यो ब्रह्मलोक आसीत् न श्वसुरालय-श्च्यवनाश्रम इति ।"

भवतु नाम । का हानिः ? सारस्वतेन तु पितृ-गृहं गन्तव्यमासीत् । यत्र सुकन्याया सहाक्षमाला विराजितासीत् । यत्र च तस्याक्षमालापुत्रवत्सेन सह लालन-पालनमभूत् ।

श्रीसिंहः आर्यावर्त्तप्रकाशिते स्वपत्रे कथयति यत् "शोणस्य पश्चिमे तटे 'लोहाटोला'नाम्ना यो हि ग्रामः स एव सारस्वतेन प्रीतिकूटनाम्ना घोषितः ।"

अहं पृच्छामि यत् प्रीतिकूटलोहाटोलयोः किं शब्दसाम्यम् ? भाषाविज्ञान पद्धत्या विचारे कृते सति उभयो शब्दयोः किमपि साम्यं नास्ति । प्रीतिकूटात् पीरू-पीयरो-पीरोप्रभृतिरूपाणि संभवन्ति, परन्तु तत्र तथा न सम्भाव्यते ।

अहं पृच्छामि 'लोहाटोला' ग्रामस्य किमपि पकारादि उपनाम वर्त्तते ? किञ्च स ग्रामः शोणतटात् कियद्दूरे अस्ति ? च्यवनाश्रमप्रान्तस्थ'पीरो'ग्रामस्तु अधुनापि शोणमृतप्रवाहतः गव्यूतिमात्र एव । अस्तु ।

श्री सिंहस्तस्मिन् पत्रे अग्रे कथयति यदक्षमाला भार्गववंशीया । भार्गवस्य वत्सगोत्रीयैः सह कः सम्बन्धः सम्भाव्यते इति ।"

अहं कथयामि । जन्यजनक-सम्बन्धः पारम्पर्य-क्रमागतः । अक्षमाला-पुत्रो वत्सः जनकः, वत्सगोत्रीयाश्च जन्या इति । सामुद्रो हि तरङ्ग" इति रीत्या वत्सस्य बच्छगोत्रीयैः सह सम्बन्धः भाषाविज्ञानसम्मतः । यथा-पीरो-प्रीति-कूटयोः, सोनभदरिया-शोण-भद्रीययोः ।

यदा वत्सवात्स्यायनयोः सम्बन्धः सिद्धस्तदा बादरायणसम्बन्धात् परम्परया भार्गवेणापि । यतो हि भार्गववंशीयाक्षमाला वत्सस्य माताऽसीत् ।

स्यादेतत्, भार्गवस्य वच्छ-गोत्रीयैः सह मास्तु सम्बन्धः । परन्तु भाषा

विज्ञान-प्रेरणया भार्गव-कुलोत्पन्नेन वत्सेन सह वच्छगोत्रीयाणां सम्बन्धः शब्द-विज्ञानसिद्धः।

यथा बाभनब्राह्मणयोस्तथैव वच्छ-वत्सयोः सम्बन्धोऽपरिहार्यः। परिहार्यश्चेदुच्यताम् बाभनशब्दस्य को हि मौलिकः शब्दः? वच्छशब्दस्य को हि तत्समशब्दः? वत्सशब्दस्य प्रथमपाल्यां, प्राकृतेऽपभ्रंशे च किं रूपमिति? किञ्च "बहुरि बच्छ कहि लाल कहि इति मानसकविपद्ये 'वच्छ'शब्दस्य कोऽर्थः? किञ्च 'बच्छा, 'बछड़ा, शब्दानां कः संस्कृतशब्दः?

एते शब्दाः न देशजा,ः न वा विदेशजाः, किन्तु तद्भवा एव। तद्भव-शब्देन तत्समशब्दवता भाव्यम्। पुनः शिरसि पतितः वेतालः। एषां शब्दानां तत्समशब्दः कः? किंस्वित् भार्गववंशातिरिक्तोपि कश्चन 'वत्स' ऋषिरासीत् अधःस्विदुपरिस्विद् वा? यस्य वंशजा एते 'वच्छ' गोत्रीयाः!

आस्तां तावत्। प्रीतिकूटं शोणस्य पश्चिमतटस्थसरस्वत्याश्रमप्रान्ते एवासीत्। एतत्तु सत्यं यत् शोण-धारा शनैः शनै पश्चिमां दिशं सर्पति सरति वा।

अस्यामवस्थायां सारस्वतवत्सकाले यः सरस्वत्याश्रमभूभागः शोण-पश्चिमतटे आसीत्, शोणस्य पश्चिमायां दिशि संसरणात् तेन भू-भागेनाधुना शोणपूर्वोपतट-वर्तिना भाव्यम्।

लभ्यते एव शोणपूर्वतटे च्यवनाश्रमः। प्रीतिकूटञ्च पीरोनाम्ना, वत्स गोत्रीयाश्च वच्छ-गोतियानाम्ना, शोणभद्रीयाश्च 'सोन-भदरिया' नाम्ना लभ्यन्ते।

यदा यत्रत्या 'वत्स-गोत्रीया अधुना महम्मदन-पाठानरूपे परिवर्त्तितास्तदा तद्ग्रामस्य प्रीतिकूटस्य 'पीरो' इति रूप-परिवर्त्तनं भाषा-विज्ञानच्छात्रस्य कृते नाश्चर्यजनकम्।

करुण-रस-कवि-पद्ये किञ्चित् परिवर्त्तनं कृत्वा इत्थं वक्तुं शक्यते यत्—

पुरा यत्र स्त्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घन-विरलभावः क्षितिरुहाम् ।
बहोः दृष्टं कालादपरमिव मन्ये [च्यावन] वनमिदं
निवासो वात्स्यानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।

भाषावैज्ञानिकपरिवर्त्तनक्रमेण सारस्वतस्थापितं प्रीतिकूटं कालक्रमेण 'प्रीतिपुरम्,' ततश्चाधुना 'पीरो'शब्देन प्रथितम् । एतच्च स्थानं गयामण्डले दाउदनगर स्थाने गयातः पश्चिमायां दिशि रफीगंजतः सप्तक्रोशमात्रमुत्तर-पश्चिम-कोणे शोणस्य पूर्वतटे वर्त्तते ।

अकबरकाले एतदुन्नतकूटं भूमिसात् कृतमत्रत्याश्च वत्सगोत्रीयाः महम्मदन-धर्में दीक्षिताः । अद्यापि तत्र च्यवनाश्रमः । अद्यापि ततो गव्यूतिमात्रं प्राचीनशोणस्य पूर्वतटम्, पुरा यत्र स्त्रोतः शोणस्य ।

अद्यापि वात्स्यायनवंशसंभवस्य बाणस्य वंशजाः—वत्सगोत्रीयाः (बच्छ-गोतिया) तत्र निवसन्ति । एभिर्लक्षणैर्लक्ष्यते यत् इमे वत्सगोत्रीयाः बाण वंशजाः, एषां वा बाणः पूर्वज इति ।

किञ्च बाणः शोणभद्रतटे आसीत्, फलतस्तद्वंशीया वत्सगोत्रीयाः शोणभद्रीयाः कथ्यन्ते । कालक्रमेण यस्य रूपं 'सोनभदरिया' इति लोके प्रथितम् ।

वस्तुतः प्रीतिकूटं गुरु-कुलमेव । गद्यगुरोर्गृहमेव गुरु-कुलम् । गुरुकुला-न्निर्गत्य राजकुले "जगाम बाणः । अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।

कादम्बर्यां स्वगृह-गुरुकुलस्य प्रीतिकूटस्थस्य वटूनां स्वाध्यायाध्ययनविषये स्वपूर्वजानाञ्च याजनाध्यापनादिविषये यथा वर्णितं तथा हर्षचरितानुशीलनेनापि ज्ञायते ।

यदा पद-वाक्य-प्रमाणपारदृश्वा बाणः हर्षराज-सभां चतुर्मासं यावदलंकृत्य शरदः प्रारम्भे स्वनिवासस्थानं ब्राह्मणाधिवासं प्रीतिकूटमाजगाम तदा कुशल परिप्रश्नप्रसंगे महाकविरयं बान्धवान् पृच्छति ।

"अपि निर्विघ्नं यज्ञकर्म ? अप्यनवच्छिन्नो वेदाभ्यासः ? स्वध्यायेऽनध्याय-स्तु नास्ति ? अपि शास्त्रकाव्यचर्चा अव्याहता ? कच्चित् स एव चिरंतनो यज्ञ-विद्याकर्मण्यभियोगः ; सैव पुरातनी परित्यक्तान्यकर्त्तव्या प्रमाणतर्कगोष्ठी ? तान्येव व्याकरणे व्याख्यानमण्डलानि ? स एव वा मन्दीकृतेतर-शास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः ? कच्चित्त एवाभिनवसुभाषितसुधावर्षिणः काव्यालापाः?"इति ।

मन्ये कुलपतिकण्व-वरतन्तु-मण्डन—शंकर-दुर्वाससामाश्रम एवायं बाणाश्रमः ।

अयं परिप्रश्नः "कौत्सरघु-संवादं" कवि-कुल-गुरु-मुख-पंकज-निःसृतं स्मारयति । तथा च चतुर्दश-विद्या- विशारदं कौत्सं महाराजो रघुः पृच्छति—

"कायेन वाचा मनसाऽपि शश्वत्,
यत् सम्भृतं वासवधैर्यलोपि ।
आपद्यते न व्ययमन्तरायैः,
कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ?"

अत्रापि वाचा यत् वेद-पाठरूपं तपः तस्य कुशलं रघुः पृच्छति ॥ अस्तु,

यस्मिन् प्रीतिकूटे बाणभवनमेव कुलपतिगृहम्, यत्र भारते सर्वे मठा एव च्छात्रावासाः, यत्र विहारे सर्वे विहारा एव सरस्वत्याश्रमाः, यत्र प्रीतिकूटे बाणस्य पूर्वजा एव कुलपतयः, यत्रत्यबाणस्य वाणी वशंवदा तत्रत्यगौरवविषये किं वक्तव्यम् ?

यत्र भारते कण्वः कुलपतिरासीत्। दुर्वासाश्च कुलपतिरयुतच्छात्रान् प्रतिदिनं भोजयति स्म अध्यापयति स्म च। यत्र वरतन्तुसदृशः कौत्सगुरुः सर्वविद्याविशारद आसीत्, यस्मादेकस्मादेव गुरोः सर्वविद्यालाभो गुरुभक्तेन कौत्सेन कृत इति एषां स्मरणमेव पावनम्।

"पवित्रमत्रातनुते जगद् युगे।
स्मृता रसक्षालनयैव यत्कथा।"

प्रीतिकूटभूमिः —"कथं न सा मद्गिरमाविलामपि
स्वसेविनं मेव पवित्रयिष्यति ?"

अस्मिन् प्रसंगे हठात् मीमांसकप्रवरस्य शङ्करप्रतिपक्षिणो मण्डनमिश्रस्य महिषी-माहिष्मती दृष्टिपथे आयाति। यत्रत्यपाण्डित्याकृष्टमाचार्यशङ्करस्यापि मनश्चचाल। प्रीतकूट-माहिष्मत्योर्महत् साम्यमनुभूयते।

यदि माहिष्मयां मण्डन-मिश्रगृहे—"स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणमिति कीराङ्गना एव गिरो गिरन्ति, तदा प्रीतिकूटे गद्यसार्वभौमपूर्वजस्य गृहे ससारिकैः पञ्जरवर्त्तिभिः शुकैः निगृह्यमाणा बटवः पदेपदे यजूंषिसामानि च यत्र शंकिताः" पठन्ति।

यदि मिथिलायां महान् मीमांसकः शोभते तदा मगधे महान् गद्यकवी राजते। यदि माहिष्मत्यां मिथिलायां वा गृहेगृहे ग्रामे ग्रामे मण्डन-चित्रधर-मधुसूदनसदृशाः मीमांसकास्तदा प्रीतकूटे बाण-गृहे एव मीमांसापरम्परा दृश्यते।

बाणवृद्धप्रपितामहः कुबेरः सदा पुरोडाशपवित्रिताधरः सोमकषायितोदरश्चासीत्। पितामहश्चार्थपतिः मखैरसंख्यैः सुरालयमेवाजयत्। पिता च चित्रभानुरासीत् यस्याध्वरधूमसंचयः कृष्णोऽपि शुक्लं यशस्ततान।

हर्ष-गृहादागतस्य बाणस्य बन्धून् प्रति निम्नाङ्कितः परिप्रश्नः सूचयति यत् प्रीतिकूटवासिनो वात्स्यायनाः—बच्छ-गोत्रीयाः विशेषतः मीमांसारस-रसिका मीमांसा-रस-प्रवाहे निमग्ना याज्ञिकाः सोमपायिन आसन्। तथा च—

"कच्चित् स एव चिरन्तनो यज्ञ-विद्याकर्मण्यभियोगः ?" स एव वा मन्दीकृतेतरशास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः ?"

किञ्च स्वपरिचय-प्रदान-प्रसंगे श्रीहर्षं प्रति बाणः कथयति—"ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्" इति।

एवमुभयत्र माहिष्मत्यां प्रीतिकूटे च मिथिलायां मगधे च मीमांसा-दर्शनस्य विशेषतः परिशीलनं भवति स्म इति ज्ञायते। यद्यपि प्रीतिकूटे व्याकरण-काव्य-तर्क विश्लेषणमपि प्रचुररूपेण क्रियते स्म इति बाणकृतकुशलपरिप्रश्नानुच्छेदादेव ज्ञायते।

अस्यां स्थितौ एवं वक्तुं शक्यते यत् मिथिलायाः प्रीतिकूटं महिषी, अथवा मगधस्य 'महिषी' प्रीतिकूटमिति।

किञ्च मण्डनमिश्रो यदि मीमांसायां निष्णातस्तदा बाणवृद्धप्रपितामहः कुबेरः सोमयाजी आसीत्।

मिश्रगृहं यदा सौत्रामण्यां सुरालय आसीत् तदा बाणभट्टपितामहस्यार्थपतेर्गृहे मखैः सुरालयविजय एवासीत्। इत्येतावान् विशेषः प्रीतिकूटस्य।

अध्वरधूमसंचयो मिश्रगृहेऽपि बाणपितुश्चित्रभानोर्गृहेऽपि। शुकसारिका शास्त्रार्थश्चोभयत्र इति।

एवं प्रतिभाति यत् कवि-शरभस्य बाणस्य प्रपितामहं पाशुपतं विहाय कुबेरात् प्रभृति सर्वे पूर्वजा याज्ञिका आसन्।

एवं प्रकारेण प्रीतिकूट-माहिष्मत्योः सांस्कृतिकसाम्यं सर्वथाऽनुभूयते। मन्ये, यदि बाण-पूर्वजाः शङ्कराचार्यकालेऽभविष्यन् तदाऽवश्यमेव तान् विजेतुं शङ्करः प्रीतिकूटे आगमिष्यत्ततश्च तत्पदार्पणेन मगधो धन्योऽभविष्यत्।

तस्य प्रातःस्मरणीयस्य संस्कृत-केन्द्रस्य पीतिकूटस्याद्य कीदृशी दयनीया दशा इत्यादि द्रष्टव्यम्।

अकबरकाले अत्रत्याः पैठानीकृताः। अद्य प्रीतिकूटस्य गुण-गानं तत्रत्य-महम्मदनीकृतमुखेभ्य एव श्रोतव्यम्।

"पुरा सरस-मानसे विकचसारसालि स्खलत्।"

पद्यमिदं पण्डित-राजस्यास्मिन् प्रसङ्गे स्मर्यते। अस्तु।

अधुनापि प्रीतिकूटस्य चतसृषु दिक्षु वात्स्यबाणवंशजाः वच्छगोतिया इत्याहितलक्षणाः शोणभद्रीयाः निजपूर्वज-विद्या-वैभवं स्मरन्तः समयं नयन्तः सन्ति। आस्तां तावत्।

महाकविबाणभट्टोऽयाचकः किं वाऽप्रतिग्राहकः प्रतिग्रहान्निवृत्तब्राह्मणोऽर्थात् भूमिहार-ब्राह्मण आसीत्। तथा च तत्कृतहर्षचरितस्यान्तरङ्गपरीक्षया अथवा तदन्तःकरणोद्गारेणैव ज्ञायते।

श्रीहर्षभ्रातुरथवा स्वमित्रस्यामन्त्रणं प्राप्य हर्ष-सभायां गन्तव्यमथवा नेति मनसः संकल्प-विकल्पप्रसंगे बाणः कथयति—

१ "न चमे तत्र पूर्वजपुरुषप्रवर्तिता प्रीतिः। न कुलक्रमागता गतिः। नोपकारस्मरणानुरोधः। न बालसेवास्नेहः। न गोत्र-गौरवम्, न पूर्वदर्शन-दाक्षिण्यम्।"

(हि० ह. च. पृ. ८९)

नैतत् प्रतिग्राहको ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति। राज-सम्मानं तु अमृतमिव भवति। अमृतं राज-सम्मानमिति।"

किञ्च निराश्रया न तिष्ठन्ति पण्डिता वनिता लताः। अस्यामवस्थायां यदि राज्याश्रयः स्वयमेव मिलति तदाऽवश्यमेवाभिनन्दनीयः स्यात्।

"लभते वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया पुण्यः कथमीप्सितो भवेत्?"

किञ्चास्य पूर्वजारतादृशाः श्रीमन्तो नासन्। तथा च स्वयमेव वर्णयति— "सत्स्वपि पितृ-पितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्या-प्रसङ्गे गृहान्निरगात्।"

(हि. ह. च. पृ. ६७)

अस्यां परिस्थितौ निकटस्थस्थाण्वीश्वर-प्रभाकरवर्धन-राजवर्धनसभायामस्य पूर्वजानां सरस्वती-पाणि-सरोज-सम्पुट-प्रमृष्ट-होमश्रम-शीकराम्भसां प्रवेशः कथन्नासीत्? यथा च स्वयमेव वर्णयति— "न गोत्रगौरवम्।"

यतस्ते अप्रतिग्राहकब्राह्मणा--अयाचकब्राह्मणा—निवृत्तब्राह्मणा आसन्। फलतः राज-सभायां प्रवेशस्तेषां नासीत्। अद्यापि तद्वंशजाः शोणभद्रीया वत्सगोत्रीयाः प्रतिग्रहं नैव गृह्णन्ति। अस्तु।

२ द्वितीयं प्रमाणमस्यायाचकब्राह्मणत्वे—

"दत्त्वा द्युम्नं यथा विद्यमानं द्विजेभ्यः ।" (ह. च. पृ. ९०)

ईदृशो व्यवहारः पुरोहितब्राह्मणानां गृहे नैव दृश्यते । यो हि आदान-शीलस्तस्य प्रवृत्तिः प्रदाने नैव भवति । किञ्च पुरोहितस्य पुरोहितो नैव भवति । यदि स पुरोहितः स्यात् नैवं विप्राय दक्षिणां दद्यात् । यतः स अपुरोहितोऽतः गमनकाले द्विजेभ्यो दानमदात् ।

३ तृतीयं प्रमाणं बाणस्यायाचकब्राह्मणत्वे—

"कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः ।"

[हि. ह. च. पृ. ९१]

अत्र निज-द्विजैरित्यस्यार्थः पुरोहितः कृतोऽस्ति पाठकमहोदयेन टीकाकारेण । याचकब्राह्मणानां किं वा याजकब्राह्मणानां क पुरोहितः ? याचकब्राह्मणास्तु स्वयमेव पुरोहिताः । यो हि अपुरोहितस्तस्य पुरोहितो भवति । बाणो हि अपुरोहितब्राह्मण आसीदतः पुरोहितेनानुसृत इति ।

४ चतुर्थप्रमाणमस्याप्रतिग्राहकब्राह्मणत्वे —"अप्रत्यूहा वा सम्यक्करण परितोषितद्विजचक्रा ऋातवी क्रिया क्रियते ?"

राजकुलादागतः बान्धवान् प्रति कुशलपरिप्रश्नं पृच्छति बाणः । तत्र ईदृशी द्विजतोषणभावना पुरोहितब्राह्मणे नैव दृश्यते । यो हि स्वतोषण-चिन्तामग्नः स परतोषणपोषणचिन्तां कदा कथं वा एवं कुर्यात् !

एवं बाणस्य लक्षणचतुष्टयं यदि वत्सगोत्रीयेषु संघटते तदा प्रत्यभिज्ञा

प्रमाणेनानुमानेन वा साधयितुं शक्यते यत् बच्छगोत्रीयाः बाणवंशजा एव। तथा च—

[क] बाणोऽपि शोणपूर्वतटे च्यवनाश्रमप्रान्तस्थे प्रीतिकूटे आसीत्, एषां शोणभद्रीयवात्स्यानामपि मूलस्थानं प्रीतिकूटमेव।

[ख] बाणोऽपि शोणभद्रतटे आसीत्, इमे शोणभद्रीयाः (सोनभदरिया) अपि।

[ग] बाणस्तस्मिन् प्रीतिकूटे आसीत् यत् च्यवनाश्रमसन्निधौ आसीत। अधुनाऽपि वच्छगोत्रीयमूलनिवासस्थानं पीरो च्यवनाश्रमसन्निधावेव।

[घ] पूर्वप्रतिपादितरीत्या बाणोऽपि अयाचकः—अप्रतिग्राहकः—प्रतिग्रहान्निवृत्तो भूमिहार–ब्राह्मण आसीत्। इमे 'सोनभदरिया' 'वच्छ गोतिया' अपि इति चतुर्लक्षणमूलया प्रत्यभिज्ञया साध्यते "वच्छगोत्रीयाः शोणभद्रीया बाणस्य वंशजा" इति।

किञ्चानुभवमूलया चतुर्लक्षणमूलया पूर्वोक्तप्रत्यभिज्ञया तथात्वे साधितेऽपि "प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः" इति तेषां विदुषां परितोषाय अनुमानप्रमाणमपि उपस्थाप्यते—

प्रतिज्ञा—इमे वत्सगोत्रीयाः शोणभद्रीयाः बाणवंशजाः।

हेतुः—[१] च्यवनाश्रमप्रान्तस्थप्रीतिकूट (पीरू) मूलवासित्वे सति शोणभद्रीयत्वे सति बाभनत्वात्।

[२] तत्प्रान्तप्रचलितजनश्रुतिमूलकत्वेन ऐतिह्यप्रमाणपुष्टत्वात्।

[३] भाषाविज्ञाननिकषे बच्छस्य वत्सत्वेन बाभनस्य ब्राह्मणत्वेन, सोनभदरियाशब्दस्य च शोणभद्रीयत्वेन परिलक्षितत्वात्।

उदाहरणम्—यन्नैवं तन्नैवं, यथा गयस्थलीयाः ।

न च "ये ये वत्सगोत्रीयाः शोणभद्रीयाश्च ते ते बाणवंशीया इति अतिव्याप्तिः शङ्क्या, "ये ये वत्सगोत्रीयाः शोणभद्रीयाःब्राभनास्ते ते बाणवंशीया" इति व्याप्तेः सद्भावात् ।

अनेन व्याप्ति-विशिष्ट-पक्षधर्मताज्ञानमूलकानुमानेनारास्थभोजपुरीकार्यालय सदस्यस्य श्री रघुवंशनारायणसिंहस्यैतत् कथनं परारतं यत् "तत्रत्यवच्छगोत्रीयैः सह भार्गवस्य वत्सस्य बाणस्य वा कोऽपि सम्बन्धो नासीदिति ।"

श्रीसिंहः सामसुमारशब्दात् 'सहसराम' शब्दं साधयति । 'मल्लकूट' शब्दात् 'मल्लौर' शब्दं स्वीकरोति, परन्तु वत्स-गोत्रीयशब्दात् वच्छ-गोतियाशब्दं नैव स्वीकरोति ।

अहं पृच्छामि, 'वच्छगोतिया सोनभदरिया बाभनशब्दानां तत्समशब्दः कः ? कृपया उच्यताम् । अत्र अस्मत्प्रतिपादित एक एव मार्गः नान्यः पन्था विद्यते अयनाय गमनाय वा ।

एवंप्रकारेणनुभवमूलकचतुर्लक्षणप्रत्यभिज्ञैतिह्यजनश्रुत्यनुमानभाषा-विज्ञान प्रमाणैः साधिते स्वपक्षेऽधुना स्वपक्षसमर्थने आप्तवाक्यं शब्दोऽपि प्रमाणत्वेनोपन्यस्यते ।

तथा च भारतस्य प्रख्यातविचारकः श्रीवासुदेवशरणाग्रवालो हर्षचरितस्य सांस्कृतिकाध्ययने हजारीबागावासस्य विद्वा-वयोवृद्धस्य प० परमेश्वरप्रसादशर्मणः स्थापनं पादटिप्पण्यां [फुट नोटे] प्रमाणत्वेनोपन्यस्याप्रतिषिद्धमनुमतं भवतीति रीत्या स्वीकरोति यत् प्रीतिकूटं नाम वत्सनिवासस्थानं च्यवनाश्रमस्य सीम्नि [शोणस्य पूर्वतटे] अस्ति । तत्रत्याश्च बच्छगोतिया सोनभदरिया बाभना बाणवंशजा इति ।

अयं कविशरभो गद्यसार्वभौमः स्वव्यक्तित्वस्य परिचयं स्वयमेव हर्ष-सभायां प्रथममिलनसमये कथयति "ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्या-यनानाम्। यथाकालमुपनयनादयः कृताः संस्काराः। सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजङ्गता? लोकद्वयाविरोधिभिरतु चापलैः शैशवमशून्यमासीत्। अत्रा-नपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम्।"

अस्य सूत्रस्य यदि भाष्यं भवेत्तदा बहोः कालस्य दीर्घ-समयस्य चावश्यकता भवेत्। मन्ये, बाणः सूर्यकान्तमणिरिव आसीत्। यश्च मणिरचेतनोऽपि सूर्यपादैः—किरणैः स्पृष्टः प्रज्वलति। अस्यां स्थितौ यो हि बाणसदृशो भावुकः सहृदयः आत्मगौरविमनस्वितेजस्विवर्चस्विमेधाविप्रतापी स सूर्य सदृशस्य हर्षवर्धनस्य निकृतिं कथं सहेत?

यदा बाणं लक्ष्यीकृत्य पार्श्वस्थं मालव राजपुत्रं शनैरुवाच हर्षः "महानयं भुजङ्गः इति," बाणस्तदा सूर्यकान्तमणिरिव सूर्यरूपहर्षवचनकिरणस्पृष्टस्तत्क्षणमेव जज्वाल प्रदीप्तो वाऽभवत्। महान् विदग्धो बाणः दग्धहृदयो भूत्वा राजसन्निधौ यदुवाच तेन तत्तेजस्विता लक्ष्यते। मन्ये, स प्रतापे अनल इव विद्यायां द्रोण इव, रूपे मदन इव, प्रज्ञायां बृहस्पतिरिव, वर्णने व्यास इव, उत्पादने शरभ इव, कल्पनायां वाणी इव, औत्सुक्ये पतञ्जलिशिष्य इव, भ्रमणे राहुल इव, प्रयत्ने भगीरथ इव, रचनायां वाचस्पतिरिव, गद्ये मैथिल उदयन इव, नवोद्-भावनायां कालिदास इव, धारणायां राजेन्द्र इव, मेधायां कौत्स इव, विलासे च भारतेन्दुरिवासीत्।

दृश्यते लोके श्रीमन्तं चाटुकाराः वर्णयन्ति· त्वमर्कस्त्वं सोम इति। अस्यां स्थितौ राजसम्मुखे कविकेसरिणो बाणस्य इत्थं गर्जनं भयमुत्पादयति।

अस्मिन् वाण्यवतारे कविकुलगुरोस्तेजस्विता मनस्विता चासीत् यया प्रेरितः कालिदासः महाराजभोजं व्याजहार—

"विद्वत्त्वं च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।"

यद्यपि श्रीहर्ष-सभायां गमनकाले बाणो हि अभ्यागारिक आसीत् । परन्तु अवस्था प्रथमावस्थां नातिक्रान्ता आसीत् । अतस्तस्य विषये 'अग्निर्माणवकः, अग्निर्वाण इति वा कथनमुपयुक्तं प्रतिभाति ।

स ईदृशो ब्राह्मणो नासीत् यस्य वर्णनं गद्य-काव्यस्यान्तिमस्तम्भेन घटिकाशतकेन कृतम्—

"वयं नो ते विप्राः प्रतिदिवसमासाद्य कृपणान् ।
धनं ये याचन्ते प्रतिगणितनक्षत्रतिथयः" । इति

दानिशिरोमणेर्विद्याव्यसनिनः सम्राजो हर्षवर्धनस्यामन्त्रणं [यत् कस्यापि कृते महद्धर्षवर्धकं स्यात्] प्राप्यापि अयं निवृत्त-ब्राह्मणः सन्तोषधनसन्तुष्टः अनवसरे चिन्तामग्नोऽभवत् गन्तव्यं न वा इति

तदानीन्तनीमस्य मनोदशां पठित्वा एतदेवानुभूयते नैतत् प्रतिग्राहको विवक्तुमर्हति । ब्राह्मणस्य कृते सम्राजो निमन्त्रणं, तदपि भोजनस्य नहि, किन्तु हेम्नो भारशतानि, मदमुचां दन्तिनां वृन्दानि [इत्येवमुक्तार्थ] ग्रहणस्य, स्पृहणीयं स्यात् । किन्तु अनवसरे प्रथमावस्थायामेव उत्तमाङ्गोद्भवस्यास्य वात्स्यस्य ईदृशी वितृष्णा कथम् ?

नूनमयं धनेन तुष्टः अयाचकः अप्रतिग्राहकब्राह्मण आसीत् । अन्यथा "अमृतं राजसम्मानमिति" मनसि विचार्य कथं नास्य मनोमयूरोऽनृत्यत् !

निवृत्तब्राह्मणत्वेन दानं मया नैव ग्राह्यमिति वंशपरम्परागतबद्धमूल धारणया बाणः स्वभावादेव सन्तुष्ट आसीत । तस्मिन् तुष्टेऽन्तःकरणेऽस्य प्रलोभनस्य प्रभावो नाभवदिति वस्तुस्थितिः ।

मेखलकहस्तादामन्त्रणपत्रप्राप्तिकालेऽस्य मनोदशा तादृशी आसीत् यादृशी सिकरीनरेशस्यामन्त्रणं प्राप्य वात्सल्यरसकवेः सूरदासस्य । कृष्णरसेन तृप्तः सूरोऽपि प्राह—"सन्तन काह सीकरी सो काम ?"

यतः कृष्णरसे मग्नं तन्मनः समुज्ज्वलमभूत् । फलतः विषयानुरागरहितं तदभवत् ।

"रमा विलास राम अनुरागी,
तजत वमन इव ते नर बड़ भागी ।"

अस्यायाचककुलकमलदिवाकरस्य वत्सवंशावतंसस्य मनोवृत्तिस्तादृशी आसीत् यादृशी श्री भागवते महात्मनां वर्णिता----

"चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहा किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्मात् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ?"

अस्य वाण्यवतारस्य वात्स्यस्य धारणा तादृशी आसीत् यादृशी इन्द्रप्रस्थ राजधान्यां दृष्टे दुष्यन्ते कण्वब्रह्मचारिणोः लक्ष्मीविलासप्रसादं प्रति शाकुन्तले चित्रिता--"हुतवहपरीतं गृहमिव ।"

तथापि मित्रकृष्णप्रेरणयात्मनोऽभिव्यक्तये स्वविषये कर्णेजपैः प्रचारितापवाद निराकरणाय हर्षसन्निधौ कथञ्चित् जगाम ।

राजसम्मानन्तु बाणस्य कृतेऽमृतं सञ्जातमेव। अन्यथा कल्पना-कल्पपादपस्य कविशरभस्य प्रथमममरकाव्यं हर्षचरितं कथंकारं रचितं स्यात्! विदग्धकृततदभिनन्दनोत्साहितः कादम्बरीकथाप्रणयने च कथं प्रवृत्तः स्यात्! मूलं नास्ति कुतः शाखा!

हर्षसम्पर्कमूलकं हर्षचरितप्रणयनं, तन्मूलकं च कादम्बरीकथाकल्पनं तन्मूला च वश्यवाणीककविचक्रवर्तिनो लोकेऽमरता इति। विजयताममरकविस्तदमृतं काव्यञ्च।

संक्षेपतोऽस्य व्यक्तित्वविषये इत्थं वक्तव्यं यत्

१ अयं कविकेसरी महान् आत्मगौरवी आसीत्। सूर्यकान्त इव राजसभायां प्रज्वलन्नासीत्। "का मे भुजङ्गता" इति सिंह इव गर्जन्नाह।

२ अयं कविशरभः काव्येऽभिनवार्थदर्शनलालस आसीत्। वस्तुनः स्वाभाविकवर्णनं नास्मै रोचते स्म। तथा चाह-"सन्ति श्वानं इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे"। कल्पनाकल्पपादपस्य कल्पनायाः निदर्शनं कादम्बरी कथा एव, या सर्ववृत्तान्तगामिनी कथा जगत्त्रयं व्याप्नोति।

३ अयं पतञ्जलिशिष्य इव महान् कुतूहली देशदर्शनभ्रमणलालसश्चासीत्। तथा च दिग्गजमिव गजेन्द्रं दर्पशातं दृष्ट्वा हर्षभवने स्वयमेवाह "अतिपरवानस्मि कुतूहलेन।

४ अयम् आकृत्या मदन इव मधुरः, प्रकृत्या भारतेन्दुहरिश्चन्द्रवत् विलासी साहित्यसमाजानुरागी चासीत्। यथा हरिश्चन्द्रस्य साहित्यसमाजे अष्टौ मित्राणि आसन् तथैवास्य भ्रमणे चतुश्चत्वारिंशत् सहाया मित्राणि आसन्, येषु चतस्रः स्त्रियश्चासन्। अस्य गद्य-गुरोर्व्यक्तित्वविश्लेषणे कृते सति एते गुणाः परिलक्षिताः।

यद्यपि अस्माकं निबन्धस्य नायं विषयः। तथापि वाग्जन्मनः साफ-ल्याय कल्पना-कल्प-पादपस्य काव्यामृतसमुद्रे मनोवारणस्य किञ्चिदवगाहन-मनिवार्यमिव प्रतिभाति। यस्मिन्नमृतसागरे निमग्नं मनः सांसारिकसुखदुःखादिकं नैव स्मरति।

किञ्च "गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता" हृदयहीनता भवति। हृदयहीनता-दोषापातो मा भूदिति बाणकाव्यामृतसागरो मन्थनीय एव।

भारतीय-संस्कृत-साहित्य-सागर-मन्थने बद्धपरिकरः साहित्यसमाजे प्रातः स्मरणीयोऽग्रवालो बाणकाव्यममृतस्त्रोतः कथयति। तदमृतप्राप्तये बाण-काव्यरत्नाकरो मन्थनीय एव। यदि देवासुरधैर्याभावादमृतं नापि लभेत, कानिचित् रत्नान्यपि प्राप्तानि स्युस्तदा मन्थनमिदं सार्थकं स्यात्। अन्यथा भार्गववत्सबाणकीर्त्तनजनितं पुण्यं भवत्येव।

गद्यगुरुकाव्यकवित्वविषयेऽल्पमेव वक्तव्यमस्ति। सुतरामल्पीयसि जल्पिते 'खलत्वदोषोऽपरिहार्य एव। अस्तु

१ सर्वप्रथमं गद्यसार्वभौमेन बाणेन' हर्षचरितनाम्ना प्रसिद्धाख्यायिका रचिता। यस्यां सत्यसंधस्य पुण्यश्लोकस्य विद्याव्यसनिनो लक्ष्मी-सरस्वती कृपापात्रस्य हर्षवर्धनस्य लोमहर्षणं वर्णनं कृतम्। तन्माध्यमेन स्वर्णयुगस्य संस्कृतिरपि वर्णिता।

वस्तुतः संस्कृतिरमरताप्रदा भवति। यतो ह्यत्र सा संस्कृतिः सुरक्षिता। सुतरामिदं काव्यममृतस्त्रोतः" इति वक्तुरग्रवालमहोदयस्याशयः।

किञ्च संस्कृतिर्हि रत्नम्। तद्रत्नं संस्कृते किं वा बाणस्याख्यायि-कायां कथायां वा सुरक्षितमिति संस्कृतसाहित्यं बाणकाव्यं वा रत्नकोश इति श्रद्धेयाः सम्पूर्णानन्दमहोदयाः।

हर्षचरिते गद्यनायको बाणः स्वपूर्वजस्य स्वस्य चाविर्भावकथां जन्म-भूमिं च वर्णितवान् ।

२ द्वितीयं काव्यं हि रसभावविदो बाणस्य कादम्बरीनाम्ना प्रसिद्धम् । अस्यां कथायां कल्पनाकल्पपादपस्य कल्पना पूर्णतः प्रस्फुटिता ।

अस्यां रुचिरस्वरवर्णपदा रसभावभास्वती बाणस्य वाणी जगन्मनो हरति । सेयं भुवनमनोमोहनी लोकत्रयव्यापिनी बाणकथा ।

यदि विश्वस्मिन् सप्ताश्चर्याणि, तदा बाणकादम्बरीकथा अष्टमाश्चर्यं परिगणनीया । इयं कथा महाराजशूद्रकस्य जन्मत्रयचरितमनुबध्नाति शुकस्य च वैशम्पायननामकस्य ।

कादम्बरीमहाश्वेतयोश्चरितमाध्यमेनैतदुपदिशति यत् प्रियतमप्रेमप्राप्तये साधना आराधना परीक्षा च कर्त्तव्याः । एतदपि निर्दिशति यत् भारतस्यात्रत्य मानवस्य च किं महत्त्वं यदर्थं गन्धर्वकन्या किं वा स्वर्नायिकाऽपि स्पृहयति ।

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत–भूमि–भागे ।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।" (श्री भाग०)

अर्जुने किं देवदुर्लभं सौन्दर्यं गुणो वाऽसीत् यस्मै उर्वशीसदृशी स्वर्नायिका स्पृहयति । तथैव चन्द्रापीडे कीदृक् व्यक्तित्वमासीद् येन मुग्धा कादम्बरी बहुकालं यावत् तत्प्राप्त्यै प्रतीक्षां कृतवती । वैशम्पायने वा किं महत्त्वमासीत् येनाकृष्टा महाश्वेताऽच्छोदसरस्तीरे तपसि लीनाऽभवत् ।

सुतरां कादम्बरीकथा भारतमेव न पुनाति, किन्तु पुनाति भुवनत्रयम् । इयं सर्ववृत्तान्तगामिनी कथा भारतमेव न व्याप्नोति, किन्तु जगत्त्रयमिति ।

नूनं कविः क्रान्तदर्शी, स्वप्नद्रष्टा, सत्यसंधः क्रतुमयः श्रद्धामयः सफलमनोरथश्च यदैच्छत्तदभवत्, यतो हि अनन्यपरतन्त्रः किंवा स्वतन्त्रः सः।

यथा ब्रह्मतत्त्वस्य आश्चर्यः श्रोता, कुशलप्रवक्ता, तथैव ब्रह्मास्वादसहोदरस्य कादम्बरीकथारसस्य "आश्चर्योऽस्य श्रोता, बाणसदृशः कर्मणि कुशलः—कर्मठः, याज्ञिकः, किंवा याज्ञिकपुत्रः प्रवक्ता इति।

"आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्,
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति।
....
श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित्।" (कठोपनि.)

तदिदं विश्वस्याष्टममाश्चर्यं कश्चिदाश्चर्यचकितः पश्यति। आश्चर्यवच्चैतद् वर्णनं कश्चिदाश्चर्यवान् भूत्वा शृणोति। कश्चिदबहुश्रुतः श्रुत्वा पठित्वाऽपि सम्यग् न वेद। गुप्तकालिकस्य सुवर्ण-युगस्य परिचयं विना वर्णनं पठित्वाऽपि तद् रहस्यं न वेद।

अस्याः कथायाः हृदयङ्गमत्वाय सप्तमशतके गुप्तकालस्य स्वर्ण-युगेऽक्षि-निक्षेपः कर्त्तव्यः। तात्कालिकसंस्कृतिसभ्यतयोः सम्यगध्ययनं कर्त्तव्यम्। "तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः"।

३ तृतीयं चण्डीशतकम् बाणविरचितम् यत् श्यालमयूरदत्तप्रतिशापविमोचनहेतवे भगवत्याः प्रार्थनास्वरूपमस्ति। एतच्च स्रग्धराच्छन्दसा रचितं श्यालमयूररचित-सूर्यशतकस्योत्तरस्वरूपमिति।

बाणमयूरयोः श्यालावुत्तयोः शाप-प्रतिशापकथा तु विश्रुता एव। अतः नेह प्रतन्यते।

मयूरस्य जन्मस्थानं गयामण्डलान्तर्गतः देवनामकः ग्रामः। अयञ्च ग्रामः प्रीतिकूटात् विंशतिक्रोशमात्रम्, पामरगंजधूमशकटविश्रामस्थानात् सप्तक्रोशमात्रम्। अत्र सूर्यमन्दिरमस्ति, यत्र सूर्याराधनप्रसङ्गे स्रग्धराच्छन्दसा मयूरः सूर्यशतकं रचितवान्। ततश्च शिवेतरक्षतिरभूत् मयूरस्य।

चतुर्थं तावत् पार्वतीपरिणयनामकं पद्ये विनिबद्धं नाटकम्। यत्र बाणः कुमारसंभवच्छायामनुसरति। मन्येऽयं तैलङ्गीयो वामनभट्टबाणः। यो हि नवैः पदार्थैरभिनवां कथामाविष्करोति, उत्पादयति वा, विश्वामित्र-वत् नूतनां सृष्टिं करोति, शरभमृगमनुकरोति उत्पादने, यश्च काव्ये मौलिकता-नवीनतावादी, स कथं कविकुलगुरुमपि अनुकुर्यात्! नोच्छिष्टभोजी अयं सदा पुरोडाशपवित्रिताधरान्वयः सोमापायिवंशेऽभिजातः वत्सान्वयजलधिकौस्तुभः।

५ पञ्चमं तावत् मुकुटताडितकम्। नेदमुपलब्धम्। मन्ये एतल्लेखकः कश्चनान्यो बाणपदवीकः। अस्तु।

यथा राम-चरित-मानसकवितुलसी स्वसमये प्रथितकाव्यवर्त्मनां समन्वयं स्वद्वादशकाव्येषु कृत्वा लोकनायकोपाधिं साहित्य-जगति लेभे, तथैवायं बाणो मुक्तकादिचतुर्विध (अग्रवालसम्मतौ त्रिविध) काव्यपद्धतीनां स्वकाव्ये समन्वयं कृत्वा मन्ये, गद्य-नायकः गद्य-सार्वभौमो गद्यगुरुर्गद्य-प्रतिनिधिर्वा कथितः।

परन्तु "उत्तरे रामचरिते यथा भवभूतिर्विशिष्यते तथैवायं गद्यकेसरी

उत्कलिकायां पद्धतौ विशिष्यते। कालिदासः कविकुलगुरुः पद्ये, गद्ये तु बाणो हि विशिष्यते। यद्यपि शाकुन्तले कालिदासस्य गद्यं मनोहरं प्रसन्नं च ।

यच्च गद्यस्य जीवितम् "ओजः समासभूयस्त्वम्", तदत्र बाहुल्येन स्थापितम्। श्लेष-कविरयं सुबन्धुप्रभावितः। तथा च हर्ष-चरितमङ्गल-श्लोके तदाख्यायिकां प्रशंसति, "कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया"। फलतः तदुद्भावित-प्रत्यक्षरश्लेषवर्त्मसमर्थनं कुर्वन् कादम्बर्यां वक्ति—

"निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयः
महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।"

अतोऽयं कविः श्लिष्टशब्दरूपचम्पकपुष्पैःपाञ्चालीरीत्या उत्कलिकाप्रायपद्धत्या च महास्रजं विष्णोः पवित्रां पावनीं च वनमालां निर्माति। यस्मै स्पृहयति तथाविधं सम्पादयति।

सामान्यतस्तु अयं तत्कालप्रचलितगद्यशैलीनां समन्वयवादिकविरासीत्। तथा चास्योद्गारेण लक्ष्यते—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।"

एतच्च दुष्करं कर्म कविताकामिन्याः पञ्चबाणेन बाणेन कृतमिति सत्यं लोकनायक-तुलसीवत् बाणो गद्यनायको गद्य-प्रतिनिधिर्वा।

स्थानाभावात् विस्तृतमुद्धरणं नैव दातुं शक्यते। परन्तु स्थालीपुलाक-न्यायेन दिग्दर्शनमावश्यकम् :—

कादम्बर्यां जानकीसम्वर्धितजीर्णमृगस्य वर्णनमतीव मनोहरं प्रतिभाति। "अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्पकवलमजस्रमश्रुजलप्लुलितदीनदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्ज्जरितविषाणकोटयो जानकीसम्वर्द्धिता जीर्णमृगाः"

यथा राज्ये सारं वसुधा वसुधायां सौधं सौधे तल्पं तल्पे वाराङ्गनाङ्ग सर्वस्वमिति, तथैव "काव्ये सारं गद्यं, गद्ये सारः बाणः, बाणस्य सारः कादम्बरी, कादम्बर्याञ्च नायिकोपनायिकायाः वर्णनं सारस्वरूपम्।

यथा, कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलं,
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्करतत्र श्लोकचतुष्टयम्।"

यथा वा, "व्यासदेवस्य सर्वस्वं श्रीमद्भागवतं प्रभो
तत्रापि प्रार्थना भागो गोपीगीतं ततोऽधिकम्।

तथैव "बाणभट्टस्य सर्वस्वं कादम्बरीकथाभिधम्।
तत्रापि शुकनासस्य उपदेशो हि उत्तमः।
तत्र वाक्यचतुष्टयमुपरिष्टाद्धि वक्ष्यते।

इमे प्रसङ्गाः साधुध्वनिभिः पदे पदे मनोहरन्ति, मन्ये, मणिनूपुरा इव।

१ अपगते मले हि मनसि विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

२ अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य।

३ गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणमखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्।

४ आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।

मौलिकतायां, नवीनतायां नवोद्भावनायाञ्च कालिदासपार्श्वस्थो हि बाणः।

गद्ये तु बाणः कवि-कुल-गुरुमपि अतिक्रामति। कालिदासो यदि पद्यकाव्याचार्यस्तदा बाणः गद्यकाव्याचार्य इति उभावपि अनन्तौ, उभावपि महान्तौ, उभावपि सरस्वत्या वरपुत्रौ, उभावपि मान्यौ श्रद्धेयौ पूज्यौ च। उपमायां कालिदासस्य प्रतिभा प्रथिता, परन्तु शुकनासोपदेशे उपमायाः या नवोद्भावना बाणेन कृता तया प्रतीयते यत् बाणोऽपि उपमाया नास्ति अनुपमश्चेत् तत्समोऽवश्यमेव।

यथा महाभारते भगवद्गीतायाः वैशिष्ट्यं महत्त्वञ्च तथैव कादम्बर्यां शुकनासोपदेशस्य। अर्थात् शुकनासोपदेशः कादम्बर्या बाणस्य वा गीता इति। अथवा शुकगीताशब्देन कथयितुं शक्यते। किंवा पिपासितस्य बाणशय्यायां शयानस्य तृप्त्यै अर्जुनबाण-प्रेरिता बाणगङ्गा प्रादुरभूत्। तथैव जीवनस्य पाथेयोऽयमुपदेशः जीवनदर्शनं वाऽचारशास्त्रं वा, व्यवहारशास्त्रं वा, सर्वं विशेषणमस्मिन् सम्भाव्यते। जीवनगहनवनपथदर्शकोऽयम् कादम्बर्याः साररूपममृतं वा।

अस्यां बाणगङ्गायां स्नातानुलिप्तो जनः शान्तो दान्तो स्थितप्रज्ञश्च भवति। अस्या बाणगीतायाः पाठकः अर्जुन इव कर्त्तव्यमार्गे आरूढो भवति। तैल-पात्रमिवामपात्रमिव चात्मानं सावधानेन मनसा धारयति।

आलोचकाः कथयन्ति यत् बाणकादम्बरीकथा गुणाढ्यबृहत्कथाप्रभाविता, उभयोः पात्राणां साम्यात्, यन्नैवं, तन्नैवं यथा हर्षचरितमिति। भवतु नाम। का हानिः?

रामचरितमानसकविनापि नानापुराणनिगमागमसमुद्रमन्थनं कृत्वा रामायणमहामालारत्नमाविष्कृतम्। किंवा रामचरितामृतमुद्धृतम्। तद्धि भाषायां मौलिकमद्वितीयं काव्यमस्ति।

किंवा हिन्दीनवरत्नेषु अन्यतमो विहारी आर्यासप्तशतीमनुकृत्यैव विहारी सतसईनाम्ना प्रसिद्धां सप्तशतीं रचितवान् । तथापि तस्य हिन्दीकविरत्नत्वम-व्याहतं । तथैवास्य कल्पनाकल्पपादपस्य बाणस्यापि कविचक्रवर्तित्वं, गद्य गुरुत्वञ्चाव्याहतमिति आस्तां तावत् ।

कादम्बरीकथायान्तु सर्वासां पूर्वप्रचलितगद्यशैलीनां समन्वितं रूपं गद्य-प्रतिनिधिना समन्वयवादिना बाणेन स्थापितम् ।

अधुना कतिचिदुदाहरणानि उपस्थाप्यन्ते, यैर्बाणस्य वर्णनादिविषये वैशिष्ट्यमनुभूयते । यत्र विन्ध्यवनभयंकरता एव गद्यगुरोवर्ण्यविषयस्तत्रत्य वाक्यनिर्माणप्रकारो भिन्न एव । "शबरसेनापतिभिः अभिहन्यमानकेसरि शता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च।" जरदन्धतापसवर्णनें कीदृशी शब्दयोजना, इत्यपि द्रष्टव्यम् "परिचितशाखा-मृगकराकृष्टयष्टिनिष्कास्यमानप्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्" ।

रशनोपमायाः सौन्दर्यमपि अतीव मनोहारी । यथा "कृतं च मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकरेण इव मदेन नवयौवनेन पदम्" ।

एवं कविः कुत्रापि दीर्घसमासप्रधानया उत्कलिकापद्धत्या, कुत्रापि अल्प समासप्रधानचूर्णकवृत्त्या, कुत्रापि समासरहितमुक्तकरीत्या त्रेधा भ्रमति ।

पूर्णोपमोत्प्रेक्षारूपकपरिसंख्याविरोधाभासाः—इत्यलङ्कारपञ्चकं बाणकृत रूपनिरूपणे वर्णने वा प्रायः समुपलभ्यते ।

समासरहितवाक्योदाहरणं यथा "यस्य च परलोकाद् भयम्, अन्तः पुरिकालकेषु भंगः । नूपुरेषु मुखरता" । समान्यतः कविर्वर्णनादौ उत्कलिका-

माश्रयति । वर्णनान्ते आविद्धवृत्तिमनुसरति । अथ चोपदेशप्रदानप्रसङ्गे चूर्णक पद्धतिमनुगच्छति ।

सोऽयं गद्य-प्रतिनिधिः समन्वयवादिबाणः उत्कृष्टगद्यस्य यल्लक्षणं चकार "उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानामिनवार्थसंचयमिति"। तस्मिन् लक्षणनिकषे कविपञ्चाननस्य काव्यद्वयं विशुद्धमिति निश्चितम् ।

एवं प्रकारेण रुचिर-स्वरवर्णपदा रसभाववती वाणी बाणस्य संक्षेपतो वर्णिता ।अधुना कविताकामिन्याः पञ्चबाणस्य बाणस्याभिव्यक्तिक्षमतायाः सर्वोत्तम-मुदाहरणमुपस्थाप्यते, यत् बाण-काव्य-मन्थनानन्तरमुपलब्धम् ।

राजमहिषी यशोमती राजतपात्रात् जलमादाय मुखकमलं प्रक्षालयति । एतच्चित्रणसौन्दर्यं, मन्ये, बाण-काव्ये सर्वातिशायि वर्त्तते । तथा चः—

"मग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखालांछितलावण्यकुञ्जिकावर्जितराजतराजहंसास्य - समुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलम्" (हर्ष च. १६६)। बाणका-व्ययोरभिव्यक्तिक्षमतायाः सर्वोत्तममुदाहरणं पञ्चार्थप्रतिपादकं सप्तदशपदस-मासान्वितमिदमतीव मनोहारि अस्ति ।

किञ्चार्थत्रयप्रतिपादकं "दिङ्नागकुम्भकूटविकटबाहुशिखरमिति" वर्णनमपि अतितरां मर्मस्पर्शि प्रतीयते ।

ईदृशं रूपनिरूपणं दीर्घ-रूपकसौन्दर्यञ्च महाकवितुलसीदासस्य राम-चरितमानसे 'मानस-रूपके' ज्ञानदीपके च मिलति ।

बाणस्य रूपटंकन-कौशलमजन्ताचित्रणकलामपि तिरस्करोति । तस्या-भिनवार्थाभिव्यञ्जकस्य कविशरभस्य कारयित्री प्रतिभा । ततप्रसूता कादम्बरीकथा

हर्षाख्यायिका च संस्कृतस्यार्यसंस्कृतेः किंवा गुप्तसंस्कृतेः निधी स्तः । निधिपो हि बाणः ।

उपनयनकाले माणवकोऽग्निं स्तौति—

"यथा त्वमग्ने देवेषु तत्तस्य निधिपा असि ।
एवमहं मनुष्येषु वेदस्य निधिपो भूयासम् ।"

एवं प्रकारेण विचारे कृते सति ज्ञायते यत् वस्तुतः बाणो हि आर्यसभ्यतायाः संस्कृतेश्च निधिपो रक्षक आसीत् । संस्कृतिर्हि अस्माकं निधिः शेवधिर्वा । अस्य संरक्षणं काव्यद्वयमाध्यमेन बाणश्चकार इति स महाकविरस्माकमात्मा एवासीत् । अस्य वत्सवंशजलधिकौस्तुभस्य काव्यद्वयं गुप्तसंस्कृतेः स्वर्ण-युगस्य रत्न कोष इति । किंवाऽप्रवाहानुसारममृतस्रोतोऽमृतस्य कुल्या वा ।

किंवा बाण-काव्यं भारतीयजीवनस्य चलचित्रं चित्राधारो (अलबम) वा । यस्मिन् काव्यद्वये प्रतिक्षणं नूतनचित्रस्य दर्शनमिति । वर्णनकविना बाणेन चित्रितममरचित्रं माघवर्णितरैवतक इव क्षणे क्षणे मनो हरति नवताञ्चोपैति । सुतराममरकविर्हि बाणस्तत्काव्यद्वयञ्चामृतमार्यजीवनस्य चामरता-प्रदमिति ।

कविकर्मणि कुशलो हि बाणः सैनिकप्रयाणं सप्तसप्ततिसमस्तशब्दैर्वर्णयति । अनेन वर्णनेनैवानुमेयं यत् कीदृग् वर्णननैपुण्यं शब्दसम्पत्तिर्वा तस्यासीत् ।

आढ्यराजस्य श्रीहर्षवर्धनस्य पाण्डित्येनायं महाकविरतिशयेन प्रभावितः, फलतस्तत्स्मरणं कुर्वतोऽस्य कल्पना कुण्ठिता भवति इति हर्षचरितस्य प्रारम्भे

एव स्वोद्गारः प्रकाशितः ।

हर्षचरितमङ्गलश्लोकेषु पूर्ववर्त्तिकवीन् प्रति बाणेन या हि भक्ति-भावना श्रद्धा प्रदर्शिता तयाऽस्य विदुषः सहृदयता, भावुकता, गुणज्ञता कृतज्ञता च ध्वन्यते ।

हर्षचरिते ग्रीष्मर्तोः वर्णनं कादम्बर्याञ्च नायिकोपनायिकयोर्वर्णनं बाणस्य एकाश्मकप्रस्तरे चित्रणनैपुण्यं सूचयति ।

किञ्चाल्पीयसि जल्पिते बाणः खलत्वमनुभवति । अतो हि वर्णने बहु वक्ति । व्यास-पद्धति-प्रियो हि बाणो वर्णने समास-पद्धति-प्रियं कविकुलगुरुमपि अतिक्रामति । दीर्घ-समास-विधाने उत्कलिकायां वा बाणोऽद्वितीय इति निर्विवादम् ।

हर्षचरिते बाणस्य विम्बग्रहणक्षमायाः प्रतिभायाः रेखा-चित्रम् । कादम्बर्याञ्च तदनुरञ्जितमिति मन्ये । अत्र रसस्य द्राक्षापाकः । अत्र वीणावादकस्य सरस-चित्रम् अजन्ताचित्राणाञ्च शब्दचित्रमुपलभ्यते ।

अस्मिन् प्रसङ्गे महान् विचारकः श्री अग्रवालः कथयति यत् "गुप्त-संस्कृति-क्षीर-समुद्रमन्थनान्निःसारितामृतकलशी हि कादम्बरीकथेति । भारतीय-संस्कृतेश्चित्रमयी पुस्तिका वा" ।

सुबन्धु-काव्ये प्रत्यक्षरश्लेषपद्धत्या विकासश्चेत्, वश्यवाणीकबाणकाव्ये तस्याः परिपाक इति मन्ये ।

कुत्रापि श्लेषमयं गद्यं, कुत्रापि अर्थमात्रकम्, कुत्रापि उत्प्रेक्षा मूलकम्, कुत्रापि चित्रमयं, बाणकाव्यन्तु सर्वमयमिति । "बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ।"

अस्य सर्वप्रधानं सर्वशैलीसमन्वितं गद्यं पूर्वोत्तरगद्यकाव्यस्य मापकमस्ति यच्च मानदण्ड इव स्थितो हिमवानिव च स्थायि विद्यते।

अधुना एका तालिका उपस्थाप्यते यया सूत्ररूपेण एतदवगतं स्यात यत् कस्मिन् कस्मिन् क्षेत्रे बाणस्यापूर्वता समुपलभ्यते। बाणस्य वैशिष्ट्यं किम् ? तद्व्यक्तित्वस्य कवित्वस्य च परिचायकं किम् ?

बाणः

१ कल्पना-कल्प-पादपः,

२ महान् कुतूहली,

३ देश-दर्शन-लालसः, भ्रमणपरायणः,

४ आत्मगौरवी,

५ विलासी, ६ काव्येऽभिनवार्थदर्शनलालसः

१ हर्षचरिते ग्रीष्मवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, प्रकृतिचित्रणम्।

२ वर्णनकवेरुत्कलिका पद्धतिः।

३ विम्बग्रहणक्षमा प्रतिभा, एकाश्मकप्रस्तरे अजन्ताचित्रटंकनम्। अजन्ताचित्रकलायां यत् तदत्र काव्यकलामाध्यमेन उट्टंकितं गद्याचार्येण वश्यवाणीककविचक्रवर्त्तिना।

४ पूर्ववर्त्तिगद्यकविसुबन्धुशैलीसमन्वयकविः गद्यप्रतिनिधिः।

५ चाण्डालकन्यका-विन्ध्याटवी-पम्पासरः जावाल्याश्रम-शबरसेनापति-जावाल्युज्जयिनी-राजकुला-च्छोदसरोः-महाश्वेता-कादम्बरी-पत्रलेखा-हिमगृह-वर्णनम्।

६ शुकनासोपदेशः बाणगीता बाणगङ्गा वा यस्य नामान्तरम्। यस्मिन्नपूर्वं जीवनदर्शनम्।

७ गुप्तकाल-स्वर्ण-युग-चित्रणम्।

८ सर्ववृत्तान्तगामिनी जगत्त्रयव्यापिनी कथा ।

९ संस्कृतस्यापूर्व उपन्यासः ।

१० चन्द्रापीडं प्रति कादम्बर्याः अन्तिमः सन्देशः, रामचरितमानसस्य लक्ष्मणगीतारामगीतावत् श्रीभागवतस्य गोपीगीतमिव च मर्मस्पर्शी ।

११ उत्तमामरगद्यनिकषे कषिते बाणगद्यस्य विशुद्धता सुवर्णता च ।

१२ स्वभावोक्तिपद्धतिविरोधिबाणः ।

१३ वाणस्तु सर्वेश्वरः कविताकामिनीपञ्चबाणः ।

१४ बाणगद्यं मानदण्ड इव

१५ रूपकोत्प्रेक्षोपमाविरोधाभासपरिसंख्यालंकाराणां प्राचुर्यं बाणकाव्ये ।

(एते पञ्चसंकाराः पञ्च प्राणाः बाणवर्णनविग्रहस्थाः)

अधुना एतत् प्रतिपादनीयं यत् बाणः स्वभावोक्तिपद्धतिविरोधी आसीत् । अभिनवार्थञ्च काव्ये अभिनन्दयति ।

१ नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः । [काद.]

२ उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव [ह. च.]

३ नवोऽर्थो जातिरग्राम्या [ह. च.]

४ उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यमानानेकाभिनवार्थ संचयम् । [काद.]

५ कथा जनस्याभिनवा—वधूरिव ।

६ हर्षगृहादागतः बन्धून् पृच्छति—गृहे "कच्चित्त एवाभिनवसुभाषित सुधावर्षिणः काव्यालापाः" ?

उपर्युक्तरेखाङ्कितपदानि सूचयन्ति यत् बाणो हि काव्ये अभिनवार्थवादी

आसीत्। स्वभावोक्तिपद्धति र्हि तस्मै नैव रोचते स्म।

१ जानकीसम्वर्धिता जीर्णमृगाः [विन्ध्याटवीवर्णने]

२ गिरितनयेव स्थाणुसंगताः [,, ,,]

३ यत्र महाभारते शकुनिवधः [जा. आ. वर्णने]

४ परिचितशाखामृगकराकृष्ट [,, ,,]

५ यदेतदारब्धं भवता [कपिञ्जलद्वारा पुण्डरीकभर्त्सना]

६ अति प्रियोऽसीति पौनरु० [कादम्बर्याश्चन्द्रापीडं प्रति अन्तिमः सन्देशः]

७ स्तनयुगलमश्रुस्नातम् [शुकपठिता आर्या]

८ दूरं मुक्तालतया विस० [,,]

महाभारतस्य सारः श्रीमद्भगवद्गीता। तथैव कादम्बर्याः सारः शुकनासोपदेशः। यथा भगवद्गीतायाः सारः "कर्मण्येवाधिकारस्ते" "सर्वधर्मान् परित्यज्य" वा तथैव शुकनासोपदेशस्य सारः अधस्तान्निरूपितः बाणगीता शीर्षके पृष्ठे। अस्तु।

उपरि प्रतिपादितं यत् बाणवर्णनायाः द्राक्षापाकः कादम्बर्यामस्ति। चित्रग्रहणक्षमायाः बाणप्रतिभायाः वर्णने वर्णनातीतं साफल्यमनुपदमनुभूयते। कादम्बरीपात्राणि दैवीं सम्पदमुपेतानि आर्यभावपुरस्कृतानि शौर्यवीर्य दयादाक्षिण्यभूषितानि च सन्ति। तथा च तारापीडः उदारतायाः प्रतिमूर्तिरस्ति। तत्पुत्रश्चन्द्रापीडः सौम्यतायाः, शुकनासः प्रवीणतायाः, विलासवती सुकुमारतायाः, पत्रलेखा तत्परतायाः, कपिञ्जलः स्निग्धतायाः, महाश्वेता तपस्यायाः पवित्रतायाश्च, कादम्बरी च धीरतायाः मधुरतायाश्चेति।

अधस्तान्निरूपितं यत् बाणो हि वर्णने व्यास इव। यथा श्रीहर्षः अल्पीयसि जल्पिते खलत्वं मन्यते, तथाऽयमपि व्यासपद्धतौ, हिन्द्यां यथा देवकविः प्रसिद्धस्तथा संस्कृतेऽयं वर्णनव्यासो बाणोऽपि। अयं कविकुलगुरुकालिदासवत् भाषाकविविहारीवद्वा समासपद्धतिं नैवानुमनुते। घटे सागरं नैवायं स्थापयति।

पद्ये कालिदासो विशिष्यते, गद्ये तु बाण एव। यथा शृंगारे कालिदासः, करुणे तु भवभूतिरेव, यथा वा सम्पूर्णजीवनचित्रणे मानसकविः तुलसी, बाल्यवर्णने तु सूर एव, तथैव भवतु नाम उपमायां कालिदासो वर्णने तु बाण एवेति। सुतरामित्थं कथयितुं शक्यते यत्—"बाणस्य प्राणाः वर्णनान्येव। प्राणाः पञ्च। तथैवास्य कादम्बर्यां पञ्च वर्णनानि सर्वोत्तमानि। इन्द्रायुधाश्ववर्णनोपलक्ष्ये बाणस्तु "तुरङ्गबाणोऽपि उद्घोषितः।

वर्णनव्यासो हि बाणः परिहासप्रियोऽपि। तथा च कादम्बर्यां वृद्ध-देवलचित्रणे हास्यजनकं वर्णनं चकार।

अस्य वर्णनकवेःकथाप्रवाहे रसप्रवाहे वा कुत्रापि शैथिल्यं नानुभूयते। चन्द्रापीडमहाश्वेताकादम्बरीमिलने शैथिल्याभासमनुभूय कविश्चातुर्येण शुकसारिका-कलहं समुपस्थापयति इति कादम्बरीकाव्यं—

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

गुप्तकालिकस्वर्णयुगहीरकस्य स्वनामधन्यस्य विदुषां हर्षवर्धनस्य विद्या-व्यसनिनः सत्यसंधस्य हर्षवर्धनस्याविर्भावसमयः सप्तमशतकस्य पूर्वभाग (ह. ६०६ ६४८ई०)इति। सुतरामस्य तद्राजसभाकवेः राज-पण्डितस्यापि स एव समय इति।

बाणो हर्षसभापण्डित आसीदित्यत्र हर्षचरितमेव प्रमाणम्। किञ्च सहृदयो विदग्धश्च राजशेखरः कथयति---

"अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातङ्गदिवाकरः
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः.।

अपरञ्च "हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां।
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् ?"

(राजशेखरः)

किञ्च बाणस्य हर्षसभाकवित्वमवन्तीसुन्दरीकथाकारोऽपि स्वीकरोति।

तथा च—

गी र्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा
सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः।"

एभिः प्रमाणैर्हर्षवर्धनकालेको महाकविर्बाणः सप्तमशतकस्य पूर्वार्धे अविरासीदिति ज्ञायते।

एवं प्रकारेण वत्सवंशावतंसस्य व्यक्तित्वविषये विशेषतः वर्णनं कृत्वा तस्य कवित्वादिविषयेऽपि सामान्यतः किञ्चिन्निवेदितं वाग्जन्मनः साफल्यायेति विदुषां पुरतः पल्लवितेनालम्।

"बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती
चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभम्।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूति
वंशाश्रयं हर्ष-चरित्रमेव।"

ओउम् शान्तिः ३

महाकविबाणभट्टः,

एकमध्ययनम् ।

"यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः, कर्णपूरो मयूरो,
भासो हासः, कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो, हृदयवसतिः पञ्चबाणश्च बाणः
केषां न स्यात् कथय ! कविता-कामिनी कौतुकाय" ॥

इत्येवं प्रसन्नराघवे मैथिलेन जयदेवेन यस्य महामहिमत्वमाम्नातचरम्; तस्यैव महाकवेर्भट्टबाणस्य संबन्धेऽपेक्षितमनुसन्धानमद्यावधि नैव जातमित्यहो दैव-दुर्विलसितम् !

महाकविरयं कदा जातः ? कुत्र वा प्रदेशे जन्म लेभे ? काश्च रचनाः वस्तुतो बाणभट्टस्य ? इत्येवंविधानामनेकेषां प्रश्नानां समाधानमद्यापि नैव विहितचरमनुशीलनप्रियाणां सहृदयहृदयानामावर्जनक्षमम् !

कादम्बरी कथा, हर्षचरितं नामाख्यायिकेति ग्रन्थद्वितयं प्राधान्येन महाकवेः परिचयं प्राचुर्येण प्रस्तौति । तत्र च, हर्षचरितस्य प्रथमे उच्छ्वासे सविस्तरं वंशवृक्षः प्रदर्शितो वर्त्तते, यदनुसारं च सरस्वतीदधीचयोरात्मजस्य सारस्वताख्यस्य पितृव्यपुत्रो वत्सो नाम वंशप्रवर्त्तकोऽभूत्, यतो हि प्रवृत्तं वात्स्यायनकुलम् । तथैव च वात्स्यायनकुले कदाचिद् जातः कुबेरो नाम यो हि 'कादम्बर्याम्' (स्थाने-स्थाने)-"अनेकगुप्तार्चितपादपंकज" इत्येवमस्ति संस्तुतः ।

कुबेरस्यास्य चतुर्षु पुत्रेष्वन्यतमस्य पाशुपतेस्तनूजस्यार्थपतेरेकादशसु पुत्रेष्वन्यतमस्य चित्रभानोर्गृहे राजदेवीकुक्षौ समुदपद्यतायं महाकविः ।

परमेतदपि चित्रमेव यदेनकेन महाकविना चत्वारः श्लोकाः स्वपरिचयप्रसंगे समुपन्यस्ताः, येषु च प्रपितामहः पाशुपतनाम्ना निर्दिष्टः । कुबेरसूनोः पाशुपतस्य कादम्बर्यां' वानुपलब्धिः, सा किं कृतेत्यपि नाद्यावधि साधु समाहितम् । महामहोपाध्यायः पाण्डुरंगो वामनः काणे समाधत्ते यत् 'कादम्बर्यां' महाकविना रचितः श्लोक एको नष्टो तत्र पाशुपतस्य चर्चा कृताऽभूदिति प्रायः संभाव्यते । क्वापि-हस्तलेखे तादृशश्लोकादर्शनेन प्रारंभिके काले एव श्लोकः स विनष्ट' इति प्राध्यापकस्य एस्० वी० दीक्षितस्य मतिः । "द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया" इति तत्रैवात्मनः संबन्धे निर्देशेन महाकविना बाणेन बाल्ये एव कादम्बरींकथाप्रणयनस्य संकेतीकरणेन बाल्यसुलभविस्मरणवशीभूतेन तेन पाशुपतो विस्मृत एव, नतु कोऽपि तद्विषयकः श्लोको विनष्ट इति मम प्रतिभाति । परमियं विचिकित्साद्याप्यचिकित्स्येव वर्त्तमाना किं न दुनोति मानसं सहृदयधुरीणानां महाकविपरिचियनव्यसनिनाम् ?

अभिजनस्थानमप्यद्यापि सन्दिग्धम् !

महाकवेरस्य बाणस्याभिजनस्थानमप्यद्यापि सन्दिग्धमित्यपरो दैवदुर्विपाकः । महाकवेर्हर्षचरितस्याध्ययनेनेदं ज्ञायते यद् बाणकुलबीजीपुरुषो वत्सो न्यवसद् हिरण्यबाहुतटस्थिते ब्राह्मणाधिवासे प्रीतिकूटे । हिरण्यबाहुरयं शोणनद एवेत्यैतिहासिकाः । एतस्य पश्चिमे तटे प्रीतिकूट आसीदिति हर्षचरितानुसारी पन्थाः ।

इदमप्यतीवाश्चर्यकरं यन्महाकविना स्वयमेव हर्षचरिते "शोणभद्राधिवासोऽस्मी"ति राज्ञे हर्षायात्मनः परिचयोऽस्ति दत्तः। तत्रैव च "महतश्च कालात् तमेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रममात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमदि"ति ब्रुवता बाणेन शोणभद्रनामकस्य ब्राह्मणाधिवासभूतस्य ग्रामस्यात्मनो जन्मभूमिताऽस्ति सुस्पष्टमुट्टङ्किता। परम् प्रीतिकूटापरनामधेयस्यास्य ग्रामस्य संबन्धेऽपि दृश्यते विमतिः। प्रीतिकूटोऽयं हिरण्यबाहुनाम्नो नदस्य पश्चिमे तटे आसीदिति प्राध्यापक एस्. वी० दीक्षितप्रभृतयः। 'आरा'मण्डान्तःपाती 'पेउर'नामको ग्राम एव प्रीतिकूट इति केचन। गयामण्डलान्तःपाती "पीरू" ग्राम एव 'प्रीतिकूट' इत्यपरे। च्यवनाश्रमस्य नातिदूरे शोणनदस्य पश्चिमे तटे सरस्वत्या आश्रम एव प्रीतिकूट इत्यपि कस्यचिन्मतम्।

शोणभद्रस्यास्य विषये हर्षचरिते यावानस्ति परिचयो दत्तस्तावता हालिकेनापि शक्यते स्थाननिर्धारणम्। परं पूर्वाग्रहग्रहाविष्टचेतसां सचेतसां शेमुषी नाद्यापि समर्था निश्चप्रचीकर्त्तुम्। उपेक्षितश्चाद्यापि महाकविः स्वजन्मभूमौ। विदुषां विवेचनीये विषयेऽप्यविदुषां कोलाहलो जायमानस्तनोति बुद्धिभेदं विवेचनपटूनाम् इत्यहो उत्पातपरम्परा।

दुर्वाससा शप्ता सरस्वती सख्या सावित्र्या मृत्युलोकमागता। हिरण्यबाहुपर-पर्यायस्य शोणनदस्य "पूर्वतटे समवातरत्" इत्यत्र नास्ति कस्यापि विमतिः।

गयामण्डलान्तःपातिनः पीरू-प्रीतिपुरनामकस्य ग्रामस्य परितोऽद्यापि वत्सगोत्रीयाः ब्राह्मणाः प्राचुर्येणोपलभ्यन्ते। ये च पम्महेकयालगढ़ीयत्वेन नोनारगढ़ीयत्वेन वा स्वान् विवृण्वते, येषु नोनारगढ़ीया मयूरभट्टस्य वंशजा इत्यनुश्रुतिरद्यापि विश्रुता। परिसरे चात्र सहस्रशः शोणभद्रीयाः सोनभदरिया इति नामधेयवन्तो ब्राह्मणा-उपलभ्यन्ते। नोनारगढ़ीयाश्चात्मनामसु भट्टेतिजातिसूचकमुपाधिं पुरतो निधाय भट्टामुकसिंह इति नामाद्यापि कीर्तयन्ति। प्रसिद्धे च सवितुः प्रतिष्ठाने देवाख्ये

तन्निकटस्थे मुंगाभिधे ग्रामे मयूरभट्टस्यापि पूजाऽऽचर्यत एवेत्यपि मया श्रुतम् । च्यवनाश्रमस्थस्य मन्दिरस्य पूजाकारी चाद्यापि प्रीतिपुरवारतव्यानां वत्सगोत्रीयब्राह्मणानां मध्यत एव भवतीत्यपि निर्विवादम् । कयाल्गढ़पतिः पुरा बहादुरशाहेन मारित इति तत्परिवारस्य कतिपये जना यवनधर्ममपि स्वीकृतवन्तः इत्यस्त्यैतिहासिकं तथ्यम् । तच्च तत्रस्थपम्महे-यवनैः पठान इति जात्या प्रसिद्धैरपि सहर्षमनुज्ञायत एव । एवंस्थितेऽपि पीरू-प्रीतिपुरग्रामे नाद्यावधि बाणस्यास्य स्थापितं वा निर्मितं वा निर्मीयमाणं वा स्मारकमिति किं न दुनोति मानसं संस्कृतसाहित्यपरिशीलनव्यसनिनाम् ?

योऽसौ बाणो भुजंगत्वेन पूर्वं परिगृहीतोऽपि सम्राजा हर्षवर्धनेन कान्यकुब्जाधिपतिना "स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विश्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमनीयत" स एवाष्टादशसु वर्षेषु स्वातन्त्र्यसार्वभौमताधिगतेरतीतेषु च विहारसरकारेणापि विस्मृतचर एवेति किमस्ति सन्तोषावहम् ?

महाकवेरस्य कालोऽप्यनिर्धारित एव

उदयसुन्दरीकथायाम् महाकविना सोड्ढलेन यत्संबन्धे सगर्वमिदमुपश्लोकितं यत्—

"श्रीहर्ष इत्यवनिवर्त्तिषु पार्थिवेषु
नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा
संपूजितः कनककोटिशतेन बाणः ॥

तस्यैवास्य महाकवेर्भट्टबाणस्य कालोऽप्यनिर्धारित एवाद्यापि । तस्यैवास्य

कृतेर्हर्षचरितस्यानुसारमेव श्रीहर्षसमसामयिकत्वेन परिकल्प्यते सुधीभिः। परम् इदमपि सर्वथाऽश्चर्यकरं यत् हर्षचरिते हर्षस्य राज्यकाले भारतं परिभ्रमतश्चीनदेशीय यात्रिणो ह्वेन-त्सांगनामकस्य यात्रावृत्तान्तवर्णने च महदन्तरं विलोक्यते वस्तुतस्त्वीयम्। हर्षचरितीये चतुर्थे उच्छ्वासे सम्राजो हर्षवर्धनस्य जन्मतिथिः ज्येष्ठकृष्णा द्वादशी। नक्षत्रं कृत्तिकाभिधम्। समयः प्रदोषः। सर्वे च ग्रहा उच्चस्थानस्थिताः। तत्र वर्षसंख्यासंकेतः। परं चीनदेशीयप्रमाणानुसारं कान्यकुब्जेश्वरो हो-ली चा-फा तन्ना नाम सम्राट् ५९० तमख्रीष्टाब्दीयजूनमासस्य चतुर्थे दिवसे उत्पन्न आसीत्। बाणस्य हर्षः स्थाण्वीश्वराधिपतिः क्षत्रियजातिः। ह्वेन्त्सांगस्य च हर्षवर्धनो वैश्यः कान्यकुब्जेश्वरः! हर्षप्रवर्त्तितो नवो वर्षो मथुरायां कान्यकुब्जे च प्रचलित आसीदिति प्रसिद्धः पाश्चात्य ऐतिहासिकः अल्बेरुनी नाम। यद्भवतु, ६१२तमख्रिस्ताब्दत आरभ्य ३५ वर्षाणि व्याप्य उत्तरभारतक्षेत्रपालकस्यास्य हर्षस्य समसामयिको वा, संमानभाजनं वा महान्कविरयं न क्वापि निर्दिष्टो दृश्यते ह्वेन-त्सांगयात्रिणा! नाप्येतस्य तत्रभवतो महाकवेर्भट्टबाणस्य श्यालको वा भट्टमयूरो मेरुतुंगाचार्य्यसंभावितो मधुसूदन-मानतुंगाचार्यमतेन श्वशुर एव वा क्वापि स्मरति समसामयिकं सम्राजं हर्षवर्धनम्!

यस्य विषये महाकविना भट्टबाणेन स्वीये हर्षचरिते एव—

दर्पं कविभुजंगानां गता श्रवणगोचरम्।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ्निकृन्तति।

इतिरूपेण प्रशंसावाक् प्रस्तुता, सोऽयं मयूरो न नाम नाम्ना निर्दिशति क्वापि सम्राजं हर्षवर्धनम् इत्यहो दैवदुर्विपाकः!

"भूपालाः शशिभास्करान्वयभुवः के नाम नासादिताः
भर्त्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव! मन्यामहे।
येनाङ्गं परिमृद्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्यायतं
चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना कांच्यां करः पातितः॥"

इत्येवं शृङ्गारसागरमुखेन वीरव्यतिकरोऽपि बहु वर्णितः। सोऽयं 'भुवो भर्त्ता' देवः किं नामधेय इत्यपि न शक्यते साधु सन्धातुम !

"गतप्राया रात्रिः कृशतनु ! शशी शीर्यत इव !
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव ॥
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधम्"—

इत्येवमपूर्णमुपश्लोकिते बाणेन मनिनीमानव्यतिकरे द्वारि स्थितेन मयूरेण मायूरी वाक्—

"अहो ! कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम् !!"

इति सहसा प्रसृतेति किंवदन्ती भट्ट-बाण-भट्ट-मयूरयोः समसामयिकत्वं सुस्पष्टयन्त्यपि संरक्षकीभूतस्य कवीनां हर्षवर्धनस्य नरेन्द्रहर्षवर्धनस्यानामनिर्देशमुपेक्षणं किं नाम न प्रवर्त्तते कस्यचिदपि विचिकित्सायै ?

"कर्णाटकपंचतन्त्र"प्रवर्त्तकेन कविना दुर्गसिंहेन योऽसौ भट्टबाणोऽवनिधव-चक्रवर्त्तिना नरेन्द्रप्रवरेण हर्षेण संजातहर्षेणैव वश्यवाणीकविचक्रवर्त्तीत्युपाधिना च सम्भूषित इत्युक्तचरस्तस्यैव नाम श्रीहर्षादिर्धावकादीनामिव धनम् इत्येवमुक्तवता काव्य-प्रकाशकारेण तत्र भवता मम्मटाचार्येण कथं विपरिवर्त्तितमित्यपि न शक्यते सूप-पादयितुम् !

"हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्,
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् ?
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्त्तय—
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम् !!"

इति काव्यप्रकाशटीकायां सारसमुच्चयाख्यायां परिलक्ष्यते पद्यम्। तदपि किं न प्रभूभवति मम्मटाचार्यकृतामुपेक्षां परिभावयितुम् ? यद्वा भवतु, महाकवेरस्य कालः प्रामाणिकरूपेणावशिष्यत एव निर्धारणायेत्यत्र न कस्यापि सचेतसो भवति विमतिः !

रचनाभिचयसम्बन्धेऽपि न नैश्चित्यम्

"सहर्षचरिताख्याद्भुतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ !!"

इत्येवं भावककविशेखरेण राजशेखरेण यस्यास्य भट्टबाणस्य वाण्याः स्वच्छन्द-चारिता विख्यापिता, तस्याः साकल्येन सनामनिर्देशं नैवाद्यपर्यन्तं विहितं केनापि सूचीनिर्माणम् ! खीस्तीयैकादशशताब्दीलब्धस्थितिकेन भोजदेवेन स्वीये सरस्वती-कण्ठाभरणे—

"यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः !"

इति यदसाधु मन्ये समाम्नातम्, तत्परम्पराद्याऽपि प्रसरतप्रायैव परिलक्ष्यत इत्यहो उत्पातपरंपरा ! श्रीचन्द्रदेवेन यस्य कवित्वं—

श्लेषे केचन, शब्दगुम्फविषये केचिद्, रसे चापरेऽ—
लंकारे कतिचित् सदर्थविषये, चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी—
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

इति स्थाने समाम्नातम् तस्यास्य भट्टबाणस्य सर्वा अपि कृतयो नाद्यापि निश्च-प्रचीकृता इत्यपि दुनोति मानसं सुमनसाम् !

हर्षचरितं नामाख्यायिका, कादम्बरी नाम कथा चेति द्वे गद्यकाव्ये भट्टबाणस्य सर्वप्रसिद्धे । परमेतेन महाविदुषा मुकुटताडितकं नाम नाटकमपि निर्मितं यत्र च भीमसेनद्वारा गदया दुर्योधनविताडितकमासीदभिनयीकृतम् ! शृङ्गारप्रकाशे भोज-देवेन, नलचम्पूव्याख्यात्रा चण्डपालेन चान्यैश्च कतिपयैर्विपश्चिद्भिः स्थाने-स्थाने समुद्धृतमेतदीयं सुश्लोकितम् नामशेषस्यास्य दृश्यकाव्यस्य माधुरीमास्वादनायोप लम्भयति ।

"आशाः प्रोषितदिग्गजा इव ! गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव !
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव ! भुवः प्रोत्खातशैला इव !

विभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्दैवस्य शून्याः सभाः !!

इत्येकमपि पद्यं मुकुटताडितकीयं सर्वथा समर्थं तस्य रूपकस्य स्थालीपुलाकन्यायेन वैशिष्ट्यविस्फोटने ।

सर्वचरितं नाम नाटकमपि भट्टबाणस्य कृतिरिति "कैटलस कैटलगनम्" नामके महासूचीप्रबन्धेऽस्ति प्रदत्ता सूचना ! नातः परं सम्प्रति कश्चित् तद्विषये समर्थो विवरणविस्तारणे !

पार्वतीपरिणयं नाम प्राप्ताखिलाङ्कनाटकमपि भट्टबाणस्य कृतिरिति विपश्चितां निश्चितिः । परमसौ भट्टबाणो मयूरसखो वा वामनभट्टबाणोऽभिनवबाणापरनामधेयो वेति सन्देहोऽद्यापि प्रसरत्येवेति धिक् कष्टम् !

"अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिसम्भवो बाणः ।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखरंगलासिका वाणी ॥"

इत्येवं कविपरिचयो यदस्ति पार्वतीपरिणये कविनैव दत्तचरः तदपि समुपेक्ष्यते समालोचनान्धीकृतान्तर्नयनैरालोचनाप्रवणैः । सूक्तिसाम्यम्, भाव-सामान्यम् गद्य-गुम्फनशैलीतादात्म्यम्, कथावस्तुसाधारण्यमित्येवमादिबहुसाम्येऽपि कर्त्तृत्ववैषम्यं कथंकारं प्रमाणीक्रियते विपश्चिद्भिरिति कौतूहलास्पदम् !

"कुचयुगलं परिणद्धं यथायथा वृद्धिमेति तन्वङ्ग्याः ।
वरचिन्ताहृतमनसस्तथा तथा कार्श्यमेति मे गात्रम् ॥"

इति पार्वतीपरिणये हिमवता प्रवर्त्तिता चिन्ता

"यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनीभवन्ति पितरः सन्तापानलस्य ॥ हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्याः" इति हर्षचरिते राजाधिराजप्रभाकरवर्धनपरिणीतया चिन्तया किं वस्तुतो विभिन्नेति शक्यते वक्तुम् ? किंवा पार्वतीपरिणस्य गद्यभागो नैव कादम्बरीं हर्षचरितं च सुखं संस्मारयति ?

"संविधानस्य सामग्र्यम् रसानां परिपुष्टता ।
सन्दर्भाणां सौकुमार्यम्, भावसामान्यता तथा ।।
सुस्पष्टं भट्टबाणीयम्, विवदन्ते विवेचकाः—
"यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः !!!"

इदमप्यतीवाश्चर्यकरं यत् काश्मीरपरम्परानुसारं कतिपये विद्वांसो रत्नावलीनाटिकाकर्तृत्वमप्यस्यैव विदुषो भट्टबाणस्य प्रतिपादयन्ति । धनमभिलष्यताऽत्र महता राज्ञो हर्षस्य नाम्ना नाटिकेयं विरचितेति तेषां मतिः । प्रियदर्शिका, नागानन्दः रत्नावली चेति रूपकत्रयमपि बाणेनैव हर्षनाम्ना विलिखितमिति केचनेति वदति डाक्टर पी० एल० वैद्यमहोदयः । विवादव्यतिकरश्चायं किं नाद्यापि शक्यते समाधातुं समाधानव्यसनिभिः संस्कृतविपश्चिद्भिरपि ?

शारदचन्द्रिकानामान्यद् रूपकमपि महाकविनामुना रचितमित्यपि ज्ञायते एव । दशरूपके चेदं रूपकमुत्सृष्टाङ्कोदाहरणरूपेण वर्णितं । तद्यथा—

"चन्द्रापीडस्य मरणं यत्प्रत्युज्जीवनान्तिमम् ।
कल्पितं भट्टबाणेन यथा शारदचन्द्रिका ।।"

इति,

"कल्पितं भट्टबाणेन यथा शारदचन्द्रिका ।
दिव्येन मर्त्यस्य वधः काव्यस्यावश्यभावतः ।।"

इति च तस्य रूपकस्य सम्बन्धे प्रब्रवीति भावप्रकाशे शारदातनयः । शारदचन्द्रिकेव बुधजनमनोहारि रूपकमिदं नाद्याप्युपलभ्यते इत्यहो कष्टतरम् !

"नदीवप्रान् भित्वा, किसलयवदुत्पाट्य च तरून्,
मदोन्मत्तं जित्वा कर-चरण-दन्तैः प्रतिगजम् ।
जरां प्राप्यानार्यां तरुणजनविद्वेषजननीम्,
स एवायं नागः सहति कलभैर्यः परिभवम् !"

इत्येवं नागप्रवरस्य कलभपरिभवव्याजेनात्मनो वार्धके परिभवप्रतिपन्नं विषादं सविषादं विवृण्वानस्यास्य भट्टबाणस्य पद्यरचनाचातुरी चापि चमत्कारमाचामयत्येव। परं, चण्डीशतकं शिवशतकञ्चेति द्वे एव खण्डकाव्ये तदीयकृति रूपेण वर्णिते स्तः। काश्मीरिककवीन्द्रेण क्षेमेन्द्रेण स्वीयायामनवद्यायामौचित्य विचारच र्चायाम् विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्याः विरहकथावर्णनं माधुर्यसौकुमार्यादिगुणयोगेन पूर्णेन्दुवदनेव प्रियंवदत्वेन हृदयानन्ददायिनीं दयिततमतामातनोति'—इति टिप्पणीसहचरितमुदाहरणत्वेनोल्लिखितं पद्यमिदं भट्टबाणस्य—

"हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरलानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः?"

इतिरूपं यस्य पद्यकादम्बर्याख्यकाव्यग्रन्थस्य सविशेषं नामावशेषित्वं स्मारयति, तस्यैव काव्यग्रन्थरत्नस्य विषये डाक्टर पी० एल्० वैद्यस्य जातमेतावत् साहसं येनोत्प्रेरितेन तेन विपश्चिता—कदाचित् क्षेमेन्द्रविरचितात् पद्यकादम्बरी नाम्नो ग्रन्थादेव श्लोकोऽयमुद्धृतः स्यादिति संभावनाऽस्ति समुद्भाविताऽवितथम्!

वाणोऽयमासीत् वेदान्तेऽपि ग्रन्थकृत्! अनुभवानन्दकृतस्य न्यायरत्नदीपावलीनामकस्य ग्रन्थस्य टीकाकृत् आनन्दजीविनामा पण्डितः तत्त्वविवेके स्मरति तादृशं बाणभट्टमिति वदति एम्० कृष्णमाचारी स्वीये हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृतलिटरेचर" नामके प्रसिद्धे ग्रन्थे।

यद्भवतु, महाकविरयम्—

"गद्ये, पद्ये दृश्यकाव्ये स्फुरन् बाणः करोतिकिम्।
न केवलोऽतिवक्रोक्त्याऽलोचकान् विमदान् कवीन्?"

(इति मम)

येयं संस्कृतवाणी गीर्वाणवाणीति प्रथिता बाणवाणीरूपेणाप्यवतीर्णचरा दैवदुर्योगेन संस्कृतज्ञानामेव विशेषतो विस्मृतस्वरूपाणामलसतया विशृंखलितात्म-परम्पराणामुदरदरीपूरणमात्रार्थकव्यापारवतामकर्मण्यतया मृतप्रायेव केवलं निःश्वसिति, तस्याः पुनः पुनः सबलीकारायापेक्ष्यते महान् प्रयासः ।

दरभंगास्थकामेश्वरसिंहसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य संस्थापनया याऽऽशा संस्कृतो-ज्जीवनानुबन्धिनी समजायत संस्कृतानुरागिजनमानसेषु तस्या एवैकांशो बाणभट्टजयन्तीसमारोहायोजनमुपलक्ष्य प्रस्फुटीभवतीव ममापि मानसे यद्वशंवदेन मयकाप्यात्मनो मनोभावनास्ति व्यक्तीकृता । आशासे च, स्वल्पैरेवाहोभिर्बाण-भट्टस्य साहित्यम्, भाषाविलासः, कथाख्यानसरणिरलङ्कारसंयोजनप्रकारः एवमादयो यावन्तोऽपि विशेषाः सविशेषमाकलिताः सन्तः साहित्यानुशीलनपटूनां पुरत उपस्थापिता भविष्यन्त्येवेति नमो नमः सत्कविगीर्बाणाय भट्टबाणाय !!!

महाकविबाणविवेचना

वन्दनीयास्ते महाकवयोऽन्तर्दृष्ट्या येऽतीन्द्रियमपि योगिभिरपि दुरापं वस्तु निभालयन्ति। अङ्गुलीषु विचेया विरला एव ते सहजाप्रतिहतप्रतिभाः। तेषु बाणः स्वकाव्यनैपुण्येन, वर्णनशक्त्या, स्वप्रतिभावैशद्येनोर्वरया कल्पनाशक्त्या च सकल-संसारव्यापारसाक्षात्कारक्षमशेमुषीप्रभावेणासाधारणं गौरवं लभते। कवयः केचन पद्यबन्धमात्रसीमितकौशलाः, अपरे च गद्येऽपि चालयन्तो लेखनीं कृत्रिमतासमा-वेशनिहितदृष्टयः सुबन्धुप्रभृतयः श्लेषयमकादिक्लिष्टालङ्कारचित्रगद्यबन्धसक्ता विस्मरन्ति स्वकर्तव्यम्। पद्येऽपि यदा कवयो वस्तुवर्णनाग्रहग्रहिलाः सन्तश्च्यवन्ते समीहितात्पथः, का कथा कान्तारसदृशे मुक्तसीमनि गद्यप्रसङ्गे यत्र वर्ण्यं विस्मरन् कवयन् दूरमेव गच्छेच्च्युतलक्ष्य इव शरः। अत एवोद्घोषितं सुधीवनैरालोचकैः—

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" इति।

गद्यकाव्यबन्धे दण्डी सुबन्धुश्चेति द्वावेवैतौ बाणेन समं सनामग्राहमुल्लेख्यौ। परं बाणो वरिष्ठो गरिष्ठश्चैतेषां भूयिष्ठया भावाभिव्यक्त्या, साधिष्ठया शैल्या, म्रदिष्ठया मनोहरतया, श्रेष्ठया साधुतया, प्रेष्ठया पदपरिष्कृत्या च। अत एव सोड्ढलेनोक्तम्:—"बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती" इति।

कविसम्राजमिमं निपुणं निर्वर्ण्य कृतकृत्यः स्यामिति मनसि निधाय निबन्धलेखने प्रवृत्तोऽस्मि। अष्टविभागेषु विभक्तोऽयं निबन्धः। प्रथमेऽभिजनाख्ये कवेरस्य वंश-परिचयो दीयते, द्वितीये कालनिर्णयो विधीयते, तृतीये बाल्य-वर्णनम्, चतुर्थे यौवन विचिन्त्यते, पञ्चमे कृति-विवेचनम्, षष्ठे कीर्ति-कलनम्, सप्तमे काव्यसौष्ठव-म्परिदृश्यते, अष्टमे निबन्धस्योपसंहृतिरिति संक्षेपेण परिचयः।

अभिजनः

श्लेषाश्लेषसमासक्तः बाणो भानुसुतः प्रियः ।
हृत्सुखाय निबध्नामि कीर्तिन्तस्य गरीयसीम् ॥१॥

महाकविः बाण एवैकः संस्कृत-साहित्यस्यैवंविधः कविर्वर्तते यस्य काव्यादेव तज्जीवनविषये पर्याप्तं ज्ञानमस्माभिर्लभ्यते । अनेन हि स्वयं हर्षचरितस्याद्यपरिच्छेदद्वये विस्तरेण स्वजीवनचरितं वर्णितम् । तच्च न केवलं जीवनचरितज्ञानायैवोपकारि, प्रत्युत साहित्यदृष्ट्याप्यनुपमं वस्त्वित्यवगच्छन्त्येव सहृदयधुरीणाः प्रवीणाः भावुकाश्च विपश्चितः । कादम्बर्यामप्यनेन विस्तरशो वर्णित एव स्ववृत्तान्त इति नायासाय सचेतसां विदुषान्तस्य जीवनकथा ।

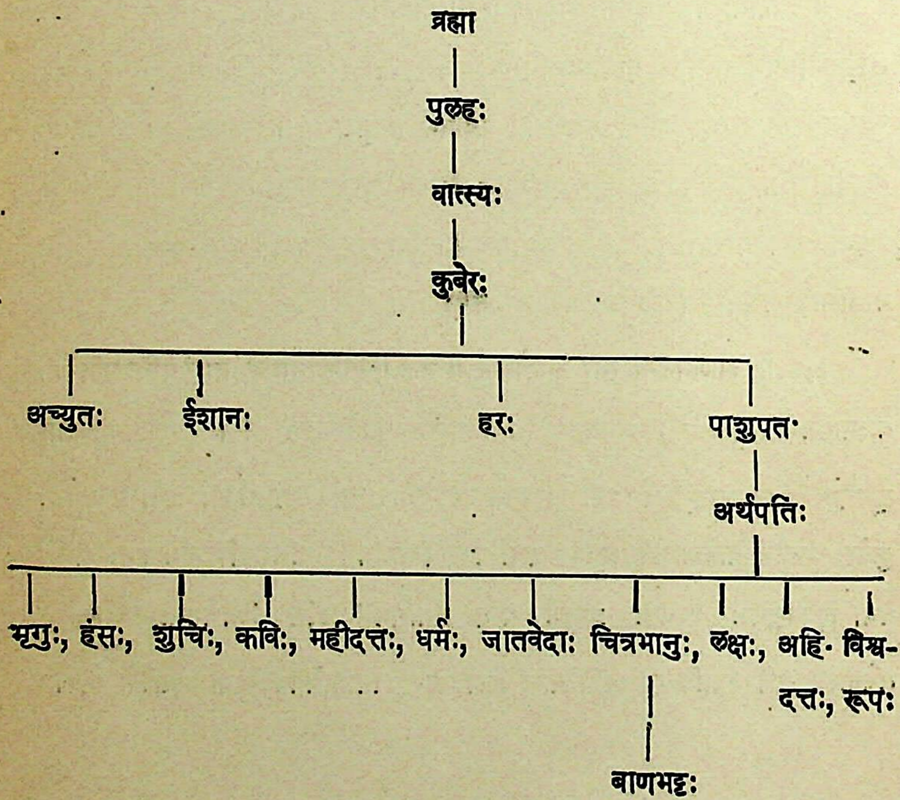
अयं हि शोणनदस्य तीरे शाहाबाद-मण्डले प्रीतिकूटनामके नगरे प्रतिवसतिस्म । वात्सायनगोत्रजोऽयम् । जनकोऽस्य चित्रभानुर्जननी राजदेवी च । मौखरिपूजिताद्भत्सोः सकाशात् अनवद्यां विद्यामाजहारेत्यपि तत्र स्पष्टमेव[1] । तस्य पूर्वजः कुबेरः महान् कर्मकाण्डी श्रुतिशास्त्रसम्पन्नो विप्रः । मैथिलपण्डितमण्डनमिश्रगृहे यथा शुकाङ्गनाः "स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणम्" इति विवेचयन्त्य आसन्, तथैवास्य कुबेरस्यापि गृह इति कादम्बर्याः प्रस्तावनायामेतेन स्वकण्ठरवेणैवोक्तम्[2] ।

---

१. "नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्" ।
(कादम्बरी, प्रस्तावना-श्लोक-४)

२. "जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥
(कादम्बरी—कविवंशवर्णनं श्लोकः-१२)

हर्षचरितानुसारी वंशवृक्षोऽस्यैवंविधो भवितुमर्हति:—



बाणभट्टस्य पुत्रविषयकं किमपि निश्चितम्प्रमाणं नोपलभ्यते, परन्नात्र काचन विप्रतिपत्तिः यदपुत्रो नासीत्सः। तत्पुत्रेणैव शिष्टा कादम्बरी पूरितेति तेनोत्तरार्धे स्पष्टमुक्तम्[1]।

डा० व्यूलरमहोदयेन तन्नाम 'भूषणभट्ट' इति स्वीकृतमासीत्। परमिदानीमिदन्नाम नाद्रियते। 'पुलिनः' 'पुलिन्दभट्टः' वास्य नामेत्याधुनिकैः स्वीक्रियते। धनपालकृतायां तिलकमञ्जर्यां समुपलब्धः श्लोक एवात्र मानम्[2]। तत्र श्लेषेण 'पुलिन्ध्रे' पुत्रत्वमप्यारोपितम्। 'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे', "नीरसतरुरिह विलसति पुरतः" इत्युभयमपि वाक्यं तत्पुत्राभ्यामनूदितमिति जनश्रुतिः। एतेनापरेषामपि पुत्राणामवस्थितिः सूच्यते।

कालः

श्रीहर्षदेवः षडधिके षट्शते (६०६) खिस्ताब्दे स्थानेश्वरे सिंहासनमलङ्कृतवान्। स्वीयबुद्धिवैभवेन सर्वानन्यान् नृपान् विजित्य सम्पूर्णे उत्तरे भारते आत्मनश्चक्रवर्तित्वमास्थापयामास। ततोऽष्टचत्वारिंशदधिकषट्शतं खिस्ताब्दं यावत्सुव्यवस्थया राज्यं शशास। प्रमाणञ्चात्र चीनदेशीययात्रिकस्य ह्वेनसांगस्य प्रवासवृत्ता

---

१ याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्॥

(कादम्बरी, उत्तरार्धः)

२ केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः॥

(तिलकमञ्जरी)

न्त एव। तेन हि ६२९ तमं खिस्ताब्दमारभ्य ६४५ तमं खिस्ताब्दं यावद्भारतस्य भ्रमणं कृतम्। "उत्तरभारते तस्मिन्समये श्रीहर्ष एवैकमात्रमधिपतिर्नासीदन्यः कश्चित्प्रशासकः" इति तेन स्वीये लेखे स्पष्टमुल्लिखितम्।

उपर्युक्तमैतिहासिकम्प्रमाणमाधृत्य निश्शङ्कमेतद्वक्तुं शक्यते यत्सप्तमशतकस्य मध्ये श्रीहर्षो नृपतिरासीत्। उपारूढयौवनोऽयम्महाकविस्सम्राजस्तस्य पारिषद्यतां भेज इति तस्य हर्षचरिते स्फुटम्। अतस्तस्य कालनिर्धारणं सुशकमेव। खिस्तस्य सप्तमशतकस्य पूर्वार्धम् एतस्य कवेः काल इति कीथमहोदयेनापि स्वीकृतम्। स्वयमेवानेन कवितल्लजेन पूर्ववर्तिकवितत्कृतीनामालङ्कारिकाणाञ्च नामानि स्वकीये हर्षचरितप्रस्तावे समुट्टङ्कितानि।

तद्यथा—"व्यासः वासवदत्ता, भट्टारहरिचन्द्रः, सातवाहनः, सेतुकृत्प्रवरसेनः, भासः, कालिदासः, बृहत्कथा, आढ्यराजश्चेति। प्रमाणमिदमाधृत्यापि षष्ठ्याः शताब्द्याः अन्ते सप्तम्याश्च प्रारम्भेऽयं समभूदिति निश्चेतुं शक्यते।[1] अष्टमीं शताब्दीमारभ्यैवास्य चर्चां कुर्वन्तः पश्चाद्वर्तिनः आलङ्कारिका अस्य पूर्ववर्तित्वं स्वीकुर्वन्ति। एवञ्च न कालिदासादिवदस्य कालनिर्णये काचन विमतिः वर्तत ऐतिहासिकानां विदुषाम। सप्तमशतकस्य मध्यभागः कालोऽस्येत्यसंशयं वक्तुं शक्यते।

शैशवम्

बाल्य एवास्य माता परलोकमगमत्। चतुर्दशवर्षदेशीयस्यास्य पितापि सायुज्यमलभत। अस्य सविधे प्रचुरम्पैतृकन्धनमासीत। पित्रोरभावेऽयं स्वतन्त्रः सन् उच्छृङ्खल इव नानाविधैर्वयस्यैः सहायैश्च सह ग्रामाद्ग्राममटन् व्यतीतेषु कियत्सु दिवसेषु पुनः स्वनगरं प्रत्याजगाम।

१ 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' इत्यत्रापि—'मन्ये, क्रमशब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखितः",
(वामन—काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः)

बाल्येऽप्ययं विशेषेण प्रतिभावानध्येतुं कस्यचित्सम्बन्धिनो गृहे निवसन्प्रसंगा-दागतेन तद्वैदुष्यचमत्कृतेन मातुलेन 'किमश्नासि' ? इति पृष्टः, पद्यार्धमिदमनुप्रास-मयमुत्तरयंश्चमच्चकार तम्—"अशेषशेमुषीमोषं माषमश्नामि मातुल" उत्तरमिदमस्य प्रागल्भ्यं प्रतिभाशालित्वञ्च प्रकटीकरोति ।

यौवनम्

कविरयं विविधाचारविचारैर्वयस्यैः सह प्रान्तेष्वनेकेषु भ्रमँल्लोकसाक्षात्कारेण जगदप्यनुभवाक्षिलक्ष्यीचकार । उपारूढयौवनश्च सर्वथा लोकचातुरीं सम्प्राप्य स्ववै-दुष्यप्रकर्षेण स्थाण्वीश्वराधीशस्य हर्षवर्धनस्य विद्वत्सभस्य सर्वोत्कृष्टपदमासादितवान् । किन्त्वेतत्पदप्राप्तिपूर्वकालेऽस्य मनोरमं यौवनं, कमनीयं रूपं, विपुलं धनं, विस्मयकारिणीं प्रतिभाञ्चासहमानाः केचन विपक्षिणः महतीं निन्दां व्यदधुः सम्राजो हर्षवर्धनस्य सविधे । तेन प्रकुपितो नृपः स्वभ्रात्रा कृष्णराजेन कथञ्चित्प्रतिबोधितः पश्चात्कृष्णराजेनैकं पत्रं विलिख्य मेखलकाख्यो लेखहारकः कश्चित्प्रहितः । तञ्च निदाघदिवसेऽतिक्रान्ते मध्यमह्नो दिवाकरे भुक्तोपविष्टस्य भट्टबाणस्य पारशवो भ्राता चन्द्रसेनः प्रावेशयत् । "श्रीहर्षस्य चित्तं त्वद्विषये केनापि पिशुनेन कलुषीकृतं, किन्तु परिज्ञातभूतार्थेन कृष्णराजेन श्रीहर्षदेवस्तथानुनीतो यथा यौवनसुलभं विकारमुत्सृज्य भट्टबाणेन न किमप्यपराद्धं न वा किमपि लोकविरुद्धमाचरितम्' इति तत्पत्रेऽङ्कितमासीत् । 'अस्मिन्विषये महाराजः प्रत्ययमपि ग्राहितोऽतोयमेव कालो भवतः सभां प्रवेष्टुमिति कृष्णराजस्याग्रहः ।" लेखार्थममुं मुहुर्मुहुर्विचार्य बाणभट्टः श्रीहर्षदेवमवलोकयितुं प्रीतिकूटात्प्रतस्थे । त्वरितं समुपागमच्च महाराज-द्वारसविधे ।

ततो दौवारिकेण परिचयद्वारा प्रवेशितः, पूर्वं राज्ञा तिरस्कृतः, परन्तदीयाद्भुत-पाण्डित्यप्रदर्शनेन परितुष्टो राजा दानमानादिभिस्सत्कृतवान् ।

महाकविरयं विविधान् राजप्रसादाननुभूय सुचिरं तत्र कियन्तं कालं स्थित्वा

पुनः स्वनगरं प्रीतिकूटं प्रत्याजगाम। श्रीहर्षविद्वत्सदसः प्रत्यागतमेनं सुहृदः सहायाश्च सविशेषं सभाजयामासुः।

पुस्तकवाचकः सुदृष्टिर्वायुपुराणमस्यावाचयत्। सूचिबाणो बन्दी हर्षचरितमुद्दिश्यार्थद्वयं पपाठ। येनात्यर्थमनुरञ्जितो ज्ञातिभिस्सह समागत्य पितृव्यसुतेषु कनीयान् श्यामलो भट्टबाणमामूलाद्धर्षचरितमुवर्णयितुं व्यजिज्ञपत्। भट्टबाणोऽपि विदिताऽभिप्रायस्तेनैव प्रस्तावक्रमेण तेषां पुरो हर्षचरितं कथयितुमारब्धवान्।

कवेरस्य यौवनमतिसुखकरम्। क्वचनापि वार्धक्यमस्य न वर्णितन्दृश्यते। प्रायः यौवन एवाऽयं करालेन कालेन कवलितः।

कादम्बरीमसमाप्यैवायं दिवं गत इति तु तस्या उत्तरार्धे प्रस्तावनायां सुस्पष्टमेव। अचर्चितस्य वार्धक्यस्य निबन्धेऽस्मिन्मयापि न चर्चा कृता।

कृतिः

हर्षचरितं कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमेवास्य प्रधानतः कृतित्वेनाङ्गीक्रियते कृतयोऽन्या अद्यापि विवादविषयीभूता एव विपश्चिताम्। प्रवाहमयभाषायामेकशतस्रग्धरावृत्त्या रचितमतीव मनोहरम्भगवत्याः स्तुतिरूपं 'चण्डीशतकं' नाम नाटकमप्येतस्यैवेति केचित्।

एवं हि श्रूयते:—महाकविमयूरस्य जामाता बाण एकदास्ताचलचूडावलम्बिनि सति शीतमरीचिमालिनि प्रातः प्रवहमाणेऽपि शिशिरसमीरे मानवतीं समुपविष्टां स्वप्रियतमामनुकूलयितुं तत्कालरचितं पद्यं श्रावयितुम्प्रवृत्तः।

तत्र च—गत प्राया रात्रिः कृशतनु ? शशी शीर्यत इव

प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।

प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो

इति चरणत्रयं निर्माय चतुर्थे क्लिश्यमानो मयूरेणानुगृहीतः। मयूरेणहि 'स्तनप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम्। इति चतुर्थश्चरणः पूरितः।

मयूरनिर्मितं चतुर्थचरणं श्रुत्वैव चुक्रोध बाणः शशाप च तम्। तच्छापान्मयूरः कुष्ठी सन् 'सूर्यशतकं' निर्माय शापान्मुक्तो बभूव। तम्प्रति क्रुद्धः मयूरो बाणमपि शशाप। सोऽपि भगवत्या दुर्गायाः स्तोत्रं 'चण्डीशतकं' निर्माय तच्छापान्मुक्तो बभूवेति। परमेतस्यां जनश्रुतौ न विदुषां विशेषादरः। हर्षचरितादौ बाणेन यद्यपि मयूरस्य जामातृत्वं न स्वीकृतं तथापि सम्राजो हर्षवर्धनस्य सभायामुभयोरुपस्थितिस्तु सर्वैः स्वीक्रियते। उभयोः घनिष्ठस्सम्बन्ध आसीदित्यत्रापि न कस्यचिदपि विमतिः। वैवाहिकस्सम्बन्धोऽपि नाश्चर्यस्य विषयः। जैनग्रन्थेऽपि जनश्रुतिरियमुपलभ्यतेऽतोऽस्यां काचन सत्यता परिलक्ष्यत एव।

गौरीशङ्करयोर्वैवाहिककथया समन्वितमतिरमणीयं 'पार्वती-परिणय-नाटकम्' एतस्यैव महाकवेरिति केषाञ्चन मतम्। महाकविकालिदासरचितकुमारसम्भवस्यास्मिन्नाटके प्रचुरः प्रभावः परिलक्ष्यते। नाटकस्यास्य प्रस्तावनायाम् :—

"अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी।

अयं श्लोकः समुपलभ्यते। एतेनैव खलु बाणभट्टस्येयं कृतिरिति कैश्चित्सुधीभिर्निश्चीयते। नाटकस्यास्य सम्यक्परिशीलनेन एवम्प्रतिभाति यदयं बाणः सप्तदशशताब्द्यां विद्यमानोऽन्य एव कादम्बरीकाराद् बाणात्।

चन्द्रपाल–गुणविजयगणिनामकौ जैनपण्डितौ स्वीयनलचम्पूटीकायां बाणभट्टकृतस्य 'मुकुटताडितक' नाटकस्य चर्चां कुरुतः। तथा हि तत्र—"यदाह मुकुटताडितके बाणः —

आशाः प्रेषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव।
बिभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः॥

क्षेमेन्द्रेण 'औचित्य-विचारचर्चा'नाम्नि स्वीये ग्रन्थे बाणकृत एकः श्लोक उद्धृतः। तथाहि—

"हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥"

श्लोकोऽयं कादम्बरीविरहावस्थावर्णने लिखित इव प्रतिभाति। बाणेन पद्येऽपि कादम्बरी लिखिताऽऽसीदिति एतस्माज्ज्ञायत इति कैश्चिदुच्यते। परमत्रापरेषां विमतिः।

कवेरस्य हर्षचरितमैतिहासिककाव्यतयापि स्वीक्रियते। आख्यायिकात्वेन परिगणितं तदष्टोच्छ्वासपरिमितं वर्धनवंशावतंसस्य राज्ञोहर्षवर्धनस्योदात्तं चरितं वर्णयति। आदौ तृतीयस्य चोच्छ्वासस्यार्धं कवेरात्मवृत्तं प्रस्तौति। ततः पुष्पभूतेः कुले प्रभाकरवद्र्धनस्योदयः, राज्यश्रिया विवाहः, राज्ञो मृत्युः, ज्येष्ठपुत्रस्य हूणविजयाय गतस्य राज्यवर्धनस्य प्रत्यागमनम्, मालवपतेराक्रमणं, राज्यश्रियो निग्रहं च श्रुत्वा तस्य शत्रुविनाशाय प्रस्थानम्, कुन्तलस्य गौडाधिपेन छलेन राज्यवर्धनस्य वधोदन्ताहरणम्, हर्षस्य प्रतीकारप्रतिज्ञा, गौडेशोन्मूलनानन्तरं राज्यश्रियोऽन्वेषणम्, एतावन्मात्रमेव वृत्तमत्र वर्णितम्। इतिहासेन सम्बद्धमपि घटनाक्रमवर्णनदृष्ट्या नैतत्तथा महत्वास्पदम्। तात्कालिकसामाजिकाचाराणां देशावस्थायाश्च साधुनिदर्शकमिति तु न कस्याप्यत्र विमतिः। पुलकेशिकृतपराजयेनैव दिग्विजयोत्साहो हतो हर्षस्येत्यपि सम्भाव्यतेऽपूर्तेः कारणम्। कादम्बरीतः प्रागेवास्य रचनेति तु काव्यशैल्या स्फुटम्।

कादम्बरी तु कथा। अत्रोज्जयिनीपतेस्तारापीडस्य चन्द्रापीडाख्यपुत्रोत्पत्तिः, विद्याग्रहणानन्तरञ्च यौवराज्येऽभिषेकः, दिग्विजयाय प्रस्थानम्, तत्प्रसङ्गेनाच्छोदसरोदर्शनं महाश्वेतया च परिचयः, गन्धर्वलोकं हेमकूटं गत्वा कादम्बरीसाक्षात्कारः,

राजधानीं प्रति प्रत्यावर्तनम्, मन्त्रि-सुते वैशम्पायने सैन्यभारमारोप्य राजधानीप्राप्तिः, पत्रलेखामुखेन च नायिकाया वृत्तोपलब्धिरित्येतावती कथा पूर्वार्धे वर्णिता। उत्तरार्धश्च तत्पुत्रपुलिन्देन भूषणभट्टेन वा रचितः। कथाविच्छेदहेतुश्च बाणस्य मृत्युरेवेति 'याते दिवं पितरि०' इति कथनेन सिद्ध्यति। पश्चाद् वैशम्पायनः सैन्येन सह नागच्छति चन्द्रापीडस्यापि हृदयभेदेन मृत्युः। कादम्बर्या आकाश-वाणीं श्रुत्वा तच्छरीरं रक्षितं पुनः पतिः प्राप्तश्चेति तत्र वर्णितम्।

इयञ्च कथा पूर्वं शूद्रकं प्रति शुकेन पश्चाच्च जाबालिना स्वशिष्येभ्यः श्राव्यते। मूलकथा च न कविना स्वयं कल्पिताऽपि तु पूर्वं बृहत्कथाऽऽश्रिते कथासरित्सागरे बृहत्कथामञ्जर्यां च वर्णितेति तदुपज्ञमेव। परं बाणेन स्वप्रतिभावैशद्येनोर्वरया कल्पनाशक्त्या च नवीकृता। कथानके विविधप्रसङ्गासंगेन भूयसी जटिलता कौतूहलस्य च साधीयसी रक्षा तया सम्पद्यते।

कीर्त्तिः

महाकविर्बाणभट्टो हि वाण्या वरदपुत्र आसीत्। भासादीनामिवास्य सरस्वती सिद्धासीत्। सत्यमेवोक्तं शार्ङ्गधरपद्धतौ:—

"भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कविः
मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः सुबन्धुश्च यः।
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते॥"

गोवर्धनाचार्येणापि हि बाणभट्टो वाग्देव्याः साक्षादवतार एवेत्युक्तम्:—

'जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥"

अपरस्यैकस्यालोचकस्य सम्मतौ बाणो गम्भीर-धीर-कवितारूपिण्यां विन्ध्याटव्यां विहारकर्तुः कविकुञ्जरस्य गण्डस्थलविदारकः सिंह इति। तथाहि:—

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आ सर्वत्रगभीरधीरकवितावित्रिन्ध्याटवीचातुरी
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

राजशेखरः— 'सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी कथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥'

नलचम्पूकारः— 'शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निश्शेषो रञ्जितो जनः ॥

कीर्त्तिकौमुदीकारः— 'युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥

तिलकमञ्जरीकारः— 'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान्कवीन् ।
किं पुनः कृतसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ॥'

राघवपाण्डवीयकारः— 'सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥'

धर्मदासः— 'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥'

जयदेवः— 'हर्षो हर्षः, हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः ।

श्रीकण्ठः— मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धौ विधेः ।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ।

त्रिलोचनः— 'हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

सोड्ढलः— "बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती०"

गङ्गादेव्या तु सरस्वतीवीणाध्वनिरेव कृतिष्विस्य निशम्यते ।

तद्यथाः— "वीणापाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम् ।
भावयन्ति कथं वाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥"

केचनाऽन्ये काव्यमर्मज्ञास्तु, बाणाय वाणीफलं श्रीहर्षेण प्रभूतं धनं दत्तम्, तन्नाद्य दृक्पथमवतरति, बाणेन तु यत्सूक्तिनिकरैस्तद्यशांसि स्थिरीकृतानि तानि कल्पक्षयेऽपि न परिम्लानानि भविष्यन्तीति निगदन्ति। तथाहि :—

"श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्।"
"हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाद्य कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम्॥"

उपरितनेषु श्लोकेषु चित्रिता बाणस्य कीर्ति-कौमुदी साम्प्रतमपि स्वीयज्योत्स्नाभिः धवलयति त्रिभुवनम्।

काव्यसौष्ठवम्

असाधारणो रसपरिपाकः, वस्तुवर्णनवैशिष्ट्यम्, प्रकृतेः सूक्ष्मं प्रसङ्गानुकूलञ्च वर्णनम् अविच्छिन्ना भावशृङ्खला च पाठकान् तथा रमयति यथा ते विस्मरन्ति सकलमपि नैजं कार्यजातम्। अत एव 'कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते' इत्याभाणकन्न कपोलकल्पितम्।

पाश्चात्यदेशवासिनः कीथ-वेबरप्रभृतयः केचन वैदेशिका अप्रभवन्तो बाणस्य ग्रन्थमवबोद्धुं निन्दन्ति तम्। वेबरस्तु तस्य कृतिषु घनं शब्दकान्तारं वर्णयति। उपपन्नं चैतत्तेषां कृते यथाहि न तत्रत्यभाषासु प्रायः सामासिकी वृत्तिः। बाणस्य तु काव्यबन्धे गद्यस्यादर्श एव भिन्नोऽस्तीति हर्षचरितश्लोकाज्ज्ञायते। तथाहिः—

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या, श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥"

वैदेशिकानामसन्तोषो न किमप्यपकरोत्यस्माकम्। कुसुमरसरसिका भ्रमरा-

श्चेच्चम्पकपुष्पाणि न भजन्ते, न तेन तेषां काचन हानिः। कामिनीभिः स्वकेशविन्यासे तानि विन्यस्तानि भवन्त्येव।

"यन्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन
किन्तेन चम्पक! विषादमुरीकरोषि।
विश्वाभिरामनवनीरदनीलवेशाः
केशाः कुशेशयदृशां कुशलीभवन्तु॥"

अनुस्मृत्येमं श्लोकं न वयं खेदमनुभवामः।

दीर्घसमासक्लिष्टदोषो वेबरादिभिः कथितो नादरणीयः। न च तस्य गद्यं सर्वत्रैव दीर्घसमासक्लिष्टम्। प्रसङ्गानुकूला हि वृत्तिः। हर्षचरिते खलु वीररसप्राये लभ्यते तद्बाहुल्यम्। परं शृङ्गारप्रसङ्गेषु संवादेषु च सन्ति लघीयांसि स्फुटतराणि च वाक्यानि। समासस्यौजोबहुलमेकं निदर्शनं यथा :—

"कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातंगोत्तमांगच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि।"

अत्र सिंहवर्णनेऽतीवानुकूल्यं भजत्येतादृशो बन्धः। बाणस्य कृतिषु रसस्याजस्रप्रवाहो, भूयसीकल्पनाशक्तिरसाधारणं वर्णनानैपुण्यमिति न लेखनस्यावश्यकता। महाश्वेतायाः प्रथमप्रणये कादम्बरीसाक्षात्कारावसरे च भावानुभावानां यादृश्युदात्ता सृष्टिस्तत्र वर्तते न साऽन्यत्र सुलभा। कादम्बर्यां हर्षचरिते च तदीया प्रकृती रोदिति हसति च पात्रैस्सह। पात्राणि तस्य सजीवनानि, व्यक्तित्वन्तेषां विशिष्टं, संवादाः सरसाः स्वाभाविकाश्च। मानसवृत्तीनां सूक्ष्मं विश्लेषणम्। हर्षचरितेऽपरवक्त्राणामपूर्वा व्यञ्जकता तीव्रां संविदं जनयति।

बाणः पाञ्चालीं रीतिं साधिकारं प्रयुङ्क्ते। तस्य गद्यबन्ध उत्कलिकाप्रायश्चूर्णकबहुलश्च। अलङ्कृतीनां परम्परा परस्परानुबन्धिनी। श्लेषे तस्य विशेषेण रुचिः। हर्षचरितस्यारम्भश्लोका अपि श्लिष्टाः परं विविधकविकाव्यनैपुण्यख्यापका इति भृशमुपकारकाः। तस्य प्रेष्ठा अलङ्कृतयस्तु—श्लेषः,

परिसंख्या, विरोधाभासः, उत्प्रेक्षा, उपमा, समासोक्तिः, रूपकं चेति। तेषां परम्परा प्रावृषि धारासार इव निरन्तरमितरेतरानुबन्धिनी। नचास्थाने तासाम्प्रयोगः।

पद्यविषये 'यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः' इति प्रसिद्धावपि न सर्वथा परिहीयते। हर्षचरितस्यारम्भिकाः कादम्बरीमुखस्थाश्च श्लोकाः सरसा ललिताश्च।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषणानि विभूषयन्त्यलङ्काराः। उपमारूपकोत्प्रेक्षाश्लेषविरोधाभासपरिसंख्यैकावल्यादयोऽलङ्काराः पदे पदे प्राप्यन्ते तत्तत्प्रसङ्गेषु। परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'यस्मिंश्च राजनि जितगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता'। विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णनेः—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्।" विन्ध्याटवीवर्णने उपमा यथाः—'चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च। उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भः शीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्।" श्लेषः सन्ध्यावर्णणे यथा:—'क्रमेण च रविरस्तमुपागत इत्युदन्तमुपलभ्य....अमृतदीधितिरध्यतिष्ठत्।" एकावली यथा महाश्वेताजन्मवर्णने :—'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।"

बाणः श्लिष्टसमस्तदीर्घवाक्यप्रयोगमनु प्रयुङ्क्ते लघुपदन्यासां वाक्यावलीम्। स यथैव दक्षो दीर्घवाक्यरचनायां तथैव निपुणो लघुवाक्यप्रयोगेऽपि। यत्र भावगाम्भीर्यमर्थगौरवञ्च तत्र सरला लघुपदवाक्यावली, अपरत्र च श्लिष्टा समस्ता दीर्घा च। यथा शुकनासोपदेशेऽर्थगौरवाल्लघुपदप्रयोगः—'मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्य-

चैनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्", महाश्वेताविलापे, कपिञ्जलकृताक्रन्दने लघूनि वाक्यानि। उज्जयिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, पुण्डरीकाय कपिञ्जलोपदेशे शुकनासोपदेशे च परिलक्ष्यते बाणस्यापूर्वा वर्णनचातुरी। स तथा प्रस्तौति प्रत्येकं वस्तु यथा चित्रपटे स्वतः सन्दृश्यमाना काचित्कथा घटना वोपतिष्ठति।

निष्कर्षे च बाणस्य दूरव्यापिनी कल्पनाशक्तिर्याऽतीन्द्रियानपि विषयानाकलयति स्वप्रत्यक्षायितान्। साधारणमपि वस्तु तत्र भव्यायितम्। किं नाम परिहीयते तस्य सिद्धवाचो दृष्टेः।

भूमण्डलात्किंपुरुषवर्षं यावत्कविनानेन कथाक्षेत्रीकृतो देशः। अदृष्टमश्रुतमचिन्तितमपि पदार्थजातं चिरपरिचितमिव रमणीयतरमिव प्रतीयते। न केवलं कल्पनाः, बुद्धिमप्युत्तेजयन्ति कानिचित् स्थलानि यथा शुकनासोपदेशादयः। न लभ्यते लक्ष्म्या राजमदस्य च तादृशं विवेचनं क्वचिदन्यत्र यथा कादम्बर्याम्। हर्षचरिते दाहज्वरग्रस्तस्य प्रभाकरवर्धनस्य मृत्युवर्णनमति मार्मिकम्। सरसा परुषप्राया चोभयविधाऽपि शैली तत्र तस्य कृतिषु दृश्यते। पल्वलस्य, शूद्रकस्नानस्य, चाण्डालकन्याया रूपस्य, जरद्द्रविडधार्मिकस्यापि निरूपणं बीभत्सविस्मयहासोत्पादकं वैलक्षण्यमेव भजते। तस्यैतादृशीं सूक्ष्मनिरीक्षिकां शक्तिमेवाभिलक्ष्य केनापि समालोचकेनोक्तम्—"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति।

उपसंहारः

निबन्धेऽस्मिन् 'बाण-वर्णने' वाणी आकुलीभूता। प्रथितयशसस्तस्य महाकवेः यशोवर्णने सहस्रजिह्वस्य शेषस्यापि शेषरसभाव्यते, का कथा मादृशानामनधिगतशास्त्राणामल्पमेधसाम्। कवेस्तस्याक्षयकीर्तिः, स्वल्पाकारोऽयं निबन्धः, नैतस्मिन् तच्चरितं सम्यङ् निरीक्षितुं शक्यते सहृदयैः पाठकैरिति मम विवशतां मनसि निधाय क्षमेलिमो मेऽपराधः स्यादिति दृढं विश्वसिमि।

महाकवेर्बाणभट्टस्य जीवनवृत्तजन्मस्थानकाव्यविषयकः प्रबन्धः

ये किल महाकवयः अनाद्यनन्तमहाकालपुरुषललाटिकायां स्वाक्षयामलधवल-ललामकीर्त्तितिलकमङ्कयामासुः, येषां काव्यामृतरसास्वादनमवाप्य लोकाः अलौकिकं परमानन्दसन्दोहमधिगच्छन्ति, यैस्तु शब्दार्थकुसुमस्रक्सम्भारेण सुरसरस्वत्याश्चरण-समर्च्चनां सम्पाद्य शाश्वती स्थितिरवाप्ता, ये असीमप्रकृतिरहस्यसमुद्घाटनव्याजेन स्व-कीयापूर्वकल्पनापाटवेन समाजैतिह्यसंस्कृतिनीतिजीवनचर्य्याविन्यासेन च कामदुहं गीर्वाणवाणीं परिशीलितवन्तस्तेषां कविकुलधुरन्धराणामन्यतमो विद्वद्वरेण्यः सकल-ललितकाव्यकलाकलानिधिर्महाकविर्बाणभट्टः। यस्य महाकवेः शब्दयोजनप्रणाली अभूतपूर्वानवद्या च, शृङ्गारादिरसपरिवेशनवेलायामनुपमा वाचनभङ्गी, श्लेषानु-प्रासाद्यलङ्कारैरलङ्कृता, माधुर्यौदार्य्यगुणगुम्फिता, विविधतत्त्वज्ञापिका सुपरिस्फुटा भाषा च संस्कृतसाहित्यजगति बिभर्ति न काञ्चनोपमां नितराम्। घनघोरारण्यवर्णनावसरे यथा चास्य प्रत्यक्षावगम्यं भयावहं दृश्यवर्णनाकौशलं तथा प्रशान्तानन्दमयतपोवन-चित्रणावसरे वर्णनामाधुर्य्यं बरीवर्त्ति। सर्वेषां ब्रह्मानन्दसहोदररसानां वैशद्येन परिवेशने समानं चास्य कृतित्वं समीक्ष्यते प्रेक्षावद्भिः। कविकुलगुरोः कालिदासस्य उपमालङ्कारप्रदर्शने, भारवेरर्थगौरवप्रख्यापने, श्रीहर्षस्य पदलालित्यसंविधाने, अनन्य-साधारणं चातुर्य्यं विदितचरम्भवति, कविवृन्दवृन्दारकस्य बाणभट्टस्य काव्याब्धौ तेषां सर्वेषामेकत्र समावेशः केषां सहृदयानां चेतांसि न विमोहयति। रामायण-महाभारताष्टादशपुराणादयः प्रायः सर्वे प्राचीनाः संस्कृतसाहित्यग्रन्थाः, अर्वाचीनाश्च रघुवंशकुमारसम्भवनैषधचरितशिशुपालादयः केवलं पद्यैरेवोपनिबद्धाः सन्ति। गद्य-साहित्यन्तु अतीव विरलमस्ति। प्रगाढपाण्डित्यविमण्डितात्मा बाणभट्टोऽमितप्रतिभा-शक्त्या संस्कृतसाहित्याकाशे मध्यन्दिनद्युमणिरिव समुदित्य गद्यकाव्यविरहान्धतमो निराकृतवान्। बाणस्तावदखिल-गद्यकवीनां प्रमुखतमं पदं समलङ्कृत्य संस्कृत-साहित्यजगति अभूतपूर्वां नवीनतमां पद्धतिं गद्यकाव्ये प्रवर्त्तयामास। सन्ति चास्य महाकवेरगाधशब्दसम्भार, अलङ्कारकल्पनयोश्चापूर्वं समन्वयनैपुण्यं, वस्तुस्थिति

वर्णने सुतीक्ष्णा पर्य्यवेक्षणशक्तिः, सङ्गीतवच्छ्रुतिसुखसाधिका भाषा, भावपक्षस्य तारल्यं, कलापक्षस्य प्रकृष्टा प्रगतिश्च। नहि कोऽपि कविवरः प्राकृतिकचित्रसमुद्घाटने बाणस्य पुरतः स्थातुमर्हति। सूर्य्यालोकितधरण्यां दीपा इव निष्प्रभाःपरिलक्ष्यन्ते सेन-सुबन्धु-दण्डि-विष्णुशर्मादयो गद्यकाव्यप्रणेतारः। यद्यपि नायकस्य स्वप्ने वासवदत्तास्वरूपदर्शने प्रायो विंशतौ पृष्ठेषु सुबन्धुलेखनी बाणकविवाक्यविन्यासशैलीमतिशयितुं प्रसरति, तथापि श्लेषोपमोत्प्रेक्षाद्यलङ्कारबाहुल्येन काव्यस्य स्वाभाविकीं गतिं पर्य्युदस्य केवलं शाब्दक्रीडायामेव तत् पर्य्यवस्यति। पद्यात्मकसाहित्यस्य दृढमूलं चिराचरितमेकाधिपत्यं निराकरिष्णुर्बाणो गद्यकाव्यं सर्वोत्कर्षेण परिणमयितुं स्वकीयानुपमप्रतिभायाः परममुपयोगं कृतवान्। गद्यात्मकसाहित्यं प्रति जनमानससमाकर्षणाय व्याकरणालङ्कारदर्शननीतिसमाजतत्त्वानि यथायथं सन्निबध्य पाण्डित्यस्य परां काष्ठामध्यारूढवान्। पद्यकाव्यपर्वतावरुद्धगतिं, गद्यसाहित्यसुरसरस्वतीसरितं भगीरथप्रयत्नेन समवतारयामास जीवलोकमानन्दयितुं साहित्यतपश्चरिष्णुर्बाणभट्टः। कविवर्य्यस्यास्यानन्तरम् उत्तरकालिकाः केऽपि कवयो नहि दृश्यन्ते, ये बाणप्रदर्शितं मार्गं स्वाच्छन्द्येन परिशीलयितुं क्षमाः स्युः। बाणकवेरनन्तर गद्यकाव्यनिर्म्मातारः बाणतुल्यं सम्मानं न प्राप्नुवन्ति। गद्यरीतिमाश्रित्य प्रवाहमयशैलीसंरक्षणस्य, भावोद्दीपकवर्णनमाधुर्य्यस्य, शाब्दिकचमत्कारस्य च परिचय-प्रदानं बाणातिरिक्तानां कवीनां कृते नैव सुकरं स्यात्। संस्कृतसाहित्यस्य पञ्चाननो बाणः काव्यविन्ध्याटव्यां सिंहनादपूर्वकं निःशङ्कं साकूतं च चञ्चूर्य्यमाणो विराजतेतराम्। स हि सालङ्कारसमासान्तपदानामनर्गलधारया वर्षाकालिकीं तीव्रवेगां स्रोतस्वतीमपि समुपजहास। स्वोपनिबद्धकाव्यच्छटामाधुर्य्येण इतरेषां कवीनां काव्यगर्वं खर्वं साधयामास। एतदप्युक्तं—

आः सर्वत्र गभीर-धीर-कविताविन्ध्याटवी चातुरी-
सञ्चारो कविकुम्भि-कुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः" ।

महाकविनानेन किमपि क्षेत्रं न परिहृतम्। सर्वेषु विषयेषु रसालङ्कार

व्यञ्जनाप्रौढकल्पनापदलालित्यार्थगाम्भीर्य्यादिषु बाणस्याप्रतिहता गतिर्विपश्चितां रसिकानां जनानां परं विस्मयमातनोति। निखिलाः काव्यविषयाः व्यञ्जनादयो भावाश्च बाणभट्टेनोच्छिष्टाः इति निपुणं विभाव्य समालोचकैर्मनीषिभिः समुद्घोषितं "बाणोच्छिष्टमिदं जगदिति"

महाकवेर्बाणस्य अभिनवमाधुर्य्यपूर्णशैल्यां रसप्रवणता, वक्रोक्तिमयी व्यञ्जना-प्रणाली, सानुप्राससमासान्तपदावली, दीपकोपमास्वभावोक्तीनामलङ्काराणामनुकूल-रुचिरयोजनया सह अन्तरान्तरा श्लेषविरोधाभासपरिसंख्यानां संग्रन्थनञ्च वैशिष्ट्येन विद्यन्ते। बाणस्य कथा ईदृशी रसवती, या स्वयमेव शब्दमयीं मूर्त्ति परिगृह्य सालङ्कृता रसिका नायिकेव भावुकानां सन्निधौ परमानन्दजनिका भवति। अलङ्कारै-रलङ्कृता, भावहावैर्विलसिता, रसोद्भावनेन मनोऽनुकूला, सानुप्रासशब्दावल्या कलभाषिणी, कलालापविलासेन हृदयाकर्षिका, वक्रोक्तिभङ्ग्या परमचतुरा, भावाभि-व्यञ्जनया समुत्फुल्ला, अभिनवा वधूरिव बाणकथा सहृदयस्य जनस्य मनः किं चमत्कृतं न करोति ?। कविकुलशिरोमणेः कालिदासस्य पार्वती यथा सद्यो रसोद्भाविका किन्तु समागमे सलज्जा सङ्कुचिता च, वस्त्राकर्षणानन्तरमेव सम्मिलितु-मिच्छति, परन्तु बाणस्य काव्यकथा महाश्वेतासदृशी प्रेमरससम्भृता सती नायक-मभिसर्त्तुं स्वयमेव समुद्यतास्ति। अस्य अतुलनीयस्य श्रेयसः कारणम् अनन्य-साधारणी सुन्दरी बाणशैली। समुज्ज्वलदीपकोपमैः नवैः पदार्थैः संश्लिष्टा, निरन्तर-श्लेषसन्निविष्टा, चम्पककुड्मलैर्ग्रथिता मनोहारिणी स्रगिव बाणकथा कस्य चेतसि अपारमानन्दं न जनयेत्।

बाणस्याविर्भाव-परिचयः

एवंविधस्य अतुलनीयकीर्त्तिदीधितिद्योतितभूमण्डलस्य, अशेषकल्पनावारिधि-पारङ्गमस्य, भाषावारविलासिनीप्रियतमस्य, उच्चकोटिकपाण्डित्यमण्डितस्य महाकवे-र्बाणभट्टस्य वंशपरिचयं तत्प्रदत्तविवरणेनैव यथाकथञ्चित् ज्ञातुमीशते सुधियः।

महाकविरयं हर्षचरितग्रन्थस्य प्राथमिकोच्छ्वासत्रयेण कादम्बरी-ग्रन्थस्य प्रारताविक-पद्यैश्च स्वपरिचयं समुद्धृतवान्। कदा खल्वयं कविशिरोमणिर्जनिमवाप, को वा प्रदेशस्तदाविर्भावेन समलङ्कृतोऽभूत्, किं कुलं तेन समाश्रितमुच्चैःकृतञ्च, कौ वा चास्य पितरौ, इत्येवमादयः प्रश्नाः समुद्भवन्ति तत्काव्यानुशीलिनां चेतसि। बाणस्तु एक एव तादृशः कविर्यस्य जीवनवृत्तान्तं यत्किञ्चित् ज्ञातुं समर्था वयम्। शोणनदस्य पश्चिमतटभागे प्रख्यातवेदज्ञपण्डितवृन्दवास्तव्यः प्रीतिकूटनामको जनपदो यत्र बाणस्य पुरुषपारम्पर्य्यक्रमेण निवास आसीत्। केचित् वदन्ति यत्—गयामण्डलान्तर्गते "प्रीतिकूट" इत्याख्ये ग्रामे बाणस्य पारम्परिको निवास आसीत्। तत्र वत्सगोत्राणां ब्राह्मणानां बाहुल्येन निवासात् ब्राह्मणानां 'वछगोतिया' इत्याख्या लोके प्रसिद्धिं गता।

इतिवृत्तविदां पारस्परिकविप्रतिपत्त्या अस्मिन् विषये प्रकृततत्त्वविनिर्णयो नैव सुकरः। अन्यैश्च कान्यकुब्जनिवासिना हर्षवर्द्धनात्मीयेन कृष्णेन समं बाणकवेः प्रगाढानुरागप्रीतिसम्मितां परां मैत्रीं विभावयन् महाकविरयं कान्यकुब्जदेशवासी'ति-निश्चीयते। गोत्रेण आसीत् स वात्स्यस्तस्य पूर्वजः श्रौतक्रियाकलापप्रवीणः वेदमन्त्रपारदृश्वा महापण्डितो नाम्ना "कुवेरः" बभूव। पूर्वजस्यास्य परिचय-प्रदानावसरे कविना सगर्वमुदीरितं यत् कुवेरपण्डितेन अखिला वेदमन्त्राः सस्वरं स्वायत्तीकृताः। तस्य महानुभावस्य गृहे पञ्जरिकाबद्धाः ससारिकाः शुका अपि सस्वरवेदमन्त्रोच्चारणैः इत्थं सुशिक्षिता आसन्, यत् वेदपाठाभ्यासवेलायां भ्रमात् स्खलितोच्चारणान् वटून् निगृह्य यथायथमुच्चारणम् उपदिष्टवन्तः। कुवेरमहोदयस्य चत्वारस्तनया आसन् येषां नामान्येवं सन्ति—ईशानोऽच्युतो हरः पाशुपतश्च। पाशुपतस्य पुत्रो नाम्ना "अर्थपति"र्बभूव। अर्थपतेरेकादशसु पुत्रेषु अष्टम श्चित्रभानुः कविकुलतिलकस्य बाणभट्टस्य जन्मदः पिता, चित्रभानोः पत्नी नाम्ना "राजदेवी" बाणस्य गर्भधारिणी जननी च आस्ताम्। बाणस्य शैशवे वयस्येव राजदेवी दैवदुर्विपाकात् कालगतिमवाप। बाणः पितुः सकाशे विद्याभ्यासमकरोत्।

यदा स वयसा चतुर्दशवर्षीयोऽभवत् तदा तस्य जनकश्चित्रभानुरपि संसारमायामतीत्य दिवमारुरोह। पितृमरणानन्तरं बाणः स्वतन्त्रप्रकृतिको भूत्वा उच्छृङ्खलं जीवनं यापितवान्। तस्यासन् बहूनि विभिन्नचरित्राणि मित्राणि, तेषां मध्ये भाषाकविरीशानः प्राकृतकविर्वायुविकारो विद्वांसौ वारवाणो व्यासवाणश्च विशेषतः प्रसिद्धाः बभूवुः। अन्येषु मित्रेषु केचन विद्वांसः, केचन प्रतारकाः, केचिन्नटाः, केचन ऐन्द्रजालिका आसन्। विचित्रचरित्रैस्तादृशैर्मित्रैः साकं बाणो बहून् देशान् चिरं यथेच्छं बभ्राम। तदनन्तरमनुतप्तचेता देशभ्रमणात् विरतः सन् स्वदेशं प्रत्यागत्य शास्त्राध्ययनाय मनोनिवेशञ्चकार। अनन्यचित्तेन बाणेन स्वल्पकालेनैव असाधारण्या मेधया प्रगाढविद्यानुरागवत्तया च लोकातिशायि प्रौढपण्डित्यं लेभे। स्वप्रतिभाभास्करप्रभया समुद्दीपितावनीमण्डलो बाणः सर्वत्र सुख्यातिमवाप्य पुनः कुलोचितां मर्यादां प्रतिष्ठापितवान्। विद्वज्जनगणाग्रगण्यो बाणः एकदा सम्राजो हर्षवर्द्धनस्य आत्मीयेन कृष्णेन सम्प्रेषितं पत्रं समवाप्य राजसभायां स्वकीयामन्त्रणं विज्ञाय भृशं प्रहृष्टोऽभवत्। परेद्युर्विद्याधनो बाणो राजसभायां समुपस्थितोऽभूत्। अगणितनृपतिमण्डलीमण्डितः सम्राड्हर्षवर्द्धनः राजसभायामुपस्थितं बाणं विलोक्य तस्य परिचयं पप्रच्छ। विद्वद्वरेण बाणेन यथायथं स्वपरिचयः प्रकाशितः। महाराजो हर्षवर्द्धनस्तु तत् परिचयं निशम्य स्वपृष्ठदेशावस्थितं मालवराजात्मजं सहासमुवाच यत् अयं पण्डितवेशी महाधूर्त्तः प्रतीयते। इत्थम्भूतां राजगिरं समाकर्ण्य विम्लानवदनो बाणः ससाहसं सम्राजं जगाद:- प्रभो, संसारे ह्यस्मिन् विचित्रप्रकृतयो लोका वर्त्तन्ते। येषां स्वभावसिद्धा गुणा दोषाश्च प्रथमदर्शनमात्रेण ज्ञातुं न शक्यां भवेयुः। अतः सज्जनैः चिरं व्यवहारेणैव यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। यद्यहमपराधभाक् स्यां तर्हि महाराजेनाहमेवं वाच्यः। अन्यथा हेतुज्ञानमन्तरेण साध्यज्ञानस्य अनुत्पत्तेः, कारणमन्तरेण कार्य्यानुत्पादाच्च, प्रमाणादृते मयि दोषाशङ्का कथं समीचीना स्यात्। ब्राह्मणोऽहं साङ्गवेदाध्येता, प्रायः सर्वेषु शास्त्रेषु समधीती यथाशक्तिकृतश्रमश्चास्मि। महानुभावेन महाराजेन कथं मयि धूर्त्तत्वं समारोपितम्?। यथाकालं महाराजेन मम प्रकृतिपरिचयः ज्ञातुं शक्यते।

महाराजेन हर्षवर्द्धनेन निगदितं यत् मयैवं लोकमुखात् श्रुतम्। राजसदसि नाभवत् पण्डितवर्य्यस्य बाणस्य यथायोग्यं सम्माननम्, सोऽभवत् नितरां विषण्णः मानभङ्गान्निरुत्साहश्च। किन्तु कथमपि धैर्य्यमवलम्ब्य राजसभामाश्रित्य कालं निनाय। गते कतितिथे काले बाणो हर्षवर्द्धनस्य राजसभायां शास्त्रार्थविचार-पाण्डित्येन सर्वान् राजपण्डितान पराजित्य अशेषसम्मानास्पदं सर्वोच्चपण्डितपदं सम्प्राप। सम्राजो हर्षवर्द्धनस्य परमविश्वासभाजनमेकान्तमित्रञ्चाभवत् महाकवि-र्बाणः। एतद्घटनापारम्पर्य्यविवेचनया तथ्यानुसन्धित्सुभिरितिवृत्तविद्भिः प्रामाण्येन निश्चीयते यत् महाकवेर्बाणभट्टस्य आविर्भाव-कालः षष्ठशताब्द्यन्तिमभागो भवेत्। सम्राजो हर्षवर्द्धनस्य राज्यकालः षडधिकषष्ठशताब्दीतः सप्तचत्वारिंशदधिकषष्ठशताब्दीं यावदासीत्। अतस्तद्राजसभालङ्कारिणो महाकवे-र्बाणस्य काव्यरचनाकालः सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्द्धभागो भवेत् इति निश्चप्रचम्। अपरौ द्वावपि कवी हर्षवर्द्धनसभां समलञ्चक्रतुः तौ च सूर्यशतकस्य प्रणेता पण्डितप्रवरो नाम्ना मयूरो, भक्तामरस्तोत्रप्रणेता दिवाकरमानतुङ्गश्च आस्ताम्। जनश्रुतिश्चेऽयं प्रचलितास्ति यन्महाकविर्बाणो मयूरकवेर्जामातृपदम् अभजत्। यतः सूर्य्यशतकचण्डीशतकस्तोत्रयोः रचनाहेतुभूता काचिद् घटना संवृत्ता यामवलम्ब्य पूर्वोक्ता जनश्रुतिः सङ्गता भवेत्। घटना चेत्थम्—

कदाचित् पण्डिताग्रणीर्मयूरः स्वतनयादर्शनाय बाणस्य गृहे प्रातरेव समु-पस्थितवान्। अत्रान्तरे मयूरदुहिता बाणपत्नी समधिकं मानमवलम्ब्य समस्तां रात्रिं बाणेन सार्द्धं व्यतीयाय। उषसि समागतायां सत्यां सा बाणेन बहुधानु-रुध्यमानाऽपि यदा नैव प्रसन्नाऽभवत् तदा कविवर्य्यो बाणभट्टः पत्न्याश्चित्तविनोद-नाय मानभङ्गाय च असमाप्तचतुर्थपादं पद्यमेकं निर्म्माय भार्य्यामुद्दिश्य पठितवान्। कन्यालयमागतो द्वारिस्थितो मयूरः बाणकृतश्लोकस्य पादत्रयं श्रुत्वा अवशिष्टपादं प्रणीय श्लोकपूर्त्तिं कृतवान्।

श्लोकश्चैषः—

गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्य्यत इव।
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव॥

प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो ।
स्तनप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥

अनर्गलकविताजाह्नवीजन्मभुवो मयूरस्य मुखनिर्गतं चतुर्थचरणं समाकर्ण्य गृहात् विनिर्गतो बाणो द्वारि श्वसुरं विलोक्य अन्याय्यमेतत् भवता कृतमित्युक्त्वा तस्मै "कुष्ठी भवतु भवान्" इति शापमुत्ससर्ज । मयूरोपि वागधीनवृत्तिः कविर्भवति अतो नैवमेतदन्याय्यमिति व्याहृत्य "त्वमपि तथा भव" इति बाणमभिशप्तवान् । श्रूयते च शापनिवृत्तये कविर्मयूरः सूर्य्यशतकाख्यं स्तोत्रं विनिर्म्माय श्रीसूर्य्यदेवानुग्रहात् शापमुक्तो बभूव । बाणोऽपि शापविमोक्षोपायं चिन्तयित्वा श्रीचण्डिकास्तोत्रात्मकं चण्डीशतकग्रन्थं विरचय्य देवीप्रसादात् शापमुक्तिं प्रपेदे । चण्डीशतकग्रन्थस्य कश्चित् श्लोकोऽत्र उदाह्रियते—

"विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुवेरे ।
वैकुन्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरूषं पौरुषोपघ्नविघ्नम्
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥"

कविवरेण बाणेन हर्षचरित-चण्डीशतक-पार्वतीपरिणयरूपक-मुकुटताडितक-सर्वचरित-कादम्बरीत्याख्या ग्रन्था विरचिताः । एषु ग्रन्थेषु बाणस्य दिगन्तविश्रुताक्षय-कीर्त्तितिप्रतिष्ठापकौ द्वावेव ग्रन्थौ हर्षचरितकादम्बरीत्यभिधानौ स्तः । कविप्रणीतानां ग्रन्थानामित्थं विभागः काव्यरसिकैर्विद्वत्प्रवरैः समभ्यधायि—"हर्षचरितम्" इति आख्यायिका, कादम्बरीति—"कथा", चण्डीशतकमिति—"स्तोत्रं", पार्वती-परिणय, मुकुटताडितक सर्वचरितनामकानि त्रीणि च नाटकानि । मुकुटताडितकाख्यं नाटकं नेदानीं काव्यामृतपिपासूनां दृष्टिपथमारोहति, अतस्तन्नामावशेषमात्रमधुना । केचित्तु पार्वतीपरिणयसंज्ञकं नाटकमपि नैव बाणकृतमिति सिद्धान्तयन्ति । तेषां मते तन्नाटकं बाणोपाह्वेन वामनभट्टनामकेन केनचित् विरचितम् । तत्तु न समीचीनं मन्यामहे वयम् । यतः नाटककर्तृत्वेन वामनभट्टस्य नास्ति कोऽपि

विशेषपरिचयः। अतो निरर्थककल्पनामात्रेण वास्तविकं तथ्यमपलपितुं प्रचेष्टा अन्याय्या भवेत्। महाकविना बाणेन कादम्बर्य्या रचनायामनुप्रेरणां गुणाढ्य-निर्म्मित—';बृहत्कथायाः", सुबन्धुरचित—"वासवदत्तायाश्च" सम्प्राप्य काव्याति-शयचमत्कारेण तयोर्गौरवं ग्लपयितुं कादम्बरीकथाग्रन्थो गद्यकाव्यं प्रणिन्ये। कादम्बर्याः पूर्वभागे विंशतितमे श्लोके चैतत् सुस्पष्टमभिहितं महाकविना। तच्चेदं पद्यम्—

"द्विजेन तेनाक्षतकन्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा॥"

विद्वत्-प्रवरेण क्षेमेन्द्रेण औचित्य-विचारचर्चायां श्लोकबद्धकादम्बरीग्रन्थस्य कानिचन पद्यानि सङ्कलय्य बाणस्य काव्यशैली प्रशशंसे। केषाश्चित् पण्डित-म्मन्यानां मतमस्ति यत् कादम्बरीकथायाः पद्यैर्विरचनं प्रथमतः महाकविना कृतं, किन्तु नास्मभ्यं तन्मतं रोचते, यतः कविना पद्यबद्धग्रन्थरचनातो विरतिर्नैवोद्-घोषिता, न वा तत्परित्यागे किमपि कारणं दृष्टचरं भवति। तानि च पद्यानि केनचित् पण्डितेन रचितानीति।

हर्षचरितग्रन्थस्य आलोचना

साहित्यप्रतिभाप्रभाकरस्य बाणस्य हर्षचरितग्रन्थः अष्टभिरुच्छ्वासैर्विभक्त ऐतिहासिकतथ्यगर्भ आख्यायिकान्तर्भावं भजतेतराम्। सैव आख्यायिका कथ्यते या इतिहासतत्त्वसमृद्धा सती कतिभिरुच्छ्वासैर्विभक्ता भवेत्। विशेषतः प्रत्युच्छ्वा-समादावन्ते च तदुच्छ्वासान्तर्गतविषयस्य अभिव्यक्तिः पद्येनैव सम्यक् क्रियते। स्थाण्वीश्वरमहाराजस्य हर्षवर्द्धनस्य जीवनवृत्तान्तमधिकृत्य आख्यायिकेयम् इति-वृत्तरसिकानां सकाशे ऐतिहासिककाव्यत्वेन परमोपादेयत्वमर्हति। इतिवृत्तकृतस्तु हर्षचरितस्य प्रथमोच्छ्वासे दधीचिसरस्वयोः प्रणयलीलां तृतीयोच्छ्वासे पुष्पभूतिकथाम्, अष्टमोच्छ्वासे—मन्दाकिनीवृत्तान्तञ्च समालोक्य अलौकिकघटनासंश्लिष्टत्वात्

हर्षचरितस्य अर्द्धैतिहासिकत्वं कथयन्ति । प्राथमिके उच्छ्वासे पूर्ववर्त्तिनां कविकुलमूर्द्धन्यानां कालिदासादीनां सप्रेमातिशय्यं नामानि समुल्लिख्य तेभ्यः आन्तरिकीं परां श्रद्धां निवेदयाञ्चकार । एतत् प्रसङ्गेन लोकानां साहित्यरुचिवैचित्र्यं प्रकटयितुं कविवरः समुदाजहार—यत् उदीच्या जनाः साहित्ये श्लेषालङ्कारं, पाश्चात्या अर्थगाम्भीर्यं, दाक्षिणात्या उत्प्रेक्षां गौडाश्च शब्दडम्बरं भृशमभिलषन्ति । श्लोकश्चैषः—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः ॥

परन्तु महाकविरयं स्वकाव्ये तेषां समेषां समन्वयं संसाध्य सर्वजनमनोरमां परामुत्कर्षप्रौढिं पुपोष । साहित्यसौन्दर्य्यविकासविवौ युगपत् सर्वेषां गुणनां समावेशोऽन्यत्र अत्यन्तदुर्लभः प्रतिभाति । स्ववंशवृत्तान्त--प्रख्यापनव्याजेन अलौकिकीं पुराणकथां वर्णयित्वा अनल्पकल्पनामहोदधिना बाणेन स्ववंशस्य पावित्र्यं गौरवञ्च प्रकाशयाञ्चक्रे । एतत्प्रसङ्गेन दैववशात् दधीचिविरहितायाः सरस्वत्याः शोचनीयविधुरदशावर्ण्णनायां बाणस्य लेखनी कलात्मकतायाः प्रकृष्टं परिचयं प्रददौ । दिङ्मात्रमत्रोदाह्रियते--"स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना च आकर्णाकृष्टकार्मुकेण मनसिजेन निर्दयमताड्यत । प्रतिबुद्धाया मदनशरताडितायाश्च तस्या वार्त्तामिव उपलब्धुमरतिराजगाम । तथाहि, ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलिताभिर्वनलताभिरताडितापि वेदनामधत्त । मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिः अदूषितलोचनापि अश्रुजलं मुमोच । हंसपक्षतालवृन्तचयविधुतैः, शोणशीकरैरसिक्तापि आर्द्रतामगात्" । अस्मिन् ग्रन्थे स्थाण्वीश्वर-महाराजस्य[-जनपदस्य]स्वरूपवर्णनावसरे महाकविनानेन शाब्दा विभूत्या अलौकिकचमत्कारः समुट्टङ्कितः यदित्थम्—"पद्मासनस्थित ब्रह्माभिध्यानावीयमानसकलाकुशलप्रशमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, कलकलमुखरमहावाहिनीशतसङ्कुलो विक्षेप इव उत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गणसन्तापानभिज्ञसकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपंक्तिपाण्डुरः प्रति-

निधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकाशिनीभूषणरव—भरितभुवनो नामाभिहार इव कुवेरनगरस्य, स्थाण्वीश्वराख्यो जन[पद]विशेषः ।" हर्षवर्द्धनस्य सभायां पाण्डित्य ख्यातिमीप्सुना महाकविना हर्षचरितं गद्यकाव्यं प्रणीय आशापूर्त्तिः विहिता । यत एतद्ग्रन्थविरचनानन्तर तदानीन्तने काले सर्वश्रेष्ठमहाकवित्वेन बाणः समधिकां प्रशंसामाप्तवान् ।

कादम्बरीकथालोचनाः—

कादम्बरी तु सुविशालं गद्यकाव्यं कथालक्षणलक्षितं रसिकजनपीयूषोपमं संस्कृतसाहित्यक्षेत्रे विशेषतो गद्यकाव्ये अनुपममनवद्यं सर्वोत्कृष्टञ्चास्ति । अस्या गौरवज्ञापनच्छलेन पण्डितवृन्दैः सानुरागं समुद्घोषितं—

कादम्बरी-कथां श्रुत्वा कवयो मौनमागताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति श्रुतिर्यतः ॥

कादम्बरीकथाश्रवणात् प्राक् पण्डितजनानां काव्यरचनाभिमानः तत्-कथा श्रवणात परं सद्य एव तिरोभवेत । यतश्चैततकथायाः अजस्र—सुप्रयुक्तशब्दसन्तानः, उपमोत्प्रेक्षाश्लेषपरिकरविरोधाभासाद्यलङ्काराणां यथायथं सन्निवेशः, विप्रलम्भसम्भोगशृङ्गारशान्तकरुणादिरसानां प्राचुर्य्येण अभिव्यञ्जनासमर्थत्वम्, निरन्तर कौतूहलोद्रेककरविषयवर्णनाचातुर्य्यं, प्रगाढपाण्डित्यापेक्षि—विविधभावोच्छ्वास—विलासश्च सर्वान् लोकान् निरतिशयं सम्मोहयन्ति, कल्पनाकुशलानां पण्डितजनानाञ्च अन्तर्भावनां समुद्बोधयन्ति, कुर्वन्ति च सान्द्ररसधारावर्षणेन परमपुलकाञ्चितं चेतः सहृदयानाम् । कादम्बरीकथायाः माधुर्य्यसुधास्वादाधिक्यमनुभूय पराचीनैः विपश्चिदपश्चिमैः सोल्लासं प्रोक्तमिदं यत्—"कादम्बरीरसज्ञेभ्य आहारोऽपि न रोचते" । कादम्बर्य्यां अपरमपि वैशिष्ट्यं गवेषणाव्रतां दृष्टिमाकर्षति । यथा आधुनिकोपन्यासकाव्ये घटनावैचित्र्य—समुद्भावनया लोकचित्तरञ्जनानुगुणम् उत्तरोत्तराकाङ्क्षा—वर्द्धन नैपुण्यम् इति इदानीन्तनानां साहित्यिकानां परममभिमानस्थानमस्ति तथा कादम्बरीकथायां पारम्पर्यक्रमाविरोधेन विविधघटनावलीसन्नि-

वेशसन्दर्शनेन तेषामपि चित्तं विस्मयरससिक्तं भवति। पुरातनार्वाचीनकथा-काव्ययोः सूत्रधारो बाणः लोकचरित्रचित्रणकौशलेन सर्वेषां जनानां हृदयान्तर्वेद्यां प्रतिमूर्त्तिरिव विराजतेतराम्। क्षुद्रातिक्षुद्रप्राकृतिकवस्तुवर्णने बाणस्यामिता कल्पनाशक्तिः कीदृशी मनोहरा भवति तत्परिचयस्तु विन्ध्याटवी-पम्पासरः-शाल्मलीतरु-शबरमृगया-प्रभृतीनामतिसाधारणविषयाणां पठनमात्रेणैव सुस्पष्टमुपलभ्यतेऽस्माभिः। बाणलेखनीरूपेन्द्रजालयष्टिस्पर्शमात्रेण जडश्चेतनायते, क्षुद्रो विशालायते, साधारणः असाधारणायते उपेक्ष्यः अनुपेक्ष्यायते, नीरसः सरसायते, कदर्य्यः सुन्दरायते, भीषणः सौम्यायते' किं बहुना सैन्यपदोत्थितं मार्गरजोऽपि स्वर्णशकलायमानमिवाभाति। राजकीयैश्वर्य्यभोगवर्णनावेलायां यथा बाणस्य सुगभीर-भोगासक्ति-समुच्छ्वासः, तथैव अगस्त्याश्रम—जाबाल्याश्रमस्वरूपप्रकाशावसरे चरम-वैराग्योद्दीपक-सात्त्विक भावाभिव्यञ्जनं महाकवेः भोगवैराग्ययोः समानां स्थिति-मभिव्यनक्ति। राजात्मजं कादम्बरीनायकं चन्द्रापीडं प्रति शुकनासोपदेश-व्याहारः विश्वसाहित्ये अत्युत्कृष्टसारगर्भनीतितत्त्वज्ञापकत्वेन राजनीतौ, समाजविधौ, धर्म्मानुशीलने, पूर्णाङ्गमानवचरित्रसंगठने चानुपमां बाणकृतिं विश्वजनीनत्वं गमयति।

कादम्बरीग्रन्थस्य नायकश्चन्द्रापीडोऽनुकूलो धीरोदात्तः समस्तनायकगुणैश्चा-लङ्कृतः। नायिका च कादम्बरी प्रथमतः कन्यात्वेन परकीया मुग्धा, परिणयान्तरं स्वकीया मध्यापि च। काव्येऽस्मिन् विप्रलम्भशृङ्गारो रसोऽङ्गित्वेन स्वीकृतस्त-दङ्गत्वेन हास्यादयोऽन्येरसाः परस्पराविरोधेन मित्राणीव अवतिष्ठन्ते। माधुर्य्यगुणानां बाहुल्येन सत्त्वेऽपि प्रसादगुणस्य सत्ताप्यनुपेक्षणीया। प्राधान्येन पाञ्चाली रीतिरत्र समाश्रिता महाकविप्रवरेण, किन्तु अन्यासां रीतीनां स्थाने स्थाने समावेशोऽपि वर्त्तते। बाणभट्टेन यत्किञ्चिद्वस्तुवर्णनं कृतं तत् सर्वं निरतिशयरमणीयं काव्यानुगुणमेव। यद्यपि कादम्बरीकथाकाव्यस्य प्रणयनम् अन्तिमे वयसि महाकविना कृतं, यतोऽस्याः कथायाः परिसमाप्तिं कर्त्तुं स नाशक्नोत्; तत्पुत्रेण भूषणभट्टेन कथेयं कथञ्चित् बाणशैलीमवलम्ब्य समापिता, तथापि

कादम्बरीपूर्वभागोऽत्युत्तम-रचनावैचित्र्येण अलौकिकचमत्कारं बिभर्ति। महाकविना गद्यकाव्यस्य प्रणयनविधौ सर्वकालव्यापिनी, सकललोकमनोनुरञ्जिनी, अभिनवा, सुमधुरा, तरङ्गवत् प्रवहणशीला, रचनाशैली समाविष्कृता, या नान्यत्र कुत्राप्युपलभ्यते। पद्यतोपि माधुर्य्यमण्डितं गद्यम् अर्थज्ञानमात्रेण लोकानां हृदयानुरञ्जकं, श्रवणमात्रेणैव कर्णकुहरयोः सङ्गीतवत् सुस्वरलहरीसमुत्पादकं, विपञ्चीविनिःसृतमधुरध्वनिरिव शब्दझङ्कारयुक्तं, मौक्तिकगुम्फनातिशायिवर्णगुम्फनान्वितं सद्यो रससम्पोषणक्षमञ्च तत् स्यादित्येवंविधस्य गद्यकाव्यस्य प्रणेता बाणमन्तरेण न कोऽपि सफलः कविर्य्याथार्थ्येन जगतीतले दृष्टचरोऽभूत्।

कादम्बरीमवलम्ब्य या काचन प्रशंसा पूर्वतनैरधुनातनैर्जनैश्च समुद्गीता, सा तु नैव कदापि ह्रासं गमिष्यति। चिरन्तनीयं कविकृतिः, पौर्णमास्यां चान्द्री ज्योत्स्नेव जगदिदमाह्लादयिष्यति इत्यत्र नास्ति कश्चित् संशयावकाशः।

कादम्बरीपूर्वभागस्य एतावत्येव विशेषता अस्ति यत् महाकविरयं यद्यन्यान् ग्रन्थान् परित्यज्य केवलं कादम्बरीग्रन्थमेव प्राणेष्यत्, तथापि एतत्कल्पनाबलेनैव भूमण्डले शाश्वतीः समाः कीर्त्तिमलप्स्यत इत्यत्र समेषां विदुषामैकमत्येन स्वीकृतिरिति निश्चप्रचम्।

कादम्बरीकथायाः दिग्दर्शनम्

ग्रन्थारम्भे सुजनदुर्ज्जनस्वरूपं निरुच्य स्ववंशपरिचयञ्च प्रदाय शूद्रकाख्यनरपतेराख्यानमाख्याय तत्सभायां चण्डालकन्यानीतस्य शुकपक्षिणः समागमो वर्णितः। शुकस्य मनुष्यजनोचितां प्रवचनशक्तिं विज्ञाय आश्चर्य्यान्वितेन शूद्रकेण संपृष्टः शुकः स्वजन्मान्तरकथाप्रसङ्गेन उज्जयिन्यां तारापीडाभिधेयस्य नृपस्य तनयश्चन्द्रापीडः वैशम्पायननामकेन मन्त्रिपुत्रेण सह दिग्विजययात्रां कृतवान्", इति कथयाञ्चकार। ततः क्रमेण अवजितसकलजगतीतलश्चन्द्रापीडः सैन्यसमेतः कैलाससन्निहिते गन्धर्ववास्तव्ये सुवर्णपुरे समुपस्थाय विश्रमहतोः सेनां

सन्निवेश्य च मृगयार्थमरण्यमटाव्यमानस्तृषातुरश्च अच्छोदसरसि पानीयं पीत्वा तदन्तिके महादेवोपासिकां सङ्गीतालापनिरतां महाश्वेताभिधामलौकिकरूपवतीं कन्यां दृष्ट्वा तन्मुखात् तत्प्रणयासक्तस्य पुण्डरीकस्य मरणवृत्तान्तश्रवणानन्तरं तस्याः तपःकारणं विदित्वा तां परिसान्त्वयामास। तत्रैव महाश्वेतासख्या कादम्बर्य्या सह चन्द्रापीडस्य परिचयः परस्परानुगश्चाऽभूताम्। ततो गृहप्रत्यागतश्चन्द्रापीडः कियत्कालानन्तरं कादम्बरीप्रेषितं सन्देशं श्रुत्वा पुनः कादम्बरीभवनं गत्वा तया सह सप्रणयं विश्रम्भालापं कृतवान्। चन्द्रापीडः कादम्बरीभवननिवाससमये स्वजनकस्य तारापीडस्य विशेषपत्रमवाप्य तस्मात् स्थानात् उज्जयिनीं प्रतस्थे। पितृनियोगेन चन्द्रापीडः उज्जयिन्यां राजकार्य्यनिरतो बभूव। गते बहुतिथे काले चन्द्रापीडः स्वसहचर्य्या नाम्ना पत्रलेखायाः कादम्बरीजीवनोदन्तं विज्ञाय भृशं तद्दर्शनसमुत्सुकोऽभवत्" इत्येतत्पर्य्यन्तः बाणकृतस्य कादम्बरीग्रन्थस्य पूर्वभागः।

एतान्मात्रमुपनिबध्यैव जगदानन्दकरसहस्रकरसन्निभोऽनल्पकल्पनावारिधिर्बाणः अकाण्डे एव प्रतिकूलप्रारब्धवैवश्यात् जीवलोकं परित्यज्य जगदिदं साहित्यसुधारसवञ्चितं विहितवान्।

काव्यकलानभिज्ञो ललितभाषाप्रयोगदीनोऽज्ञातशास्त्रतत्त्वोऽहमस्मि। नास्ति मे तादृशीमतिर्ययाहं सर्वलोकव्यापककीर्त्तेरनन्तप्रौढकल्पनारत्नाकरस्याशेषशास्त्रानुशीलनपरिबृंहितबोधस्य मनीषिबृन्दवन्द्यस्य काव्यरसिकेन्द्रचक्रचूडामणेर्महाकवेर्बाणभट्टस्य परमदुर्ज्ञेयालौकिकीं कृतिं सामान्यतोऽपि वर्णयितुं शक्नुयाम्, तथापि महाकविविनिर्म्मितायां साहित्यभागीरथ्यां स्वल्पतोऽपि निमज्जनेन आत्मानं पुनामीति बुद्ध्या मामकीनेयमतितुच्छा प्रचेष्टा कृपापरायणैः सहृदयैस्तत्त्वविद्भिर्बुधजनैः क्षन्तव्या इति सश्रद्धं सादरञ्च भूयो भूयः संप्रार्थ्य विरतिराश्रीयते।

इति शम्।

"त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः"

महाकविः बाणभट्टः

अस्मिन् हि निरस्तसमस्तदूषणे गुणमयेऽलौकिके सारस्वते जगति गद्यप्रबन्धे तत्रभवान् बाणो मूर्धानमलङ्करुते। महाकवेरस्य प्रतिभा विद्युल्लता लोचनमिव तत्त्वपारदृश्वनामपि भावकानामभिभवति शतशोऽन्तर्दृशम्, कल्पना-कल्पलतिका काव्यकलोपवनसुरसरसालमुपगूढा सृजति कामपि लोकोत्तरां कमनीयताम्। निरीक्षणचातुरीन्द्रजालविद्येवाविष्करोति परिष्कृतां रङ्गभूमिम्, यत्र सजीवचित्राणीव पात्राणि नृत्यन्ति। कृतिरस्य मन्दिरं गद्यकाव्यस्य यत्र वीणावती गुणमयी सुरीतिशालिनी सुवृत्ताऽशेषभासुराऽलङ्करणचर्चितवपुः रसपीयूषकलसझरैः निखिलमेव वस्तुजातममरीकुर्वाणा साहित्यशतदलसिंहासनेऽभिषिक्ता चकास्ति, यस्याः समभ्यर्चनायावचिताऽशेषकुसुमं भूतलमित्यधिनन्दनवनम् देवतरून् व्याधूय निर्माय चानेकवर्णमलौकिकगुणश्लेषभासुरममृतरसपरागपरीतम् माल्यमर्पयाञ्चक्रे। यस्य कथामृतरसं पायं पायं समुद्गिरन्ति भावकाः "बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती" वाणी बाणो बभूवेति "हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाण इत्यादि"। स चायं कविः कदा जन्म लेभे, कं देशमलञ्चकार, किंवा जीवनवृत्तम्, इति विषये काव्यमयेन प्रबन्धेन यद्यपि स्वयमेव प्रकटीकृतम् तथापि नात्र विषयेऽद्यापि विवादः शाम्यति विदुषाम्। बहुत्र निर्णयेऽपि क्वचन सन्दिहानाः केचन सन्त्येव।

जन्मस्थानम् :–

हर्षचरितस्य सम्यगनुसन्धानेन महाकवेर्बाणस्य जन्मस्थानवंशपरिचयादि सम्यगुपलभ्यते। तथाहि कदाचित् दुर्वाससा ऋषिणाऽभिशप्ता सरस्वती भूलोके

शोणतटस्य वामपार्श्वे वसतिं चक्रे। शोणः 'हिरण्यवाह' नाम्नापि ख्यातिं लभते। अस्यैवोपकण्ठे दक्षिणतः भगवतः च्यवनर्षेः पुण्यमाश्रमपदम्। इतश्च गव्यूतिमात्रं पारेशोणं च्यवनव्यपदेशभाक्[1] काननम्। ततः च्यवनात् सुकन्यायामुत्पन्नः पुत्रो दधीचः कदाचित् सरस्वत्यामासक्तः समधिकहायनं तया सह कालं सुखं निनाय। ततः सरस्वती सारस्वतं नाम पुत्ररत्नं प्रसूय शापविरहिता परमं धाम जगाम। दधीचः भार्गवकुलाङ्कुरस्य भ्रातुः जायामक्षमालां सारस्वतस्य धात्रीं कल्पयामास। अक्षयमालायाः पुत्रो वत्सो बालः सारस्वतश्चोभौ सहावर्धेताम्। अनन्तरं सारस्वतः च्यवनाश्रमसीम्नि वत्सप्रीतिवशवशः "प्रीतकूटं" नाम वसतिं निर्माय वत्सम् तत्र नियुज्य स्वयं कृष्णाजिनधरः तपस्तप्त्वा वरेण्यम् पितृलोकं च्यवनान्तिकं जगाम। वत्सगोत्रीयब्राह्मणप्रधानः 'प्रीतकूट' ग्रामः 'ब्राह्मणाधिवास' नाम्नाऽपि ख्यातः। विहारप्रान्तस्य गयामण्डले एष प्रीतकूटग्राम एव बाणस्य जन्मस्थानम् यत्र वत्स-गोत्रीयाः ब्राह्मणास्सन्ति।

उक्तं विषयेस्मिन् 'श्रीवासुदेवशरणअग्रवाल', 'ए० बी० कीथ', 'भी० एस० स्मीथ', 'आचार्यद्विजेन्द्रनाथ', 'श्रीबलदेवोपाध्याय', 'दासगुप्ता', गौरेला प्रभृति-विदुषां मतम्।

परन्तु मान्यवरपं०श्रीपरमेश्वरशर्ममहोदयेन बहु प्रयस्य विषयेस्मिन् "महाकविबाणः वंशजाश्च"[2] इति निबन्धे विशेषतो निश्चितं यत् शोणनदतटस्यानु-संधानेन च्यवनाश्रमः अद्यत्वेऽपि 'गया' मण्डलान्तर्गतशोणनदस्योपतटम् विस्तृते कानने नद्याः वर्त्तमानधारातः पूर्वस्यां गयातः पश्चिमायाञ्च दिशि, रफीगंजात्

---

१ द्रष्टव्यम्—इतश्च गव्यूतिमात्रं पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम काननम्।

"हर्षचरितम्"

२ द्रष्टव्यम्—'माधुरी' (पृ० सं० ७२२-७२७)

सप्तगव्यूतिमात्रः उत्तरपश्चिमविदिशि 'देवकुण्ड' "देवकुर" इतिनाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति। वाणस्य जन्मस्थानम् इहैव भवितुमर्हति। निश्चीयते यत् आश्रमं परितः सर्वत्र वच्छगोतीया इत्यभिधायिनां वत्सगोत्रीयाणां 'सोनभद्दर' "शोणभद्र", परमँ, बँधवाँ इत्यादयः ग्रामाः सन्ति। ग्रामेषु शोणभद्र—ग्रामः सर्वप्रधानोऽस्ति यत्रस्थाः 'सोनभदरिया' इति पदेन स्वान् 'वच्छगोतिया' वत्सगोत्रीयान् कथयन्ति।

च्यवनाश्रमस्य सामीप्यं, शोणभद्रतटवर्तित्वं प्राचीनत्वम् च विचार्य वत्सगोत्रीयाणां विषये गूढतरपर्य्यालोचनेन च इदृशी धारणा नूनमेव जायते यत् शोणभद्र 'सोनभद्दर' एवासीत् वाल्यक्रीडास्थलमस्य महाकवेः वाणस्य। यत्र कादम्बरी हर्षचरितमिति काव्यद्वयं निर्ममे कविना।

वाणस्यालो मयूरः। तस्य जन्मस्थानविषयेऽपि अनुसन्धाय विद्वानयं निश्चिनोति यत् 'गया' मण्डलान्तर्गत 'पामरगंज' स्टेशनात् सप्तगव्यूतिदूरं दक्षिण-पश्चिमदिगन्तराले च्यवनाश्रमात् दशगव्यूतिमात्रदूरं दक्षिण-पश्चिमकोणे एकं "देव" नामकं प्रसिद्धस्थानम् यत्र भगवतो मरीचिमालिनः एकं मन्दिरं मयूरम् स्मारयति इदानीमपि। तथाचात्र प्रतिवर्षम् कार्त्तिके चैत्रे च मासि महोत्सवस्समुज्जृम्भते यत्र परश्शताः जनाः "आरोग्यम् भास्करादिच्छेत्" इत्याप्तवचनमनुसृत्य कुष्ठरोग-निवारणार्थं समागच्छन्ति। मन्दिरमिदं च्यवनाश्रम इव पश्चिमाभिमुखकमस्ति। अस्य पार्श्वे 'मरयार' ब्राह्मणानां वहवो ग्रामास्सन्ति। ये स्वान् मयूरवंशीयान् ख्यापयन्ति।

वस्तुतस्तु, अधुनापि मयूरवंशीयाः जनाः स्वान् 'मैयार' एवं च्यवनवंशीयाः जनाः 'चैयार' कुलीयान् आत्मन उद्घोषयन्ति। पुराणेषु "वधुस्रवसः" या चर्चा श्रूयते तदेवस्थानमधुना 'वधरवा' तडागरूपेण निकषा देवस्थानमस्ति। अत्र अत्र वत्सगोत्रीयाणां प्राचुर्यमस्ति ये अधुना 'वछौतिया' 'वगौछिया' अपि कथ्यन्ते। प्रीतकूटः वर्त्तमान 'अरवल' इत्यत्र गयामण्डले 'पीरूवनतारा' ग्रामः, यत्रत्याः जनाः अधुना यवनाः सञ्जाताः विविधावसरेषु स्वपूर्वजत्वेन वत्सगोत्रीयान् स्मरन्ति,

अंशादिकमपि यच्छन्ति । ० एवमन्ये वत्सगोत्रीयाः सोनभदरिया इति नाम्ना प्रसिद्धास्सन्ति ।

महाकवेः वंशपरिचयः

ततो वत्सात् वात्स्यायनो नामान्वयः समजनि । तत्र वात्स्यायनवंशे गृहमुनिः इति ख्यातः कुवेरो व्यजायत । कुवेरात् क्रमेण, अच्युतः, ईशानः, हरः, पाशुपतश्चोत्पेदिरे । तेषां पाशुपतस्यार्थपतिः अर्थपतेश्चैकादश पुत्राः बभूवुः । यथा— भृगुः, हंसः, शुचिः, कविः, महिदत्तः, धर्मः, जातवेदाः, चित्रभानुः, त्र्यक्षः, अहिदत्तः, विश्वरूपश्चेति ।

एषु चित्रभानो राजदेव्यामुत्पन्नो बाणो बभूव । कादम्बर्यां महाकवेर्वंशवर्णने पाशुपतस्य नाम न दृश्यते । ज्ञायते यत् भ्रमवशात् केनापि हेतुना वा पाशुपतनामयुतं पद्यं परिभ्रष्टं स्यात् । परन्तु बाणस्य वंशचर्चा 'हर्षचरिते' सुस्पष्टतया दृश्यते । एतेषां वत्सगोत्रीयाणां सोमपायिनां सकलशास्त्रपारङ्गमानाम् यायजूकानां गोत्रे महाकविः जन्म लेभे । यत्र भवने पञ्जरवर्तिनः पक्षिणोऽपि वेदपाठिनः आसन्[1] ।

महाकवे समयः

महाकविः "कान्यकुब्जेश्वर" "उत्तरापथेश्वर" "नरेन्द्रप्रवर" इत्यादि पदविभूषितस्य कुमारराज[2] शिलादित्य हर्षवर्धन इत्यादिनामान्तरधारिणः श्रीमतो हर्षवर्धनस्य सभाकविरासीत् ।

द्रष्टव्यम्—१-'कादम्बरी' । २-He called himself king's son-(Kumar-raja), his title was Siladitya. (Huen.Tsiang, p. 213)

हर्षवर्धनः ख्रिष्टाब्दगणनया षडधिके षट्शते[1] (६०६) वर्षे स्थाण्वीश्वरे (स्थानेश्वर) सिंहासनमलङ्कृत्य राजनीतिपद्धत्या सर्वानन्यान् विजित्य चोत्तरे भारते आत्मनश्चक्रवर्त्तित्वं स्थापयामास। तदारभ्य, अष्टचत्वारिंशदधिकषट्शतकपर्य्यन्तं च सुव्यवस्थया राज्यमुपभुक्तवान् (606 to 648 A. D.) ।

प्राप्तताम्रपत्रानुसारेण चीनपर्यटक 'ह्वेनसाङ्ग' लेखानुसारं तथा ए० वी० कीथमतानुसारेणाप्ययं समयो निश्चीयते। अस्यैव राज्ञश्चरितं हर्षचरितमित्याख्यायते। अतो बाणस्य समयः सप्तमशतकस्य पूर्वार्द्ध एव भवितुमर्हति। अस्य कालनिर्धारणम् बाह्यान्तरप्रमाणाभ्यामपि कर्तुं शक्यते। महाकविना स्वयमेव हर्षचरितस्य प्रस्तावनाश्लोकेषु पूर्वेषां कवीनां तत्कृतीनाञ्च नामानि जग्राह। यथा--व्यासः, वासवदत्ता, भट्टारहरिश्चन्द्रः, सातवाहनः, सेतुबन्धकृत्-प्रवरसेनः, भासः, कालिदासः, बृहत्कथा, इति। एषु कविषु अन्यतमस्यापि समयः सप्तमशतकं नातिवर्तते। हर्षदर्शनसमये बाणः तरुण एवाऽऽसीत् इति बाणस्योक्तिरेव प्रमाणयति—"देव! दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि, का मे भुजङ्गता?" इति। अतो बाणस्य समयः सप्तमशतकस्य पूर्वार्द्ध एव।

एवमुत्तरकालीनकविसम्प्रदायः स्वकृतिषु अस्य महाकवेरभिधानं कृतिं च सादरमुदाजहार। यथा—अष्टमशताब्द्यामुत्पन्नो वामनः यः किल काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" इति उल्लिखति। नवम शताब्द्या उत्तरार्धे आनन्दवर्धनाचार्य्यः स्वीये ध्वन्यालोके कादम्बर्याः हर्षचरितस्य

द्रष्टव्यम्—१–The pages of Hiuen-Tsiang and his biographer give the latest information about king Harsha, who died at the end of 647 or the beginning of 648, not long after his distinguished guest's departure.

[Early History of India by V. A. Smith. 1908. P. 326]

च भूयो भूयो नामाभिदधौ। एवं कादम्बरीसारकर्तुः क्षेमेन्द्रेण स्वकीये "सुवृत्तितिलकाख्ये ग्रन्थे चर्चा व्यधीयत। नमिसाधुर्हि रुद्रटीयकाव्यालङ्कारस्य व्याख्यायां कथाऽऽख्यायिकयोर्भेददर्शनार्थं कादम्बरीहर्षचरितयोर्नामिनी निर्दिदेश। एवं दशमशताब्दीयः धनञ्जयोऽपि, तथैकादशखृष्टाब्दीयः भोजराजः सरस्वतीकण्ठाभरणे—"यादृक् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः" इति समुल्लिलेख। एकादशशताब्द्याः उत्तरार्धस्थः काश्मीरिकः क्षेमेन्द्रोपि स्वीयौचित्यविचारचर्चायां कादम्बरीस्थमार्यापद्यं—"स्तनयुगमश्रुस्नातमिति" 'जयत्युपेन्द्रः' इत्यादि पद्यञ्चोदाहृतवान्।

एवञ्चानेके उत्तरभाविनः विद्वांसः महाकवेरस्य यशो जगुः। यथा—राजशेखरः, नलचम्पूकारः, कीर्तिकौमुदीकारः, तिलकमञ्जरीकारः, त्रिलोचनः, श्रीकण्ठश्च। उल्लिखितानां मतानां समीक्षणेन सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्द्धे एव महाकवेः बाणस्य समयः इति स्फुटीभवति। नात्र सन्देहलवः।

कवेः कृतयः

"हर्षचरितम्"—इदं हि बाणस्य परमप्रसिद्धं कवित्वकलालङ्कृतं निरतिशय हृद्यमनवद्यञ्च गद्यमयं काव्यमष्टभिरुच्छ्वासैरुपनिबद्धम्। इयं खलु संस्कृतसाहित्ये अद्वितीया आख्यायिका[1] वर्तते। भाषाऽपि सुललितपदावलीसमलङ्कृता

द्रष्टव्यम्—१—तत्र कथाख्यायिकयोर्लक्षणे काव्यादर्शे—

"गद्यं तु गदितं द्वेधा कथा चाख्यायिकेति च।
कथा कल्पितवृत्तान्ता, सत्यार्थाख्यायिका मता॥"

अग्निपुराणे—"कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भविपत्तयः॥

प्रसादौजोगुणगुम्फिता मधुरमधुरा च वरीवर्ति। भाषाभङ्गया कविस्तात्कालिकैतिहासिक-सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक-रहस्यानां ख्यापनार्थं कदाचित् सुश्लिष्टश्लिष्टपदानि प्रयुङ्क्ते कदाचिच्च कोमलानि सरलानि च। क्वचित् प्रलम्ब-समाससम्वलितो वाक्यविन्यास एवाकर्षणविषयः, क्वचित् पदार्थविष्पष्टतया भव्यभावसमभिव्यक्तिः, कोमलकल्पना-कमनीयता, विचारवैशारद्यमेव च। ओजःप्रसादमाधुर्यपूर्णाऽनुप्रासमयपदविन्यासप्रयासोऽप्यस्य कवेः श्लाघ्यः।

किञ्चास्य महाकवेः पात्राणां चित्रणमपि विलक्षणमेव भांति, चकास्ति पात्राणां सजीवता च।

रोचिष्णुर्हास्यविलासः, मुमूर्षोर्नृपस्य वर्णनम्, यशोमत्याः करुणामयं दृश्यम्, अभ्यग्नि शलभस्य इव पतन्त्याः राज्यश्रियः वर्णनम्, सिंहराजदिवाकरमित्रस्योपदेशः, एवमादि किमपि हृदयावर्जकमतिपरिस्फुटं वर्णनचातुर्यं न कस्य सचेतसश्चेतश्चमत्करोति।

इतिवृत्तमये संस्कृत-साहित्ये गद्यकाव्यगणनाविषये तत्रभवान् बाणभट्टो महाकविरनामिकामध्यारोहति। कल्पनाचातुरी नूनं किमपि लोकोत्तरसौष्ठवमवगाहते। आख्यायिकेयं कान्यकुब्जेश्वरस्य महाराजहर्षवर्धनस्य चरितं कथावस्तुरूपेणोपन्यस्यति। निर्मलेऽस्मिन् कृतिकुड्ये कविरात्मनः प्रतिकृतिं नानावर्ण

भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णिकोत्तरा।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च यत्र साख्यायिका मता॥"

(३३७ श्लोक० १३-१५)

"तथापि नृपतेर्भक्त्याऽभीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्॥"

(हर्षचरितम्, श्लोक० १९)

विन्यासनिपुणया कूर्चिकोपमया लेखन्या चित्रीकरोति। अत्र बाणेन अब्रणो निजो वंशः समधिकोच्छ्वासद्वितयेऽपि वर्णयाञ्चक्रे। अनन्तरञ्च प्रभाकरवर्धनसूनुः "यशोमति" गर्भसम्भवः महाराजो हर्षवर्धनः वर्णनाय जगृहे। कवेः वृत्तान्तवर्णनानन्तरम् चतुर्थोच्छ्वासे राजकुमारयोः एवं तद्भगिन्या जन्मवर्णनम्। पञ्चमे राजकुमारयोः दिग्विजययात्रायाः, एवं प्रकारवर्धनस्य अन्तिमक्षणानां करुणं दृश्यम्, षष्ठोच्छ्वासे राज्यवर्धनस्य परावर्तनम्, ग्रहवर्म्मणो मृत्युरेवं राज्यश्रिय उद्धाराय राज्यवर्धनस्य प्रयाणम् तथा गौडेश्वरवधश्च वर्णितानि सन्ति। सप्तमे हर्षस्य दिग्विजययात्रायाः विजयस्य च वर्णनम्, अष्टमे राज्यश्रियः प्राप्तिः दिवाकरमित्रबौद्धभिक्षुणा सह समागमस्य निदर्शनम् इति कथासंक्षेपः।

यद्यपि कल्पनाबाहुल्यमस्ति निखिलेस्मिन् काव्ये तथापि न जहाति कुत्राप्यैतिहासिकमितिवृत्तम्। ऐतिहासिकदृष्ट्या तदानीन्तन्याः स्थापत्यकलायाः धार्मिक-सामाजिक राजनैतिक क्रियायाः व्यवहाराणां च सम्यक् ज्ञानं जायते अनेन काव्येन।

"ओजः समासभूयस्त्वमेतत् गद्यस्य जीवितम्" इति प्रचलितसिद्धान्तमनुसरन् बाणो गद्यकाव्यं निबबन्ध।

काव्यजुषां सहृदयानां रसिकानां मनोमोदाय नाममात्रमुदाह्रियते। यथा— हर्षचरितस्य निदाघवर्णनप्रसङ्गे :—"क्रमेण च खरखगमयूखे खण्डितशैशवे, शुष्यत्सरसि, सीदत्स्रोतसि, मन्दनिर्झरे, झिल्लिकाझांकारिणि, कातर-कपोतकूजितानुबन्धबधिरितविश्वे, श्वसत्पत्रिणि, करीषंकषमरुति,……दिनकरदूयमानद्विरददीनदानाश्यानदानश्यामिकालीनमूकमधुलिहि…………घर्ममर्मरितगर्मुति, दानजनितजगन्नीराजने रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले।" संस्कृतसाहित्ये ईदृक निदाघवर्णनं सर्वथा दुरापम्।

श्लेषमयवर्णनं यथा—यशोमत्याः मुखप्रक्षालनप्रसङ्गे—"मग्नांशुकपटान्त तनुताम्रलेखालांछितलावण्यकुञ्जिकावर्जितराजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलम् ।"

ओजोमयं पद्यबन्धं यथा—"दर्पात् परामृशन् नखकिरणसलिलनिर्झरैः, समरभारसंवाहनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भकूटविकटस्य बाहुशिखरकोशस्य वामः पाणिपल्लवः ।"

न केवलमोजः अन्यदपि यथा—"यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनी भवन्ति पितरः सन्तापानलस्य । हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्या" इति । कीदृक् यथातथ्यात्मकं वर्णनमिदमिति विभावयन्तु विचारकाः ।

पार्वती-परिणय-नाटकम्

केऽपि जनाः "पार्वतीपरिणयनाटकमपि[1] बाणस्य कृतिरूपेण स्वीकुर्वन्ति । परन्तु, अस्य नाटकस्य प्रणेता वामनभट्टबाणो नामैकः तैलङ्गदेशीयो वत्सगोत्रोत्पन्नः कश्चनासीत् । स खलु दाक्षिणात्यस्य राज्ञो 'वेमभूपस्य' वीरनारायणोपनामकस्य सभाकविरासीत् । असावेव कविः यः 'वेमभूपचरितम्' नाम काव्यमपि निर्ममौ । रचनादृष्ट्यापि नेयं रचना कादम्बरीकर्तुः बाणस्यापि तु कस्यचिदन्यस्यैव प्रतिभाति । अतो निश्चितं यत् नेदं रूपकं बाणस्य, अपि तु वामनभट्टबाणस्य ।

द्रष्टव्यम्—१—वाणी विलास प्रेस से प्रकाशित १९०६ इ० पार्वतीपरिणय नाटक की श्री र० व० कृष्णमाचार्य' की विस्तृत भूमिका । तथा 'श्रीजयकिशोरनारायण सिंह साहित्यालङ्कारकृत हिन्दीलेख में "महाकवि बाण तथा पार्वतीपरिणय" ।

(माधुरी सं० १९८८, पृ० २८९-२९४)

मुकुटताडितकम्

मुकुटताडितकं नलचम्पूटीकाकृता चन्द्रपालेन वाणस्य कृतिरूपेण स्वीकृतम्—"यथाह वाणभट्टः मुकुटताडितके—"

आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव ।
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव ।
विभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्या सभा ॥"

हन्त ! परन्तु संस्कृतसाहित्ये अस्य ग्रन्थस्योपलब्धिरेव नास्ति, का कथा रचनाविषये ! ऐतिहासिका अपि न मन्यते अस्य कवेः कृतित्वेन ।

चण्डीशतकम्

स्रग्धरावृत्तेन निबद्धं शतपद्यात्मकमतिरमणीयमिदं ग्रन्थरत्नम् बाणस्य । श्रूयते यत् कदाचित् श्यालस्य मयूरस्य शापवशात् बाणः कुष्ठी सञ्जातः । अतो नैरुज्यमाप्तुं जगज्जनन्या भगवत्या दुर्गायाः स्तुतिं श्लोकशतेन कृत्वा दिव्यवर्णोऽजायत । गीतकाव्यस्य शोभनमुदाहरणमिदं ग्रन्थरत्नम् कवेः । अस्मिन् श्लोके कीदृशमस्ति कलाचतुर्यं शब्दसौन्दर्यञ्च—

"विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नम्,
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥"

पदानि चात्र नृत्यत्प्रायाणि ओजः पुष्णन्ति । भवानीविषयके कविनिष्ठे भावे इन्द्रादिनिष्ठा भयत्रासशङ्कादयः गुणीभावं व्रजन्ति । इति एकमेवोदाहरणम् काव्यकलानिदर्शकं कवेः ।

कादम्बरी

गद्यकविकुलललामभूतो भरतभूमण्डलमण्डनायमानः गद्यबन्धधुरन्धरो महाकविः बाणो नाम। अस्य काव्यं संस्कृतसाहित्यगद्यनभःप्राङ्गणेऽम्बरमणिरिव चकास्ति। कादम्बर्याः कथायाः[१] पर्य्यालोचनेन ज्ञायते यत् अस्याः कथानकं "गुणाढ्यविरचित बृहत्कथातः उद्धृतमस्ति। कथायां स्थले स्थले नवनवा वाक्यरचना प्रयोगाश्च विमर्शकृतां सहृदयानां मतिमुद्भासयन्ति। भाषाऽपि प्रयुक्ताऽस्मिन् काव्ये मनोहरा अवसरे क्लिष्टा च ललितललितैः पदविन्यासैरलङ्कृता श्लाघ्या सुतरां रञ्जयति रसिकवराणां मनांसि सर्वत्र। काव्यमिदं न केवलं बाणस्य अपि तु समस्त-संस्कृतवाङ्मयस्य अत्युत्कृष्टतमं निधानम्। रचनाचातुर्येण कल्पनासौन्दर्येण च पद्यबन्धे कालिदासो यथा गरिष्ठो वरिष्ठश्चैवं गद्यकाव्यगुम्फने कविवरो बाणोपि अनामिकामध्यारोहति। पदे पदे वाग्वैदिग्ध्यम्, अर्थगाम्भीर्यम् कल्पनाचातुर्यं च दरीदृश्यते। यदि गद्यं कवीनां निकषोपलम्, तर्हि बाणस्य कादम्बरी शतशः कषितापि लावण्यं

द्रष्टव्यम्—१—यथा-कथाख्यायिकयोर्लक्षणे काव्यादर्शे—

"गद्यं तु गदितं द्वेधा कथा चाख्यायिकेति च।
कथा कल्पितवृत्तान्ता, सत्यार्थाख्यायिका मता॥"

अग्निपुराणे—"श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्॥

(अ० ३३७-श्लो० १६-१७)

परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्भकैः क्वचित्।
सा कथा नाम, तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्॥"

The Kadambari belongs to that class of prose composition which is known as katha or romans"

Kalis—(Introduction to Kadambari. pp. 29)

न जहात्यपि तु सुतरामेव सुवर्णमिव देदीप्यते। अस्य भावाभिव्यक्त्या समीचीन-शैल्या म्रदिष्ठया पदपरिष्कृत्या च न कोऽपि साम्यङ्कर्तुं शक्नोति। तथा चेयमुक्तिः —
"बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वमिति सत्यम्।

यथा भग्नमपि पुष्पं ख्यापयति विटपस्य रसमाधुर्यं तथैवापूर्णापि कादम्बरी प्रकटयति कवेरान्तरिकम् निखिलगुणौघम्। कादम्बर्य्याः कथायाः प्रशंसा-प्रसङ्गे कविः स्वयमेव कथयति—"धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा" इति।

अस्याः कथानके घटनोपघटनानां वर्णनोपवर्णनानामुपगुम्फनं समुपजनयति ईषत् काठिन्यम्, परन्तु कथायाः नैसर्गिके प्रवाहे न कुत्रापि दृश्यते लेशतोऽपि क्षतिः।

जन्मत्रयरहस्यख्यापिनी अस्यैका कथाऽपरामपरां चान्याम् कथामनुषीव्यति। यथा—विदिशासम्राट् शूद्रकः एकदा पञ्जरबद्धमेकम् शुकं चाण्डालकन्ययोपहृतं ददर्श। पञ्जरस्थः शुकः स्वजन्मनोऽक्षतवृत्तान्तं तस्मै राज्ञे शूद्रकाय न्यवेदयत् "मदीया माता मे जन्मकाले एवोपरता। यदाहं पक्षहीन एवासम् तदैव तरुकोटर-वर्तिनं मे पितरमपि कोऽपि लुब्धको व्यापादयामास। लुब्धकहस्तात् परिभ्रष्टः गत[प्राय]प्राणोऽहम् महामुनेर्जाबालेरन्यतमशिष्येणाश्रममुपानिन्ये। शोचनीयां माम-कीनां स्थितिम्परिभाव्य मुनिः कथामभिधातुं प्रारभत यत् बभूव कोऽपि तारापीडो नाम नृपतिरुज्जयिन्याम्। तस्य धर्मपत्नी वि लासवती, पुत्रश्चन्द्रापीडः, अमात्यो शुकनासश्चेति। शुकनासस्य पुत्रो वैशम्पायनोऽभूत्। चन्द्रापीडो वैशम्पायन-श्चोभौ बालौ प्राप्तवयसौ गुरुकुले शिक्षामलभेताम्। काले प्राप्तवयसं राजपुत्रं विनिनीषुरमात्यवरो शुकनास उपदिदेश। उपदेशावदातचेताः स हयमारुह्य दिग्विजयाय प्रतस्थे। गन्धर्वमिथुनमनुगच्छन् अच्छोदनाम्नः सरसोनुतटम् तप-श्चरन्तीम् महाश्वेतामपश्यत्। तत्रैव कपिञ्जलसहचरस्य विरहविधुरस्य पुण्डरीकस्यो-परमं पुनरपि समागम इतिविषयश्च भाषितं शुश्राव। प्रसङ्गतः कादम्बरीवृत्तान्त-मुपलभ्य साक्षाज्जातायां तस्यां द्वयोरपि मानसजन्मनोऽभिलाषस्याङ्कुरः प्रचयं

लेभे। कार्यवशतः परावृत्ते चन्द्रापीडे तद्वियोगपरवशा कादम्बरी भृशं विव्यथे। पत्रलेखा कादम्बर्याः वृत्तान्तमादाय चन्द्रापीडमुपाजगाम। एतावदेव कादम्बरीपूर्वार्द्धमुपायनीकृत्य कविवरो बाण उपरराम।

इतोऽग्रे पितरि परलोकमुपेयुषि पुलिन्द[1] (भूषण) भट्टेन उत्तरार्धं व्यरचि। एवं कादम्बर्या निखिलान्येव पात्राणि सजीवानीव मानसपटलेऽमररेखाम् सृजन्ति। प्रजानुरक्तः पराक्रमी शूद्रकः, सौम्यो युवा हारीतः, वदान्यो नृपतिः ताडापीडः, राजपुत्रश्चन्द्रापीडः, ज्ञानरत्नाकरो जाबालिः, आदर्शोऽमात्यः शुकनासः, स्नेहपरवशोऽपि कठोरः कपिञ्जलिः, कामपरवशः पुण्डरीकः, परिशुद्धवसना तपस्विनी महाश्वेता, सरसहृदया कमनीया कादम्बरी चैतानि पात्राणि पाठकानां सहृदयानां चेतस्सु कामपि लोकोत्तरां चमत्कृतिपरम्परां सृजन्ति।

आस्वाद्यतां तर्हि रसिकैः दिङ्मात्रम्—

"वशीकर्तुकामं काममिव सनियमम्, हर्षनयनजलकणनीहारिणि, विपद्विहारिणि, मनोहारिणि, कर्पूरधूलिधूसरेषु मलयजरसलवलुलितेषु वकुलावलिवलयेषु स्तनेषु" इति।

तथा च शुकनासोपदेशे लक्ष्मीविषये यथा—"इयं हि लक्ष्मीः उदारसत्त्वममङ्गलमिव न बहु मन्यते, सज्जनमनिमित्तमिव न पश्यति, अभिजातमहिमिव लङ्घयति, शूरं कण्टकमिव परिहरति, दातारं स्वप्नमिव न स्मरति,......"उन्नतिमादधानापि

द्रष्टव्यम्—१-"According to Dr. Bulher the name of Ban's son is Bhushanabana'. According to others—Bhushan Bhatta. In some mss—Kada. It is given as Pulinda or Pulina. Dhanpata in his Tilakamanjari

"केवलोपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किम्पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्दकृतसन्निधिः॥"

By M. R. Kale (Introduction to Kadambari)

नीचस्वभावतामाविष्करोति, तोयराशिसम्भवाऽपि तृष्णां सम्वर्धयति" ।........"अमृत-सहोदराऽपि कटुकविपाका, पुरुषोत्तमरताऽपि खलजनप्रिया" ।"

अपि च मदनव्यथापीडितं पुण्डरीकमुपदिशन् कपिञ्जलो यथा "सखे पुण्डरीक ! नैतदनुरूपं भवतः, क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः, धैर्यधना हि साधवः, किं यः कश्चित् प्राकृत इवात्मानं विक्लवीभवन्तं न रुणत्सि ? क्व ते तद्धैर्यम् ? क्वासाविन्द्रियजयः ? निरुपकारो गुरूपदेशविवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, निष्कारणं ज्ञानम्, यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषीक्रियन्ते, प्रमादैश्चाभि-भूयन्ते" इति ।

अलङ्कारविषयेऽपि प्रायस्समेषामलङ्काराणां प्रयोगः कृतः कविना स्वकृतौ तथा-प्येतेषां ललितललितानामलङ्काराणामुदाहरणं प्रस्तूयते—"तथा च यस्य दिष्टिवृद्धि-मिव शुश्राव, उपदेशमिव जग्राह, मङ्गलमिव बहु मेने, मन्त्रमिव जजाप, आगममिव न विसस्मार चरितं जनः ।" अहो लावण्यमुपमायाः ।

यथासम्भवश्लेषयुक्तपरिसंख्यायाः प्रसङ्गे—"यस्मिंश्च राजनि गिरीणां विपक्षता, प्रत्ययानां परत्वम्,......जलधराणां चापधारणम्, तैक्ष्णयमसिधाराणाम्, ध्वजाना-मुन्नतिः",....देवतानां यात्रा, कुमारस्तुतिषु तारकोद्धरणम्, असिपरिवारेषु कलङ्कयोगः, कामिनी-कुचपत्रभङ्गेषु वक्रता, अक्षक्रीडासु शून्यगृहदर्शनम् पृथिव्यामासीत्" ।"

"अतिशयोक्तिविषये यथा—"अथ परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य खलु रमणीयानामन्तः, दृष्टः आह्लादनीयानामवधिः,....वीक्षिता मनोहराणां सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतजनानां परिसमाप्तिः, विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः" । इति ।

"चन्दनविलेपनामनङ्गरागिणीञ्च बालां मन्मथजननीञ्च मृणालिनीमभ्यर्थित-तुषारस्पर्शाञ्च कादम्बरीं व्यलोकयत्" (विरोधाभासः) । अहो ! कीदृशी प्रतिभा मदनपीडितकादम्बरीवर्णने महाकवेः ?

प्रकृतिनिरीक्षणं कला च :–

महाकवेरस्य कृतौ प्रकृतिरुन्मिषति, निमिषति, माद्यति, पुलकमातनोति, नयने मीलयति, भावं तरङ्गयति, आत्मनं विवृणुते, रमते, विस्मयते, कारुण्यमातनुते, कोपं नाटयितुमुत्सहते, घृणां विवासयति, शान्तिम्प्रतिष्ठापयति । कला च क्वचन शमम् विधूयाभिनेतुमभिप्रवृत्ता नटीव परिकरं बध्नाति, अपूर्वमेकावलीं परिधत्ते, अलौकिक-रमणीयैरात्मानमुपमिमीते, गात्रमुत्प्रेक्षते, स्वभावोक्तिमपह्नुवानाऽतिशयोक्तिं तनुते । किं बहुना अक्षयदीपकमालाशतनिचिते यदीये परिवेषे मीलितलोचनैः रसिकैरलौकिकी समस्तरत्नसङ्करमयी काप्यद्भुता संसृष्टिरिति, रसपीयूषमयः कोऽपि नूतनः सरस्वान् इति, शतचन्द्रं किमपि नूतनं नभस्तलमिति मुहुर्मुहुरामृश्यते । एतदन्तर्दृष्टि-लक्ष्यीभूतोऽणुरप्यास्पन्दते । शृङ्गारे, भयानके, शान्तोपदेशवारिणि, उच्चावचारण्य-परिवेशे, सर्वत्रैव अप्रतिहतगतिरस्य दृष्टिः चैतन्यमध्यासयति । यथा विन्ध्याटव्यां भयं रूपितं तथा जाबालेराश्रमपदमपि शान्तेर्निधानमुपन्यस्तम्, यत्र कपयोऽपि तापसेभ्यो यष्ट्यवलम्बं वितरन्ति । यथा "परिचितशाखामृगकराकृष्टयष्टिनिष्का-श्यमान-प्रवेश्यमानजरदन्धतापसम्, ऋषिजनार्थमेणकैः विषाणशिखरोत्खन्यमान-विविधकन्दमूलम्,...उपजातपरिचयैः कलापिभिः पक्षपुट-पवनसन्धुक्ष्यमाणमुनि-होमहुताशनम्" इति ।

इत्थमाश्रमस्य प्रभातस्य सन्ध्यायाः ऋतूनां सरसश्च वर्णने कविः समानं प्रतिभा-नैर्मल्यं बिभर्ति । अवलोक्यतां तावत् कविः कीदृशीं काव्यकलाचातुरीं व्यक्ती-करोति प्रयुङ्क्ते च कियल्ललितानि पदानि—"एकदा नातिदूरोदिते नवनलिनदल सम्पुटभिदि किञ्चिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति मरीचमालिनि ।"

अपि च—यौवनमिवोत्कलिकाबहुलम्, षण्मुखचरितमिव श्रूयमाणक्रौञ्च-वनिताविलासम्, भारतमिव पाण्डवधार्त्तराष्ट्रकुलकृतक्षोभम्, कद्रुस्तनयुगलमिव नागसहस्रपरिपीतपयोगण्डूषमच्छोदं नाम सरः ॥"

पुनः —"दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्या" इति सन्ध्याङ्कपिलया उपमायन् कविः कस्यान्तरङ्गं नानन्दतरङ्गितं करोति ।

"उर्ध्वमुखैरर्कविम्बविनिहितदृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरः, विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत⋯⋯⋯विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनी-वनानि,⋯⋯दिवसावसाने तपोवनतरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत" । अहो ! वस्तुतः रचनाचातुरी न कदाचिदौचित्यमतिशयाना दृश्यते ।

शैली काव्यसुषमा च :—

पाञ्चालीप्रियस्य वाणीवरदपुत्रस्य बाणस्य शैली त्रिरूपा । समासबहुला, अल्पसमासा, समासरहिता चेति । सेयं त्रिवेणी क्वचन गगेव सुभगसलिलावगाहा निसर्गविदाता च. क्वचन शमनस्वसेव निरन्तरमसीलिप्ता⋯दुष्करप्रवेशा च, क्वापि सरस्वतीवान्तःसलिला प्रकटपुण्यपीयूषा च ।

तथा हि—

विन्ध्याटवीवर्णने :—"उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेवानवरतमेला-वनम्,⋯⋯⋯प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता चेति ।"

वसन्तवर्णने यथा :—"कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मधुकर-कुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु मधुमासदिवसेषु ।"

द्रष्टव्यम्—१—"चूर्णकमल्पसमासं दीर्घसमासमुत्कलिकाप्रायम् ।
समासरहितमाविद्धं वृत्तभागान्वितं वृत्तगन्धि ॥"
बाण की रचना में वृत्तगन्धिशैली का प्रयोग नहीं है ।

एवं च नवयौवनवर्णने :—"क्रमेण कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम् ।"

एतदादिषु श्लेषगुम्फप्राचुर्यम्परिभाव्य केचनालोचकधुरीणम्मन्या:[1] हिंस्रपशुवर्ग-संकुलितमरण्यमेतत् यत्र शब्ददंदशूकः पदे-पदेऽन्तर्निलीय स्थितः समवरुणद्धि मार्गम् । मन्ये काव्यरत्नमिदं श्लिष्टचम्पककुसुमस्रगित्यालोचकमधुकराः नाभिवर्तन्ते, गुणरज्जुसन्दानितमिति निरङ्कुशाः नाद्रियन्ते । आरामम् महारण्यम् श्लेषं दन्द-शूकम्मन्वानानामाक्षेपपरा उक्तयः साहित्यनिकषोपलीभूतैः भावकैः सुधीभिरेव समीक्ष-णीया । "जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता चेति" गङ्गेव वसुजन-न्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला" इत्यादिषु श्लेषगुम्फनमात्रमेव नाभिलषितमासीत् । किन्तु श्लेषसहस्रैः किरणसहस्रैः जगदिव भारतीयसंस्कृत्यन्तर्वर्तिभिः दिव्यज्योति-र्भिस्सीतागङ्गादिपावनचरितैः "रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवदिति काव्य-पीयूषमयेनोपदेशेन जगत् पावितम् ।

सेयं त्रिपथगामिनी शैली (यद्) रत्नशिलानिर्मितं दृढतमं कविकृतिवर्त्म । आचार्यैः "ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्" इति निरणायि । अत्र बाणः परिचस्कार—

"नवोऽर्थो[2] जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥ "हर्षचरितम्"

द्रष्टव्यम्—१–Waber criticised Ban's style as "An Indian wood where progress is impossible through the 'under-growth until the traveller cuts out a path for himself; and where even then he is confronted by malicious wild beasts in the shape of unknown words to terrify him." —Waber

द्रष्टव्यम्—२–हर्षचरितम् ।

अनुससारचैवंविधं गद्यवर्त्म कविः ।

पुनः तदीयैवोक्तिरेषा—

[1] "हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयोः महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव" ॥

इति प्रचलितश्लेषवर्त्मापि परिष्कृतं चकार । यथा—"यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु" इत्यादि । अत्र रागादयः श्लिष्टा अपि स्पष्टार्थाः ।

एवमुत्तरकालीनलेखका अपि बाणमनुचक्रुः । धनपालस्य तिलकमञ्जर्यां कादम्बर्याः अत्यधिकः प्रभावो दृश्यते । दशमशताब्दीयगद्यचिन्तामणेः कथानकं बाणस्य कादम्बरीमनुसरति, परन्तु न तादृक् तत्र साफल्यम् । पञ्चदशशताब्दीयं 'वेमभूपालचरितम'पि हर्षचरितस्य प्रतिकृतिरूपेण दृश्यते ।

युक्तमेवोक्तं केनापि बाणस्य काव्यविषये—

"श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

कादम्बर्याः रसादि :-

कादम्बरीमहाकाव्यस्य नेत्री कादम्बरी, उदात्तो नायकः चन्द्रापीडः, तथा विप्रलम्भशृङ्गारोऽङ्गी रसो विद्यते ।

द्रष्टव्यम्—१ कादम्बरी ।

पात्राणां प्रतीकात्मकता :—

पर्यालोचनतः परिज्ञातं भवति यद् कादम्बर्याः निखिलमपि कथावस्तु किमपि निश्चितमाध्यात्मिकतत्वमभिव्यनक्ति। यत्र सर्वाण्येव पात्राणि प्रतिनिधीक्रियन्ते।

शूद्रक इति किन्निमित्तमद्भुतनामोपात्तम्? एतस्य परिषदि पञ्जरस्थः शुकः कस्य प्रतीकभूतः? चन्द्रापीडः कम्प्रतिनिदधाति, किन्नामाच्छोदसरः? महाश्वेता किमिङ्गितीकरोति? चन्द्रायुधोऽश्वः कं सङ्केतयते, जाबालिपुण्डरीकौ क्व पर्यवस्यतः, कथमनेकजन्मसंबंधिवृत्तकुसुमं एकस्यां महत्यां स्रजि अनुस्यूतम्। केयमधिमाल्यमणिरिव संग्रथिता बाणेन या कादम्बरीति कथामिधां दधौ इत्यादि-विषयेषु गूढपर्यालोचनमपेक्ष्यते। इह संक्षिप्य विविच्यते।

शूद्रकः —शूद्रक इति योगबलात् शुचा द्रवतीति व्युत्पत्तेः शोकाभिभूतस्य वासनाजालपतितस्यानात्मविदो ग्रहणमत्राभिप्रेतम्। शूद्र एव शूद्रकः। यथा च--ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये—"शुचमभिदुद्राव, शुचा वाभिदुद्रुवे, शुचा वा रैक्कमभिदुद्राव इति शूद्रः[1]।" शोकग्रस्तः मोहमापद्यते। मोहान्धो विषयासक्तो भवति स एव शूद्रनाम्नाऽभिधीयते।

महाश्वेता—सर्वशुक्ला गौरी महाश्वेता प्रज्ञायाः प्रतीकत्वमञ्चति। सरस्वत्यपि सर्वशुक्ला गौरीतिपदेनाभिधीयते। महाश्वेताऽच्छोदसरसस्तटे पुण्डरीकरूपेण दिव्येन ज्योतिषा सह समागमाय तपश्चरति।

पुण्डरीकः बुद्धेः परमाधिष्ठानं विज्ञानतत्वस्य प्रतीकत्वमियर्ति। महाश्वेता या खलु प्रज्ञारूपा तया सह तस्य (पुण्डरीकस्य) ज्ञानतत्त्वस्य सङ्गमनमावश्यकम्। यतो हि—अखण्डज्ञानज्योतिषः प्रज्ञायाश्च सम्मेलनमेव पुण्डरीकमहाश्वेतयोः प्रणयबन्धनम्।

द्रष्टव्यम्—१ ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्यम्—"अपशूद्राधिकरणम्" (१-३-३४)

वैशम्पायनशुकः —वैशम्पायनशुकः परतः प्रकाश्यज्ञानस्य प्रतीकभूतः, यः अभ्यासबलेनैव किमप्यभिधातुं क्षमते न खलु स्वप्रतिभाबलेन । अतो यदा शुकः जाबालर्षेः उपदेशमाकर्णयति तदा तस्मिन् दिव्यज्ञानमागच्छति । चिन्तयति च सर्वप्रथमम्—"अहो ! प्रभावस्तपसाम्" इति

अच्छोदसरः —अच्छोदसरः भावसृष्टेरादिकारणम्, अप एव ससर्जादौ तासु-बीजमवासृजत्" (मनु०) मानससरसः प्रतीकम् यतः भावसृष्टिरुत्पद्यते । वैदिक-समाम्नाये पारमेष्ठ्यसमुद्र इति, बौद्धशास्त्रे "अनवतप्तह्रदः" "अनोतत्तदह" इति च व्याह्रियते । यस्य तोयसन्निधानेन कामरागस्योष्णता न जागर्ति । यदिदं भावजलं सुधावच्छीतलमतीतमृत्युप्रभावं च वर्तते । कादम्बर्यां कामनिष्ठवासनातत्व-परिशोधनार्थमेव सर्वाणि पात्राणि सरस्तीरमानीयन्ते ।

इन्द्रायुधोश्वः —इन्द्रायुधोऽश्वः मनोमयस्य चन्द्रापीडस्य वाहनम् । "चन्द्रमा मनसो जातः" इन्द्रः मनसो देवः यथा—प्राणोऽस्मि प्रजात्मा "प्रज्ञामात्रा प्राणमात्रा भूतमात्रा चेति मात्रात्रितयेनैव आत्मतत्वं प्रकाशते । प्रज्ञामात्रायाः देवः इन्द्रः, इन्द्र एव मनः, मनसः वाहनं कामसङ्कल्पः, कामसङ्कल्प एव इन्द्रायुधोऽश्वः । समुद्रमन्थ-नात् चन्द्राश्वौ व्यजायेताम् । इन्द्रायुधमश्वं दृष्ट्वैव चन्द्रापीडः स्मरति" असंशयमनेनापि महात्मना केनापि शापभाजा भवितव्यम् । आवेदयतीव मदन्तःकरणमस्य दिव्यताम् इति ।

कादम्बरी—मनसोऽप्रतिहतशक्तिसम्वलितसङ्कल्पस्वरूपः काम एव सृष्ट्याः रेतः विश्वमूलञ्च । तदिदं कामतत्त्वमेव कादम्बरी । यथा—

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि, मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्" (ऋक्) ।

कामोऽस्ति सुरा, कादम्बरी काममयी सुरा । सोमश्चन्द्रापीडः, सा चेयं कादम्बरी मदिरायाः पुत्री । पारमेष्ठ्यसमुद्रात् एव सुरासोमौ जन्म लेभाते । सन्तप्ता सती सुरा सोमा भवति सोमस्य सुराभावः तपसा (सन्तपनेनैव) शुद्ध्यति । अखिलमिदं

जगत् कामतत्वमयम् । अत एवोक्तम् वाणभट्टतनयेन्न पुलिन्दभट्टेन—"कादम्बरी-रसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्" इति ।

अखिलमिदं जगत् काममयम् । तस्य कामस्य पूर्वरूपस्य (प्रेमरूपस्य) अपरस्वरूपस्य (वासनारूपस्य) च चर्चाङ्करोतीयं कथा । अतः कविरस्याः कथायाः नाम कादम्बरी इति दत्तवान् ।

कादम्बरीनामकरणेऽपरमपि रहस्यमस्ति । यत् गुप्तयुगे 'कादम्बरी' नाम कापि सुरातिप्रसिद्धा प्रिया चासीत् । अतो ज्ञायते यत् कादम्बरीसुरावत् प्रसिद्ध्यर्थमस्याः कथाया अपि नाम कादम्बरी इति दत्तं कविना ।

कथाया रहस्यम् :—

भारतीयस्वर्णयुगस्य संस्कृतेः सभ्यतायाश्चोदन्तख्यापकौ कविप्रवरौ कालिदास-वाणावास्ताम् । जगद्धिताय कविवरावेतौ कान्तासम्मिततयोपदेशदिशा स्वकृतिषु कुमारसम्भवमेघदूताभिज्ञानशाकुन्तलहर्षचरितकादम्बरीत्यादिषु काव्यग्रन्थेषु संस्कृति-सन्देशभरसुपदिदिशतुः ।

सामान्यतः सृष्टेः विशेषतो मनुष्याणां महती समस्या 'काम' एवास्ति । स चायं कामः वासनामयस्सन् सर्वानर्थमूलम् इति तस्य शमनोपायाः आहित-गौरवेणाभिव्यञ्जकमयेन कल्पनाचातुरीशतेन प्रदर्शयाञ्चक्रिरे ।

स्वर्णयुगस्य प्रतिनिधीभूतौ कविवरौ गीतावाक्यम् वीजरूपेण ध्यायन्तौ—

"ध्यायतो विषयान्[१] पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ॥

द्रष्टव्यम्—१ गीता – (अध्याय २)

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशात बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥" इति ।

काव्यानि निर्माय गीतानुसारमेव जनेभ्यो सन्देशं प्रायच्छताम्—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ इति

कविभ्याम् स्वकाव्यानां वीजमंत्रं गीतावाक्येभ्यः परिगृह्य उपदेशोऽदीयत ।

प्रेमवासनाभेदेन कामो द्विधा विभक्तात्मा । प्रथमो विशुद्धप्रेमात्मकः अपरो वासनादुर्विदग्धः, प्रथम ऊर्ध्वगमनहेतुः, अपरो वासनारूपः निरयहेतुः, एको नित्यः, अपरोऽनित्यः, एकः मोक्षकारणम्, अपरो बन्धकारणम्, एकस्य परिणतिरानन्देऽपरश्च शोके पर्य्यवस्यति । एवं भौतिकवस्तुषु आसक्तिरेव वासना उच्यते । वासनाभुजगीदष्टो जनो नूनमेव कदाचिच्छापभाजनं भवति । अभिशप्तजनानां समुद्धारस्तपसैव सम्भवतीत्यभिव्यज्यते कविद्वयकृतिषु ।

प्रथमं शाप्तस्य कीदृग्महत्त्वमस्ति कालिदासकृतिष्विति परिभावयन्तु धीधनाः । शाकुन्तले—यौवनमदविह्वला शकुन्तला तपःप्रतीकं तपोनिधिं दुर्वाससम् विस्मृत्य शापमाप्नोति—

"विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोनिधिं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितो········ इति ।

पुनः तपःपूतात्मा पतिमाप्नोति । अतः कविरुपदिशति—

"अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः" इति ।

मेघदूते—यक्षोऽपि रागान्धो भूत्वा स्वाधिकारच्युतः शापभाग्भवति । रामगिर्याश्रमे तपश्चरित्वा परिशुद्धिं लभते । एवं पार्वत्यपि स्वीयां भौतिकीं सौन्दर्य-

शोभां विनिन्द्यैव शिवतत्त्वमाप्नोति। कविः शिक्षयति च—"अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः" इति। अतः पार्वती यदा सौन्दर्यवासनां[1] परित्यजति तदैव पार्वतीस्वरूपा भवति शिवा च भवति।

एवमेव बाणस्य कृतिष्वपि दृश्यते शापस्य तपसश्च महत्वम्। बाणस्य हर्षचरितेऽपि सरस्वती दुर्वाससा अभिशप्ता भूलोके समागच्छति एवं तपसा यदा परिशुद्ध्यति तदैव देवलोकमायाति।

तथा कादम्बर्याः कथाया अपि मूलबीजं "शापतपसी" एव। वासनातिमिरान्धो वैशम्पायनोऽपि महाश्वेतया सह मिथ्याचारं चिकीर्षन् शापेन तिर्यक्योनिं भजते। दिव्यप्राणी चन्द्रापीडोऽपि वासनावशतः गभीरे जन्मत्रितयावर्ते निपपात शूद्रकताञ्च प्रापत्। कविश्चात्र चन्द्रापीडमुखेन वाचयति कामविषये—"मनोव्यामोहकारी कोऽपि शाप एवापर इति। कथाया अनेकजननवृत्तान्त प्रवाहे शापतपसी नितरामेवौचित्यमादधाते।

निष्कर्षतां नीयते यत् कान्तासम्मिततयोपदेशदिशा वासनामयं कामतत्वं तपसा परिशोध्य जननान्तरसौहृदम् "सत्यं शिवं सुन्दरमि"तिस्वरूपे निसर्गावदाते निरस्तवासने विशुद्धे प्रेमतत्त्वे पर्यवस्थाप्यते इति।

भगवति! तव तुष्ट्यै पुण्यवद्भिस्सुधीभिः,
अवचितकुसुमेऽस्मिन् कानने रिक्तसारे।
चरणकमलसेको दीयतेऽकिञ्चनेन
नयनपुटसमुत्थं तुभ्यमानन्दवारि॥

द्रष्टव्यम्—१—"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता" इति।

(पञ्चमसर्गः)

श्रीसरस्वत्यै नमः

महाकवेर्बाणभट्टस्यावतारणम्

सर्वतो व्यापिनि विशदेऽविच्छिन्ने संस्कृत-वाङ्मयाकाशे यत्र कविकुलकमलेभ्यो महाकविः कालिदासः सूर्य्यायते, तत्रैव कमलिनीभ्यः कविता-खेचरचक्रवर्त्ती कवि-शिरोमणिर्बाणोऽपि चन्द्रायत एव ।

याभ्यां कवितल्लजाभ्यामज्ञानतिमिरावृतं संस्कृत-वाण्या मुखमण्डलमुद्भास्य सहृदयमानसपूजास्पदयोग्यं प्रेमभाजनं सभाजितम्, मातृ-मातृभूमिभ्यामपि प्रोन्नते सिंहासनेऽनुष्ठापिता सरस्वती शश्वदाराधिता च । न हि ताविमौ संस्कृत-साहित्य-रस-लव-स्पर्श-मुपलभ्य कोऽपि जनो न विजानीयात् ।

यद्यपि संस्कृत-गद्य-साहित्यस्य विकासे कृष्णयजुर्वेदस्य महत्त्वं सर्वाधिकं मूर्द्धन्यञ्च वर्त्तते, गद्याधिक्यादेव च तस्य कृष्णत्वमिति, तथापि तादृशस्य गद्यकाव्यस्य सकलजनमानसाऽऽवर्जनसामर्थ्यं महाकविबाणभट्टालोकोद्भासितमेव । रात्रिरूपतया तमःपर्य्याये कृष्णत्वे गद्ये सत्यपि सोमरूपतया बाणस्य स्निग्धाऽऽलोकैः समुद्भासनाद् आनन्दमयत्वमेव तस्य । अतः 'कविता-कमलिनी-कलाधर' इति बाणस्याऽभिख्याऽप्यन्वर्थ-संज्ञतां वहति । किं बहुना ! 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ती'ति यत्तस्य काठिन्यं नीरसत्वञ्च व्यनक्ति, तदनेन महाकविना निर्मूलितं मिथ्यापितञ्च वचः । अपि च—साहित्यिकपर्य्यालोचकस्य कस्यापि दृष्टिकोणे महाकवेः कालिदासस्य काव्यजगत्परम्पराया यदि क्वचिद्वास्तविकं स्फुरणमभूत्तर्हि भर्तृहरेः शतकत्रये, महाकवेर्बाणस्य अप्रतिमवाण्यां वा । अत्रापि—भर्तृहरिः स्वकीयाया निर्वेदसाधनायाः कारणाद् मार्गाऽन्तरमेव परिपुष्णाति । महाकवि-र्बाणस्तु पुनः शुद्धायाः साहित्यसरण्याः समुपासनापरत्वात् कालिदासीयां परम्परां

यथार्थतः परिपुष्णन् समुद्भासयति। कोमल-कान्त-पदावली-कौमुदी कमनीयोऽयं कथङ्कारं नाप्नुयात्कविता-कुमुद-कलाधरत्वमहिमानमिति विमृशेल्लिनं कृतधियाम्।

परिचयः

प्रायः संस्कृतकवीनामेषैव सरणिरासीद् यत्ते स्वकीयासु कृतिष्वेव आत्मनो व्यक्तिं जीवनञ्च मन्वते स्म। विश्वबन्धुत्वसिद्धान्ते विश्वासमाधाय जातेर्वंशस्य स्थानादेर्वा महत्त्वं नोपगच्छन्ति स्म, यशःशरीराऽनश्वरत्वमास्थाय पार्थिवे नश्वरे कलेवरे नातिष्ठन्ते स्म। अत एव महाकविर्बाणः स्वयमाह—

'यशसा स्थातव्यं लोके न वपुषे'ति।

अत एव प्रायः समेषां संस्कृत-साहित्योद्भासन-प्रवण-रत्नप्रवराणां परिचयान्वेषणाय दृढप्रमाणस्य स्थानेऽनुमानं कल्पना-प्रदीपो वा शरणी करणीयताम् आपद्यते। यद्यप्येतस्य नियमस्य महाकविर्बाणोऽपि नाऽपवादरूपस्तथापि सन्तोषस्यायं विषयो यदयं स्वकालविषये न तादृश उपेक्षापरो यादृशोऽन्यत्र विषयें।

समयः

महाकविरयं स्थाण्वीश्वर(थानेश्वर)सम्राजो हर्षवर्द्धनस्य सभा-पण्डित आसीत्। यथाऽसौ स्वयमेव 'हर्षचरिते' स्पष्टीचकार। एतावता तत्कालीनत्वेऽपि विशिष्य ज्ञातुमन्तरङ्गो बहिरङ्गो वोपाधिरेव समाश्रयणीयो भवति। सम्राजो हर्षवर्द्धनस्य शासनव्यवस्थादिकं विशिष्य वर्णयिता ह्वेनसाङ्गनामा चीनभवो देशाटनव्यसनः सप्तम्याः खृष्टशताब्द्या एकोनत्रिंशदुत्तरशतषट्कतमाऽब्दतो द्वाचत्वारिंशदुत्तरशतषट्कतमाब्दं (६२९ ई० तः ६४२ ई०) यावद् भारत-भूभागं पर्य्यभ्रमत्। हर्षः सप्तम्या ईशवीयशताब्द्याः षष्ठाद्वत्सरादारभ्याऽष्टाचत्वारिंशाब्दं यावद्राज्यमशात्। एतावता महाकवेरमुष्य स्थितिः षष्ठ्याः शताब्द्या अन्ते, सप्तम्याः शताब्द्या पूर्वार्धे चाऽऽसीदिति निश्चेतुं शक्यते। अत्रार्थेऽस्य महाकवेः

स्वयमेव हर्षवर्द्धनसभापण्डितत्वस्वीकार एवं तादृशः स्थानावधिनियामको ग्रावा यतोऽग्रतः पृष्ठतश्च समयोनुमातुं सुकरोऽभवत् ।

जन्मस्थानम्

जन्म-स्थान-विषयेऽपि नायं महाकविः सुस्पष्टं किञ्चिदभाणीत् । यावदंशतो 'हर्षचरिते' निर्दिशति तावता ज्ञायते यदसौ शोणस्य पूर्वस्मिँस्तटे लब्धाऽभिजन आसीत् । अमुष्याभिजनश्च्यवनाश्रमसमीपवर्तिप्रीतिकूटनाम्ना तदानीं ख्यातं किञ्चिन्नगरमेव । एतत्सर्वं ब्रह्मसुतायाः सरस्वत्याः शोणस्य पश्चिमे प्रतीरेऽवतार-निवास-वर्णनेन तत्रैव च्यवनात्मजदधीचेन सहाऽऽगतस्य तन्मातामहानुचरस्य विकुक्षेः प्रश्नोत्तरेण "इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः" इत्यात्मकेन, 'शोण-मुत्तीर्य्य' इत्यंशस्य कतिपयप्रयोगेण च शोणभद्रस्य पूर्वरोधे दधीच-निवासः, तत एव च सारस्वतरचितप्रीतिकूटनगरस्य शोणतः पूर्वभागीयत्वं सिद्ध्यति ।

तच्च स्थानमिदानीमद एव च्यवनाश्रमव्यपदेशं देवकुण्डाऽभिधानम् । शोण-नदस्य पूर्वभागे प्रायः क्रोशद्वये तिष्ठतीदम् । अतो 'गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणमि'त्युक्तिः सर्वथा सङ्गच्छते । इदञ्च स्थानं सम्प्रत्यधिगयामण्डलं विद्यते । शोणस्य पूर्वतो गृद्ध्रकूटस्य (राजगृहस्य) पश्चिमतः प्रदेशः कीकटाख्यो मगधैकदेशो यत्र च्यवनाश्रमस्य वर्णनं गयामाहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गे वायुपुराणे—

"कीकटेषु गया पुण्या, नदी पुण्या पुनः पुना ।
च्यवनस्याश्रमं पुण्यं, पुण्यं राजगृहं वनम् ॥"

इति प्रस्तौति । एतावता शोणपूर्वतो वर्त्तमानो दिव्यकुण्ड (देवकुण्ड) एव गयामण्डलान्तर्वर्ती च्यवनाश्रम इति सुस्पष्टम् ।

अत्र महाकवेर्बाणस्यैव लेखस्तदीयमभिजनं 'प्रीतिकूटम'पि 'शोणपूर्ववर्ति' इत्येव साधयति । तथा हि—सारस्वतः (सरस्वत्या प्रादुर्भूतो दाधीचः)

स्वभ्रातुर्वत्सस्य कृते च्यवनाश्रमान्नातिदूरे प्रीतिकूटनामकं नगरमवासयत्। एतन्निबन्धुर्विश्वासो यत्तदिदमेव नगरं यदिदानीं 'पीरु' नाम्ना व्यवह्रियते। उपप्रीतिकूटम् (पीरु-समीपे) एव बाणतारा (वनतारा) इत्यभिधयाऽप्येको ग्रामो बाणस्य तत्र स्थितिं साधयितुमलम्। यत्किञ्चिदस्तु रहस्यं, किन्तु वत्सस्य कृते वासितं नगरं 'प्रीतिकूटं' शोणस्य पूर्वभाग एव आसीद् गया-मण्डले। अत एव तत्र लब्धजन्मनो महाकवेरस्य वालुकामयनदस्पर्शोष्णस्य प्रतीचीनस्य ग्रीष्मकालिकस्य समीरणस्य सम्पर्कादतिदुःसहनिदाघतापासुभवशालिनो निदाघवर्णनं यादृशं मार्मिकं विशदञ्च वर्त्तते न तादृगन्यस्य कस्यापि संस्कृतकविवरस्य ग्रन्थेषूपलब्धुं शक्यते। एतया भौगोलिक्याऽवस्थया गयामण्डलमेव परिचेतुं शक्यते। तथ्यमिदं भौगोलिकं यद्विहारमात्र एवाधिगयामण्डलं तापमानं सर्वत उन्नतमिति।

विगतेषु कतिषुचिद्वत्सरेषु गोधा (गोहा)ऽञ्चले सम्पन्नानुसन्धानात्मकान्वेषणस्यानुसारं या उपलब्धयो राज्यसर्वकारेण प्राप्तास्ताभिरपि कवेरस्य गयामण्डलमेव निवास इति प्रतीयते।

किंवदन्त्या महाकवेरस्य श्यालको मयूरभट्टः 'कैयाल' ग्रामवास्तव्यः। अयञ्च ग्रामः प्रीतिकूटाद्गव्यूतिमात्र एव सम्भवेत्। कथमन्यथा प्रत्युषसि काल एव बाणभट्टगृहमुपेयान्मयूरो येनाऽसौ स्वभगिनी-मान-सम्मानन-प्रवण-बाणभट्ट-रचित पादत्रयात्मकं—

गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो।''

इति कतिधाऽऽवर्त्तितं पद्यं 'कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि! कठिनम्' इति चतुर्थपादेन पूरणे कुतूहली स्वावुत्तशापभाजनतां भजेत? सोऽप्यनेन निरपराधेन प्रतिशप्तो भवेदिति च?

एतेनापि बाणभट्टस्य जन्मभूर्गयामण्डल एवोपशोणं सिद्ध्यति ।

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याऽभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥

इत्यनेनोभयोः समकालीनत्वे समानवयस्त्वमायातमित्यनयोः श्वसुरजामातृसम्बन्ध-विचारः काकदन्तपरीक्षैवेति विभावयन्तु सुधियः ।

श्रीसदाशिव ऐकान्तिकी भक्तिरप्यस्य कविवरस्य गयामण्डलवास्तव्यतामेव साधयति । अयं सर्वत्र गमनाद्यवसरे तमेवेष्टदेवं सिद्धिप्रदत्वेन स्मरति । तथा हि—स्थाण्वीश्वरगमनात्प्राक् हर्षचरिते "सर्वथा भवानीपतिः…… ……तत्र गतस्य मे शरणम् ।'…… …सर्वं साम्प्रतमाचरिष्यति" इति तत्सपर्य्यां विधायैवाऽयं प्रास्थात् । वेलागञ्जतो दक्षिणपश्चिमविदिशि गव्यूतिमात्रे शोणितपुरं (सोनपुरनाम्ना पुरातत्त्व-विद्भिरनुसंहितं स्थानम्) बाणासुरराजधानी । ततः क्रोशचतुष्टये स्थिते बाणवर-नाम्नि पर्वते सिद्धेश्वराख्यं लिङ्गं प्रत्यहं बाणासुरेणाऽर्च्यते स्म । अद्यापि तन्महिमा विख्यात एव । अत्र क्रोशदशकाधिकस्थानादायान्ति भक्ताः । जयन्ति बाणासुर…… …इत्यादिनाऽमुमेव वर्णयन्नसावुपर्य्युक्तमेव तथ्यं द्रढयति ।

वंश-वृक्षः

महाकविबाणस्यैव वाणी स्ववंशीयान् पूर्वपुरुषानुपवर्णयति हर्षचरितस्य प्रथम उच्छ्वासे । एवञ्च—अमुष्य कुलमूलं वत्सो भार्गववंशीयो ब्राह्मणः । यस्मात्तृती-यादयो वंश्या वात्स्यायनाऽऽख्या समभूवन् । तत्रैव वंशपरम्परायां गुप्तवंशीय-राजसम्मानितो सोमयाजी महान् विद्वान् कुबेरनामा । तस्याऽङ्गभुवश्चतुर्थात् पशुपतेरर्थपतिर्बभूव । यस्यैकादशानां तनयानामष्टमाच्चित्रभानोः सकाशादेव निबन्धनायकस्य महाकवेर्बाणभट्टस्याऽऽविर्भावः । ततश्च पुलिन - (भूषण) भट्टादयः समभूवन् । अत्रार्थे न कोऽपि विसँम्वादः ।

जातिः

अयं महाकविर्जात्या ब्राह्मण आसीत्। अत एव स्ववंशपरिचयप्रसङ्गे दधीचं वत्सञ्च भार्गववंशीयब्राह्मणत्वेन परिचाययति। एतेन भार्गववंशीयेभ्यः क्षत्रियादिभ्यस्तद्वंश-परम्परा पृथगेवेति सूचितम्। तेषां भार्गववंशीयानां विप्राणामन्यजातीयाभिः कन्यकाभिरपि वैवाहिक-सम्बन्ध आसीत्। अत एवामुष्य कविवरस्य द्वौ पारशवौ भ्रातरावास्ताम्, एकश्चित्रसेनोऽपरश्च मित्रसेन इति। अत एवायं स्वजन्मप्रसङ्गे मातरं जात्या ब्राह्मणीमुल्लिखति, "अलभत च चित्रभानुः···· राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्' इत्यादिना। एतेन भार्गववंशसम्बन्धमात्रेण भार्गववंशीया ब्राह्मणा एवेति वदन्तोऽपि मान्याः।

तत्राप्ययं ब्राह्मणेषु दिव्यो ब्राह्मण एव। यतोऽयं दिव्यबोधक-विमलाऽसाधारणशब्दाभ्यामपि स्ववंशीयान् ब्राह्मणान् विशिनष्टि। तथा हि—हर्षचरितस्य प्रथमोच्छ्वासे—"वत्सात्····प्रावर्त्तत विमलो वंशः" इति। यस्मादजायत••• असाधारणा द्विजातय इति।

अत्रेवमवगन्तव्यम्—दिव्यानाम् (मगानां) ब्राह्मणानां दिव्यवंशपरम्परासूत्पन्ना एव दिव्या ब्राह्मणा विमला वा। त एव च सर्वश्रेष्ठाः। मानवकन्यासम्बन्धाच्च समुत्पन्ना यद्यपि ब्राह्मणपदव्यपदेश्यास्तथापि ते भौमा अपूज्या एव। उक्तञ्चैतदेकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमेऽध्याये भविष्यत्पुराणे—

"योऽयं मगेति वै प्रोक्तो मगो दिव्यो द्विजोत्तमः ॥" इति।

एवञ्च

भौमास्तु ब्राह्मणा ये च अनुष्ठानविवर्जिताः।
तेऽप्यभोज्या भवन्तीह विकर्मस्था विशेषतः ॥

इत्यादिपद्यैः।

किञ्च—बाणभट्टशापान्मयूरः कुष्ठमवाप्नोत्, स च सूर्य्यशतकद्वारा देवधाम्नि सूर्य्यमाराध्य ततो मुक्तोऽभूत् इत्यादिकिंवदन्त्या सूर्य्यसेवकत्वमनयोः प्रसिद्ध्यति। पूर्वोक्तस्थले भविष्यत्पुराणे च दिव्यानामेव ब्राह्मणानां सूर्यपूजनाऽधिकारः प्रतिपादितो वर्त्तते। तथा हि—षट्चत्वारिंशदुत्तरशततमेऽध्याये भविष्यति पुराणे—'एते भोजकाः प्रोक्ता देवदेवस्य पूजकाः।'

भास्करस्य प्रिया ह्येते··· ॥१॥

दिव्याश्चैते स्मृता विप्राः··· ॥२॥

पुनः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमेऽध्याये तत्रैव—

"दिव्यास्ते ब्राह्मणाः प्रोक्ता भोजका मम पूजकाः" ॥१४॥

एवञ्च—विमलाऽसाधारणशब्दोपादानेन सूर्य्योपासनेन चायं "दिव्यो (मगो) ब्राह्मण" इति निर्विवादम्।

अपि च—आङ्ग्लभाषाविद् ऐतिहासिकाः चाणक्यमेवार्थशास्त्रस्य कौटिल्य-कृतस्य प्रणेतारं कामसूत्ररचयितारं च मन्वते। ते च कौटिल्य-(वात्स्यायन) वंशपरम्परासम्भवं मौर्य्यगुप्तवंशीयान्तिमसम्राड्—बृहद्रथ-मन्त्रिप्रवरं शुङ्गवंशस्थापकं पुष्यमित्रं शाकद्वीपीय-(दिव्यमग) ब्राह्मणवंशीयं भार्गवगोत्रसम्भवत्वेन प्रामाणयन्। स्वयं कविवरो बाणभट्टश्च शुकनासस्थाने वैशम्पायनममात्ययन् वंशपरम्परया प्राप्तमेव मन्त्रित्वादिकं वर्णयति। गुप्तवंशे बाणभट्टपूर्वपुरुषाणां प्रतिष्ठा च 'अनेकगुप्ता-र्चितपादपङ्कज' इत्यादिना वर्णितैवाऽऽस्ते।

एतेन च बाणभट्टस्य दिव्य-(मग) ब्राह्मणत्वमेव सुस्थिरे धरातले द्रढिमान-मवलम्बते। किं बहुना! गयातः पश्चिमे भागे क्रोशषट्के वर्त्तमाने दिव्यकुली-ग्रामेऽद्यापि भट्टपरिवारा दिव्या ब्राह्मणा निवसन्ति। ते च मयूरभट्ट-वंशजानात्मनः कथयन्ति। तत्रैव च चन्द्रशेखरभट्टादयो विद्वांसः सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः समभूवन्। यैः रामावतारशर्म्मविरचितस्य सप्तमस्य दर्शनस्य सहस्रत्रयपद्यात्मकेन ग्रन्थेन

खण्डनमकारि । अन्येऽपि चन्द्रचूडभट्ट–ताराचरणभट्टप्रभृतयोऽनेके दिग्विजयिनो विद्वांसस्तद्वंशमलमकार्षुः ।

चन्द्रगुप्तस्य मगधसाम्राज्याधिपतित्वम्, शोणतटे पाटलिपुत्रनगर-वासनम्, मगधेशत्वव्यपदेशादयश्चोपर्युक्तमेवार्थं द्रढयन्तीति नाविदितं धीधनानाम् ।

व्यक्तित्वम्

महाकविरसौ प्रखरबुद्धिः प्रातिस्विक-प्रतिभान्वितश्च । अत एवाऽल्पीय-सैवाऽध्ययनकालेन निखिलासु विद्यासु कलासु च पारङ्गतोऽभूत् । चतुर्दशे वर्षे वयसि वर्त्तमानेऽस्मिन् कविवरेऽस्य पिता चित्रभानुर्दिवमगात् । तदानीमेवाऽसौ पूर्णो विद्वान् आसीत् । स्वयमेव वदति–"सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः, श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि ।" अस्याध्ययनकालः षट् वर्षाणि ९ वर्षाणि वा । "गर्भा-ष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे, ब्राह्मणस्योपनायनम् ।" "···ब्रह्मवर्चस्कामस्य कुर्य्याद् विप्रस्य पञ्चमे ॥" इत्येवंविधस्मृति-वाक्यैकवाक्यात् ।

वस्तुतत्त्वं प्रति कुतूहलमयी उत्सुकता गम्भीरा धारणाशक्तिश्चास्य व्यक्तित्वं पर्य्यपुष्णीताम् ।

प्रकृत्या मनस्वी, मनसा विदग्धः, दर्शनेन भावग्राही, देशाटनव्यसनेनैव च अतीतानागतैकवाक्यतापारदृश्वाऽयं स्वोक्त्या "पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशो-चितां प्रकृतिमभजत ।"

अमुष्य प्रतिभोद्भासिता शेमुषी चित्रग्राहिणी परिलक्ष्यते । यतोऽस्यैकैका घटना चल-चित्रमिव क्रमशः प्रत्यक्षीभवति । हर्षचरिते कादम्बर्य्यादौ चैवं-विधान्यनेकानि स्थलानि विद्यन्ते ।

अस्य सूक्ष्मदर्शनशक्तिः प्रतिवर्णनं प्रतिस्थलमुपलब्धुं शक्यते। कादम्बर्यां व्याधो यदा शावकान् वृद्धांश्च शकुन्तानवनौ पातयति, तदा तेषां मृदुतरग्रीवाकम्पनमवरुणद्धीव व्याधं तादृशात्परदुःखदानव्यवहारात्। एवंविधामनेकत्र तदीयामनल्पकल्पनाप्रसूतिमुपलभ्य—"उदक् च विपाशः" इति सूत्रे पाणिनिमुद्दिश्य "महती सूक्ष्मेक्षिका वर्त्तते सूत्रकारस्य" इत्येवं काशिकाकारोक्तिरेव श्रीबाणभट्टस्य कृते सहसा हृदयान्निर्गच्छति।

कविरयं धनाढ्ये विद्यानिधौ वंशे समुद्भूतः। यत्रान्येऽप्यागत्य जनाः शिक्षामवाप्नुवन्। स्वभावतः सरलः स्निग्धश्चासीत्। अत एवाऽस्यैका मित्रमण्डल्यप्यासीत्। यत्र चतस्रो नार्य्योऽप्यभूवन्। इत्येतद्धर्षचरितदर्शने न तिरोहितं सचेतसाम्।

अल्पीयस्येवायं वयसि पाणिग्रहणसंस्कारवान्; किन्तु दारपरिग्रहं प्रत्युदासीनः। अत एव 'कृतदारपरिग्रहस्ये'त्यादिना स्वमुपेक्षयोपवर्णयति।

वस्तुतोऽयं आत्मदोषाप्रकाशनं गुणत्वेनाऽङ्गीकरोति स्म। अत एव स्वस्मै क्वापि न प्रायुङ्क्ताऽस्मच्छब्दम्, किन्तु इदमेतत्तदादेरेव, यथा स्वपरिचयवर्णनप्रसङ्गे—कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चास्य···इति। स एभिरन्यैश्चानुगम्यमानो······। अगाच्च······स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम्" इत्येवम्।

शैली :—

कवेरस्य शैली वर्णनात्मिकैव, यत्राऽक्षराऽऽडम्बरदर्शनं नैव शिथिली भवति। तथापि साऽन्तःसलिला फल्गु-सरिदिवोपरिष्टाद्बालुकामयी नीरसेवाऽऽभाति, किन्तु तत्तलं प्राप्य परिपूर्णो रस आस्वाद्यते।

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥

"उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यानेकाभिनवार्थसञ्चयम्" इत्येवं स्वयं गद्य-काव्यं लक्षयित्वा कथङ्कारमेतादृशीं शैलीमुपेक्षताम्। अत एवायं स्व-रचनासूपर्युक्तं विचारं सुनिरवाहयत्।

शैलीविभागः

दीर्घसमासवत्युत्कलिका, यथा—प्रचण्डनिदाघवर्णन-प्रसङ्गे—"सलिल-स्यन्द-सन्दोह-सन्देह-मुह्यन्महामहिष-विषाण-कोटि-विलिख्यमान-स्फुटतरफाटिक-दृषदि" इत्यादौ परिलक्ष्यते चेदन्यत्र युवकदधीचवर्णनप्रसङ्गे—आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवाहः, हंस इव कृतमृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः"—इत्यादावल्पसमासयुक्ता चूर्णकशैली परिशीलयति कविकृतिविलासम्। एवमेव पुष्पभूत्यादिवर्णनप्रसङ्गे—गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुयात्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसीत्यादौ—समासरहितैवाविद्धाऽनुविद्धाऽस्ति।

एवञ्च त्रेधाऽपि शैली यथास्थानमलंकृता काव्यचमत्कारं पुष्णाति।

ग्रन्थाः

(क) कादम्बरी—इयं बाणस्य सर्वश्रेष्ठा कृतिः। अस्याः कथानकं सोमदेवविरचितकथासरित्सागरादुद्धृतं वर्त्तते। कथासरित्सागरस्य कथेव कादम्बरी कथाऽपि शुकमारभ्यैवाग्रेसरति। अत्र नायकश्चन्द्रापीडो नायिका च कादम्बरी, तद्वदेवोपनायकः पुण्डरीक उपनायिका च महाश्वेता।

अत्र शृङ्गारस्य प्राधान्येऽपि प्रायः सर्वेषां रसानामास्वादो लब्धुं शक्यते। एकस्मिन्नेव कथानके बहुपादसंश्लिष्टे वटवृक्ष इव कथान्तराणि संश्लिष्यन्ति। अत एव शब्दगुम्फनप्रयुक्ता नीरसता न स्पृशति सहृदयविचारभावम्। ते तु अथाग्रे किं कथं संघटेतेति जिज्ञासया पाठकाः श्रोतारश्च कुतूहलिमानसाः तल्लीनतया पठन्ति

शृण्वन्ति च। तूलिकातः सूत्र-निःसरणमिव कथात उपकथा निर्गच्छन्ति। विस्मयोत्साहयोः शिथिलीभावाप्रसरणादलौकिकः काव्यानन्दो न केन सहृदयेनाऽऽस्वाद्यते?

कल्पनाऽऽकाशविहारिण्यपि कादम्बरीकथा वास्तविकधरातलसम्पर्कं न जहाति।

अत्र पात्राणां काल्पनिकत्वेऽपि वास्तविकी सजीवा च सङ्घटना कवेरस्य सतर्कतां दक्षताञ्च व्यनक्ति।

पुरुषपात्राणां चित्रणे यत्र धैर्य्यस्य विचारस्य सहिष्णुताया भावुकत्वादेश्च वर्णने सिद्धहस्तस्तत्रैव स्त्रीपात्राणां चरित्रं, शीलं, लज्जाम्, हृदयवत्ताम्, अनन्य-मनस्कतां वोल्लङ्घ्य पदमपि नातिक्रामति। महाश्वेतायाः प्रेममयं किन्तु दुःखबहुलं स्वरूपं निरूप्य कादम्बरी-दशां प्रति श्रोतुकामाः अत्यन्तमुत्सुकाः सञ्जायन्ते सभ्याः। पाठकानां श्रोतॄणाञ्च हृदयं नितरामावर्जयन्ति महदौदार्य्यं हारीतस्य, परोपकारप्रवणता तारापीडस्य, प्रेमरूपता विलासवत्याः, विश्वासभाजनता शुक-नासस्य, अभिन्नहृदयता कपिञ्जलस्य, वाह्याऽभ्यन्तरपावनता महाश्वेतायाः स्वामि-भक्ति-परायणता च पत्रलेखायाः। शुकनासकृतं चन्द्रापीडप्रशिक्षणं रहस्यपूर्णं मार्मिकञ्चेति व्याप्य कृत्स्नमेवावतिष्ठते।

'अहो विधातुरस्थाने रूपनिष्पादनप्रयत्नः' इत्येवं चाण्डालकन्यामुद्दिश्य लेखनीं सार्थकयतोऽस्य सौन्दर्य्य-प्रेम न तिरोभवति, अपि तु हृदयं दूनमिव परिलक्ष्यते। रूपोपासनापटुतयैव चाण्डालकन्याऽपि भवानी-लक्ष्मी-कात्यायन्यादिभिरप्युपमिता। एतेन सौन्दर्य्यं प्रत्युदार-वृत्तिरमुष्य प्रेमप्रवाहस्येति न तिरोहितं विदुषाम्।

प्रकृतिसौन्दर्य्यरेखाचित्राङ्कने सिद्धहस्तोऽयं कलाकारः। प्रकृतेः सौम्यपक्ष-पातिनोऽमुष्य वाग्धारा तदीयां रौद्रीमप्याकृतिं येन कौशलेन पुरस्तान्नर्त्तयति तन्म-हिमाऽगम्य एव। विन्ध्याटव्या भयानकं स्वरूपं कस्य मानसं न भीषयति को

वा तद्विभीषिकां विभाव्य न लोमहर्षप्रकर्षमनुभवति । तथा हि—"एकतो नख-मुख-लग्नेभ-कुम्भ-मुक्ता-फल-लुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता प्रेताऽधिप-नगरीव सदासन्निहित-मृत्यु-भीषणा-महिषाऽधिष्ठिता च, समरोद्यत-पताकिनीव बाणासनाऽऽरोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा चे"त्यादि रौद्रचित्रणं कीदृशं विभीषिकामयं पुरः स्फुरति ? जाबाल्याश्रमचित्रन्तु पुनस्तस्य सर्वथा विपरीतं शान्तभावमेवाऽनुभावयति । यथा—"परिचित-शाखा-मृग-कराऽऽकृष्ट-यष्टि-निष्का-श्यमान-प्रवेश्यमान-जरदन्ध-तापसम् ।" अहो ! विलक्षणा वाग्गुम्फनसफलता बाणभट्टस्य ।

कादम्बरी तु तत्कालीनां रीतिं, व्यवहारं, स्थिति-स्थापन-स्तरं, वातावरणादि-कञ्च सम्यक् परिचाययति । तदानीं नव-नव गन्धवाहप्रवाहाभिमुखं प्रवहमाना अभूवन् जनाः प्राचीन-परम्पराश्च शनैः शनैः परित्यजन्त आसन् । चन्द्रापीड-कर्त्तृकं महाश्वेता-समाश्वासनं प्रजासु सतीत्वं प्रत्यौदासीन्यं व्यनक्ति । हर्षचरितेऽपि राज्यश्रीः सतीत्वान्निवार्य्यते । भोजनादौ स्पृश्यास्पृश्यताऽपि शुकं प्रति प्रस्तुतेन चाण्डालकन्यावाक्येन "आपदि यस्य कस्यापि गृहे ब्राह्मणो भुञ्जीत" इत्यादिना परिलक्ष्यते । शुक-सारिकादयस्तिर्य्यग्योनिविशेषा अपि मानुष्या वाचाऽध्यापक-भारमवतारयन्तः सम्मुखमायान्ति, शङ्करदिग्विजयप्रस्तावे मण्डनमिश्रस्य गृहञ्च स्मारयन्ति । मन्त्र-तन्त्रयोर्विश्वासरूपा नागपूजादिसदृशाः प्रथिता आसन्ननेका विचाररूढयः ।

काव्य-सौन्दर्य्योपासकोऽयमलङ्कारयोजनायां न कमपि प्रयत्नविशेषमवाऽशेषयत् । "कृतं च मे वपुषि, वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, मद इव नवयौवनेन पदम्" इत्यादौ रशनोपमा-विलक्षणच्छटाऽऽच्छादयत्यमन्दंनाऽऽनन्देनाऽन्तस्तलं समेषामेव सामाजिकानाम् । एवंविधा उचितस्थान - संस्कृता अन्येऽप्युत्प्रेक्षा - विरोधाभास-रूपक-श्लेष-परिसङ्ख्यादयोऽलङ्काराः सुतरां रस-परिपोषं जुषन्ति । परिसङ्ख्याऽलङ्कार-

प्रयोगे त्वयं सर्वानेवाऽतिशेते। "यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तः पुरिकाऽलकेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करपीडनम्, अनवरतमखाग्निधूमेनाऽश्रुपातः तुरगेषु कशाभिघातो मकरध्वजेषु चाप-ध्वनिरभूद्"। एवं विधाऽलङ्कारमधुरझङ्कारः श्रौत्रं सुखं प्रयच्छतितराम्।

चन्द्रापीडव्याजेन शुकनासद्वारा पुण्डरीकमभिलक्ष्य कपिञ्जलमुखेन, हर्ष-चरितादौ सेनापति-सूक्त्या वा मानवधर्मस्यैव तत्र तत्रोपदेशो विधीयते। भावाऽर्थ-शब्द-भाषाणामदृष्टश्रुतं सम्मिश्रणं परस्पर सँव्वादित्वञ्च प्रतिपदं परिदृश्यते। एत-त्सर्वमालोच्य गोवर्द्धनाचार्य्यस्य

"जाता शिखण्डिनी प्राग्
यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं
वाणी बाणो बभूवेति"।

इत्येवंविधो हृदयोद्गारो नातिशयोक्ति-स्थलीमधिरोहति।

कादम्बर्य्यां भानुचन्द्रादिभिः संस्कृते, डा० पिटर्सनाद्यैराङ्गलभाषायां, कवि-शेखरादिभिर्हिन्द्याञ्च टीकाकरणादमुष्य काव्यस्य मनोहारित्वं सर्वोत्कृष्टत्वं लोकोपकार-कत्वञ्च स्फुटतयाऽवधार्य्यन्ते।

कादम्बरीयं विश्वसाहित्यमुकुटमणिललामायते। यद्यप्यस्या उत्तरार्द्धं न बाणेन समापितं तथापि तत्तनयेन पुलिन्दभट्टेन तदुपरतौ समाप्य विद्वत्समाजः सन्तोषित एव।

एवञ्चेयं स्वरचयितुः कथालक्षणेन—

स्फुरत्कलाऽऽलाप-विलास-कोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।

रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ इति

सुतरां परिलक्षिताऽनिर्वचनीयाऽऽनन्दसन्दोहाऽऽन्दोलिकायां रसिकैर्लालिता तदीयं हृत्तापमपाकरोत्येव ।

(ख) हर्षचरितम्—इदमेकमैतिहासिकं काव्यम् । आत्मजीवन-दर्शनम् (Autobiography) इति व्यवहर्त्तुं युक्तम् । अत्राष्टावुच्छ्वासाः सन्ति । प्रथमे स्ववंशं परिचाय्याऽन्यत्र सम्राजं श्रीहर्षमुपवर्णयति कविवरः । निदाघस्य रूक्षस्यात एव कठिनस्य ज्वलदिव चित्रणमत्राङ्कितम् । संस्कृत-साहित्ये एतादृशस्य ग्रीष्मप्रखरतामयोपवर्णनस्योपलब्धिर्दीपशतेनाऽपि नाऽवाप्याप्यते । सूक्ष्मं प्रकृति-निरीक्षणं प्रति जागरूकः प्रहरीव कविरत्र परिचीयते ।

स्वानुभूतिं यथास्थलं सन्निवेशयितुं न लभत ईषदपि शैथिल्यम् । यथार्थ-तयाऽऽविष्टानि तदीयानि सुभाषितानि सर्वथा सङ्ग्रहेलिमानि । दिङ्मात्रं यथा—

(क) असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः ।

(ख) अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम् ।

(ग) फलप्रतिबन्धी कालातिपातः ।

(घ) महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम् ।

(ङ) गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः । 'हर्षचरितस्य' सङ्केत-रुचिरा-वार्तिकाद्यष्टीकाः प्रसिद्धाः ।

(ग) पार्वती-परिणयः—कादम्बर्यां जावाल्याश्रमवर्णनानुरूपमेवाऽत्रापि भावाभिव्यञ्जनमिति विद्वांस आलोचका बाणभट्टरचितमेवैनं मन्वते । एतद्ग्रन्थस्थ-स्यैकस्य पद्यस्योद्धरणं भोजराजविरचिते—सरस्वतीकण्ठाभरणेऽपि परिलक्ष्यते । तद्यथा—

आधूय प्रणयं विवस्वति गते देशान्तरे पद्मिनी
सोढुं तस्य वियोगमक्षमतया ग्लायत्सरोजानना ।
सन्ध्यावल्कलिनी द्विरेफपरिषद्रुद्राक्षमालावती,
तत्प्राप्तिस्पृहयैव सम्प्रति तपः शक्ता समालक्ष्यते ॥

(घ) मुकुटताडितकम्—नाटकमिदम् यद्यप्यद्यानुपलब्धमेव, तथापि चन्द्रपाल-गुणविजयाभ्यां बाणभट्टीयत्वेनैतन्नाटकसम्बन्धिपद्यमेकमवतारितम् ।

(ङ) चण्डीशतकम्—दुर्गास्तवोऽयं, स्रग्धरावृत्तमयो धनेश्वरेण टीकितश्च ।

(च) शान्ति-विलासः —बाणरचितैतन्नामकग्रन्थस्य—

भव्ये देहे पटुषु करणेष्वालये श्रीसमृद्धे
कौमारान्ते वयसि कथमप्यप्रवृत्ते च दुःखे ।
प्रत्यक् पुष्पी प्रसवविधया यस्य पुंसो निसर्गात्
प्रत्यग्वक्रं भवति हृदयं कस्ततोऽप्यस्ति धन्यः ॥

इत्येकं पद्यमुपन्यस्यति विश्वनाथशास्त्रीभारद्वाजः संस्कृतसाहित्येतिहासपरिशिष्टे ।

कविरयं छिनत्ति स्वच्छन्दगद्यबन्धावरोधम्, भिनत्ति प्रतिभाऽभिभावन-भुवन-भावनेभकुम्भम्, रुणद्धि रुक्षश्लेषाद्युपेक्षादाक्षिण्यम्, युनक्ति वियोगेऽपि सम्भोगाऽऽरोग्यं, किं बहुना ! उनत्ति विविधसन्तापपरम्परातप्तमप्यन्तस्तलम् । तदेवमयं गद्यकथाप्रबन्धस्वरूपेऽतिकठिनेऽपि प्रबन्धे बालवत्क्रीडति नट इव नृत्यति युवेव रमते अनुभवीव च स्निह्यतीति केषां सहृदयानां तिरोहितम् ? अत एव 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं'मित्यन्वर्थतामेति ।

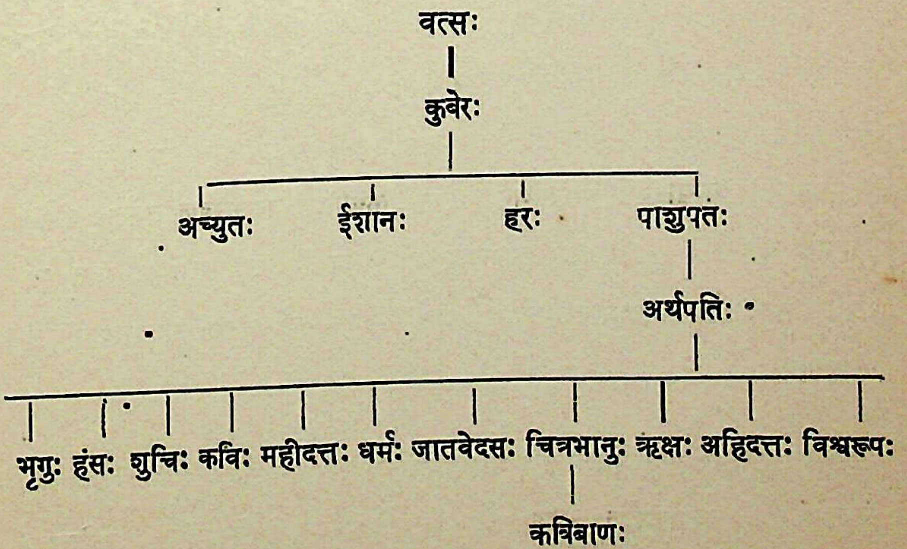
लेखकोऽयं वक्ष्यमाणेन श्रीचन्द्रदेवसूरिपद्यैनैवैतद्विषयिणीं स्वमानसमधिशयानां भावनां व्याकृत्यात्मनः कृत्यकृत्यतां दृढं विश्वसिति—

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः ! सर्वत्र गभीर-धीर-कविता-विन्ध्याटवी-चातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भि-कुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

इति शिवम् ।

महाकविबाणभट्टः

कविचूडामणिं महाकाव्ये नाटके च अनिर्वचनीयां कामपि प्रतिभां प्रदर्श्य जगति सर्वजनवन्दनीयतामधिगतवन्तं कविकुल-ललाम-भालतिलकं चारुसदाचाराचरणपूतचित्तं, दिगन्तप्रसृतकीर्त्तिलसितं, निखिलविद्वद्वृन्दप्रभाप्रलोपकरभारविं महाकविबाणभट्टं को न जानाति ? कविरयमासीत् भगवत्याः शारदाया वरदपुत्रः। "सरस्वतीपरिगृहीतमपि ईर्ष्ययेव नालिङ्गति (लक्ष्मीः)" लोकोक्तिरियम् बाणभट्टविषये चरितार्थं नाधिगच्छति। सरस्वती लक्ष्मीश्चोभे महाकवेः समानरूपेण वशे आस्ताम्। अस्य समादरः यथा कवि-गोष्ठ्यामासीत्तथैव राज-सभायामपि। महाकविचूडामणिना बाणेन हर्षचरितनामके ग्रन्थे प्रारम्भिकयोः द्वयोः परिच्छेदयोः निज-जीवनवृत्तान्तो विस्तारपूर्वकं व्यावर्णितः। अयमंशः न केवलं कवेर्जीवनचरित्रविषयकज्ञानाय एव अपितु साहित्यिक-सौन्दर्यदृष्ट्याऽपि अनुपमः। कादम्बर्यामियं केवलं निजवंशमेव वर्णितवान्। किन्तु हर्षचरिते पूर्वजानामपि विस्तारपूर्वकं वर्णनमकरोत्। हर्षचरितानुसारं बाणस्यवंशावलिरीदृशी वर्त्तते :—



कादम्बरीनामके ग्रन्थे वर्णिता वंशावलिरितो भिन्ना। तस्मिन् ग्रन्थे पाशुपतस्य नामोल्लेखनम् न मिलति। अस्याः विचित्रतायाः रहस्योद्घाटनं काठिन्यमेव भजते। संभवतः यां पाण्डुलिपिमाश्रित्य कादम्बरी मुद्रिताऽभवत्, तस्यां पाशुपतविषयक श्लोकाभावः।

महाकवेर्बाणस्य जन्म वात्स्यायनवंशे शोणनद्याः तटे प्रीतिकूटनामके ग्रामे आसीत्। अयं प्रीतिकूटः "पीरो" नामकग्रामस्य शुद्धस्वरूपम्। "पीरो" नामकोऽयम् ग्रामः, आरामण्डले गयामण्डले च उपलभ्यते। अनयोः कतरत् कवेः निवासस्थानम् इति गवेषणायां प्रथमं कादम्बर्याः प्रस्तावनायां श्रीकृष्णशास्त्री आरामण्डलस्थित "पीरो" ग्राममेव प्रमाणयति। परमयं तर्कनिकषे न तथा प्रमाणत्वेन स्थितो भवति।

प्रथममिदं सर्वविदितमेव यत् कविरयं वत्सगोत्रीयो ब्राह्मण आसीत्। अत एव अस्य जन्मस्थानम् गयामण्डलान्तर्गत "पीरो" ग्राम एव भवितुमर्हति ; यतोऽत्र वत्सगोत्रीया अनेकशः ब्राह्मणाः साम्प्रतमपि विद्यमाना वर्तन्ते, न तथा आरामण्डलान्तर्गत "पीरो"ग्रामे। अत्र एकोऽपि वत्सगोत्रीयो ब्राह्मणो न विद्यते। द्वितीयम्, अस्य कवेः मूलमपि "सोनभदरिया" आसीत्। अत एव शोणनद्याः तटे वर्त्तमानम् गयास्थितं "पीरो" नामकं ग्राममेव प्रमाणयति। तृतीयम्, हर्षवर्धनस्य राज्यम् "मालवा आसीत्, यत्र हर्षचरितस्य रचनाभूत्। अस्मिन् हर्षचरिते कविः स्वग्रामप्रसंगे "गव्यूतिमात्रे पारेशोणम्" इति कथयित्वा गयामण्डलान्तर्गत "पीरो" ग्राममेव स्वीकरोति। यतोऽयं शोणनद्याः पारे गव्यूतिमात्रेऽवस्थितः। अत एव उपर्युक्तप्रमाणत्रयेण गयामण्डलान्तर्गत "पीरो" ग्रामः एव कवेः निवासस्थानमिति सिद्ध्यति।

अस्य कवेः मातुर्नाम 'राज्यदेवी' आसीत्। इयं कवेः शैशवावस्थामेव दिवङ्गता। पुत्रपालनरतः पिताऽपि चतुर्दशवर्षवयसमेनमेकाकिनं परित्यज्य

दिवं गतः। अभिभावकाभावादयं समवयस्कैः मित्रगणैः सह अनेकेषु देशेषु भ्रमन् चिरकालं व्यतियाप्य गृहमागतः। हर्षचरिते कविः सहायकान् समवयस्य-मित्रगणान् स्मरति।

"अभवंश्चास्य वयसा समानाः सुहृदः सहायाश्च। तथा च भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारवाणवासवाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः, प्राकृतकृतकुलपुत्रो वायुविकारः, बन्दिनावनङ्गवाणसूचीवाणौ, कात्यायनिका चक्रवाकिका, जाङ्गलिको मयूरकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः, हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका केरलिका, लासकयुवा ताण्डविका, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्त्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, असुर-विवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहङ्गमः, दार्दुरिको दामोदरः ऐन्द्रिजालिकश्चकाराक्षः, मस्करी ताम्रचूडः।"

—'हर्षचरितम्'

जनाः एनमज्ञं ज्ञात्वा निन्दन्ति स्म। परन्त्वस्य बुद्धेर्विकासः, सांसारिकोऽनुभवश्च पर्यटनेन सञ्जातः। अतः परमयं गृहे स्थित्वा एवाध्ययनकार्यसंलग्नः समययापनमारभत। निजपाण्डित्यप्रकर्षेणायं समसामयिकस्य राज्ञो हर्षवर्धनस्य विद्वत्सभायामुच्चतमं पदमलभत।

बाणभट्टस्य समयः

चीनदेशस्य प्रसिद्धो यात्री ह्यूनसांगः ईशाब्द ६२९ तः ६४५ पर्यन्तम् भारते स्थितः, तेन निजभारत-यात्रावर्णनप्रसङ्गे उत्तरभारतस्य सम्राजो हर्षवर्धनस्य

सविस्तरं वर्णनम् कृतम् । अस्य राज्ञो हर्षवर्धनस्य राजधानी थानेश्वरः आसीत् । अस्य राज्यसमयः ईशाब्दः ६०६ तः ६४८ ईशाब्दं यावत् । अस्यैव शासन-समये हर्षाब्दस्य प्रचारोऽभूत्, यः नेपाले साम्प्रतमपि प्रचलति । अयमेव महाराजो हर्षवर्धनः महाकवेर्बाणभट्टस्याश्रयदः । अस्यैव राज्ञो वर्णनम् हर्षचरिते कविना कृतम् । अत एवायं महाकविः सप्तमशताब्द्याः प्रारम्भकाले आसीदिति शक्यते कथयितुम् । प्रसङ्गेऽस्मिन् स्मिथमहोदयो लिखति :—

"For this period he is fortunate enough to possess, in addition to the ordinary epigraphic and numasmatic sources, two contemporary literary works, which shed much light upon the political condition of India generally, and supply, in particular abundant and trust worthy information concerning the reign of Harsha, who ruled the North as paramount sovereign for more than forty years. The first of these works is the invaluable book of travels, compiled by the Chinese pilgrim, Hiuen-Tsing who visited almost every part of India between 630 and 644 A. D. and recorded observations more or less minuts about each state and province. The narrative in travels is supplemented by the pilgrim's biography written by his friend Hwvi-li, which supplies many additional details. The second work alluded to is the historical romance entitled "The deeds of Harsha" composed by Bana, a Brahman author who lived at the court, and enjoyed the patronage of the hero of his tale.

—Early History of India,
by A. V. Smith.
1908, p. 309.

हर्षवर्धनस्य विद्वत्सभासदस्यता सप्तमशताब्दिकमेनं सूचयति, महाकवेर्बाणस्य समयः संस्कृतकवीनामैतिहासिकक्रमव्यवस्थायै महानुपयोगी वर्त्तते । बाणस्य

परवर्ती कविः ७१९-८१३ ईशाब्दसामयिको वामनः निजकाव्यालङ्कारग्रन्थे कादम्बर्याः समासबहुलमेकं गद्यं समुद्धृत्य बाणकवेः प्राचीनतां सिद्धयति। अत एवास्य समयः सप्तमशताब्दीति निश्चितप्रायो विद्वद्वृन्देषु।

महाकवेर्बाणस्य गन्थ-परिचयः

महाकविना बाणेन भूयसां ग्रन्थरत्नानाम्प्रणयनं व्यधायि। साहित्यस्य सूक्ष्म-पर्यवेक्षकाणाम्पुरतः कानिचिदेव ग्रन्थरत्नानि भान्ति। सूक्तिसंग्रहेष्वलङ्कारग्रन्थेषु च बाणविरचितानि भूरीणि अलङ्कारातिमनोहरपद्यानि लोचनपथेष्ववतीर्णानि सन्ति। क्षेमेन्द्रप्रणीतौचित्यविचारचर्चायां बाणकृतं पद्यमेकमुद्ध्रियमाणमास्ते, यत् कादम्बर्या विरहवर्णनप्रसंगे प्रयुज्यमानं प्रतिभाति। तदिदम् :—

"हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥

अत्र तथाभूतायाः कादम्बर्या विरहवर्णनं यस्या धैर्यवसनं विरहोज्ज्वलवह्निना दग्धम्। अनेनेदमनुमातुं शक्यं यद्बाणेन कादम्बर्याः पद्येऽपि रचना विहिता। किन्त्वद्यत्वे कतिपये ग्रन्था नोपलभ्यन्ते। अतः परं सूक्तिग्रन्थेषु बाणस्य नाम्नाङ्कितानि यानि पद्यानि मिलन्ति तान्यवलोक्य तदीयग्रन्थान्तराणामनुमानं विधातुं शक्यम्। बाणभट्टविरचितग्रन्थानां संक्षिप्तपरिचयश्चेत्थम् :—

(१) हर्षचरितम् —पुस्तकमिदम् संस्कृतसाहित्यस्य अतिप्राचीनतरा सर्वोत्कृष्टा चाख्यायिका। अत्राष्टौ उच्छ्वासाः। आद्ययोर्द्वयोः विस्तरेण निजपरिचयमदात् ग्रन्थकारः। अवशिष्टेषूच्छ्वासेषु महाराजहर्षवर्धनस्य जीवनचरितं वर्णितम्।

प्रभाकरवर्धनस्य चरमक्षणदृश्यं करुणविषादाभ्यामापूरितम्। हर्षस्य वर्णनमोजस्वि-प्रजापालकवदान्यभूपरूपेणोट्टङ्कितम्। इत्थम्प्रतीयते यत् ऐतिहासिकविषयाणां साहाय्येन गद्य-लेखे बाणस्याद्यः प्रयासोऽयम्। एतद्ग्रन्थस्य भाषा तावती परिमृष्टा नास्ति यावती किल कादम्बर्याः। काव्यदृष्ट्या अत्र त्रिविधं वैशिष्ट्यम्। बाणस्यालौकिकवर्णनशक्तेरभिज्ञानमत्रोपलभ्यते। "ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्" एतस्य पारम्पर्यानुसारेण समासबाहुल्यमेव गद्यस्य वैशिष्ट्यम्मतम्। कविनैतद्ग्रन्थनिर्माणं साहित्यिकनियमानुकूल्येनैव कृतम। ऐतिहासिकदृष्ट्या तु अस्याधिकाधिकं महत्त्वमनुमीयते।

(२) चण्डीशतकम् —इदं भगवत्याश्चण्डिकायाः स्तवने शतश्लोकमितं स्तुतिमयम्। अत्र स्रग्धरा नाम वृत्तम्। भाषा ओजस्विनी। भगवत्याश्चण्डिकायाः पदविन्यासानुरूपा एतस्य पदपरिपाटी महत्योजस्विनी भाति। शब्दसज्जायाः छटा नितरां निर्मला। भोजराजेन सरस्वतीकण्ठाभरणाभिधानग्रन्थे चण्डीशतकस्य पद्यमेकं समुद्धृतम :—

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्नविघ्नं,
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥——

—चण्डीशतकम् ६६

(३) पार्वतीपरिणयनाटकम् —इदं रमणीयं नाटकं शिवपार्वत्योर्विवाह-कथाभिः पवित्रितम्। एतस्य प्रस्तावनायां लिखितम् —

अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी।

ऐतिहासिकतादृष्ट्या एतन्नाटकोपरि महाकविकालिदासकृतकुमारसम्भवस्यातिघना छाया निपतति । भूयसां विदुषामिदमपि मतम् यदस्या रचयिता बाणभट्टाद् भिन्न एव । तन्मते पार्वतीपरिणयस्य रचयिता सप्तदश शताब्द्यां जातो बाणट्टनामधारी कश्चिद्दाक्षिणात्यः कविः ।

(४) मुकुटताडितम् —नलचम्पूटीकायां चन्द्रपालगुणिविजयगुणिभ्यां बाणभट्टविरचितस्यास्य नाटकस्य उल्लेखो विहितः । आभ्यां टीकाकृद्भ्यां मुकुट-ताडितस्यायं श्लोक उद्धृतः —

"आशाः प्रापितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव ।
बिभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः ॥"

(५) कादम्बरी—इयं बाणभट्टस्य रचनासु सर्वोत्कृष्टा, नेयं केवलं बाणट्टस्य कृतिष्वेव श्रेष्ठा अपि तु उपलभ्यमानसमस्तगद्यकाव्यानां शिरोऽध्यास्ते ।

कादम्बरी एकं कथाकाव्यम् । विश्वनाथकविराज-प्रणीतसाहित्यदर्पणे कथालक्षणमिदंरूपम् —

"कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके ।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्"

कालेमहोदयोपि निजकादम्बरीभूमिकायामलिखत् :—

"The Kadambari belongs to that class of prose composition which is known as Katha or romance.

—Kale's Introduction to Kadambari, p. 29.

कादम्बर्याः कथा शृङ्गाररसमयी। किन्त्वयं शृङ्गारो निर्मलः पावनश्च। ओजोगुणः सीमातिरेकं प्राप्तः। अलङ्कारान्विताः श्लेषा अपि प्राचुर्य्येण प्रयुक्ताः। क्वचन स्थले श्लेषेऽर्था इत्थं संगोपिता यदेषां मार्गणं नातीव सुकरम्। कथानकं सुतरां दुर्बोधम्। एकस्यां द्वितीया तदन्तस्तृतीया च कथा प्रविष्टा। कथानक-समुद्घाटने प्रत्येकं कथा महत्त्वाविष्टा। अगाधतया सह लालित्यमपि समाविष्टम्, यत् पाठकेभ्यः प्रभूतप्रमोदप्रदम्। सम्पादितं कादम्बर्यामुत्तमगद्यानां वर्णनम्, "उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यमानानेकाभिनवार्थसंचयम्"—लक्षणमिदं बाणेन स्वग्रन्थेऽतीव निर्वाहितम्। कथानकानां क्रमिकविकासैः कविना आत्मीयानुपमवस्तुसंकलनचातुर्याः परिचयः प्रकाशितः। कथान्तस्तलमागत्यापि अन्तावगाहनं नोपलभ्यते। इयमेव कथायाः सर्वमहती विचित्रता। भागवतीव समस्तैव कथा शुकमुखाद् व्याख्यापिता, तस्मात् सत्यमेव अस्या कथाया उपनायकः पुण्डरीक एवास्ते। आदौ कश्चिदेवेदं जानीयात् यद् राजा शूद्रकः शुकश्च निजद्वितीय-तृतीय-जन्मनोः अस्या कथाया नायकोपनायकौ आस्ताम्; कादम्बरी महाश्वेता च नायिकोपनायिके आस्ताम्। आश्चर्यमिदं यदर्धे ग्रन्थेऽधीयमानेपि नायिकाया अभिज्ञानं नोपगम्यते। अन्तोऽस्याः किंनामास्ति? पाठकानाम्मनसि उत्कलिकावतिष्ठते यदग्रे किं स्यात्, कथमस्याः समाप्तिश्च स्यात्? वर्णनस्यानुपमतया रमणीयतया च उत्साहे शैथिल्यलेशोपि नागन्तुं शक्नोति।

महाकवेरुद्देश्यमेकस्याः कल्पितकथायाः प्रणयनमासीत्। तदीयकल्पना-फलित-कथायाः सांसारिकयथार्थतारूपतुलायां तोलनमपि न्यायानुगतं न भवेत्। कादम्बर्याः सकलानि पात्राणि कविकल्पनानिर्मितानि, किन्तु तेषां चरितानां विकासस्तथा चातुर्य्येणावतारितो यत्पाठकाः तदीयसुखदुःखयोर्लीनतया तद्भिन्नतया आत्मनो विस्मरति। तेषामेतद्ध्यानपथमेव नारोहन्ति यदेतानि पात्राणि काल्पनिकानि।

कथायाः आरम्भः श्लोकेन सम्पाद्यते। कविरादौ कथां प्रशंसति।

"स्फुरत् - कलालाप - विलास - कोमला,
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता,
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥"

तथा च —

"हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमै-
र्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो,
महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥"

अस्याः कथायाः विस्मयजनकतां परामृशन् ए० बी० कीथमहोदयो लिखति :—

"This is indeed a strange tale, and to those, who have no belief in re-birth, or even in a re-union after this mortal life, its appeal must be gravely diminished, and the whole must seem rather a fantastic if not idle romance with uninteresting characters living in an unreal atmosphere. But from the point of view of Indian belief the case is far other, and the story may justly be deemed replete with the tenderness of human love, the beneficence of divine consolation, the pathos and sorrow of death and the abiding hope of re-union after death as a result of unswerving fidelity to love :

A History of Sanskrit Literature, p. 324.

अन्ते "विदग्धमुखमण्डन" नामकग्रन्थे धर्मदासेन बाणवाण्याः प्रशंसनं यदत्यन्त श्रवणसुखदशब्देनाकारि तदुपादानं नात्यन्तमनुपयुक्तम् —

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहरति ।
सा किं तरुणी ! नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

बाणस्य संकेतः

प्रतिभाशालिनी दिगन्तविश्रुतकल्पनाभा बाणकाव्यशैली पाञ्चालीरीतिमनुसरति। शब्दग्रन्थनमपि अर्थानुरूपम्। सुश्रवशब्दविन्यासो सरसार्थानुरूप एव। बाणकवितायाः पदन्यासो रचनाशैली च अत्यन्तरमणीया। नवनवानामर्थानां सन्निवेशोऽपि मनोरम एव। शब्दसम्पदाविलासोपि दर्शनीय एव। कविचूडामणिबाणभट्टं परितः कव्यन्तराणां पदरचना केवलं चापलमात्रज्ञापकम्। एतद् केनाप्यालोचकेन समालोचि :—

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते
शिलाभट्टभरिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।
हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥

(इत्यादि)

बाणकवितायाः परिचयो निम्नाङ्कितकतिपयपद्येषु लभ्यते :—

"कटु कणन्तो मलदायकाः खला-
स्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे
हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥

× × ×

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
सन्त्येते धनिनः कलासु सकलास्वाचार्यचर्याचणाः।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनात् विस्मयत्यहो श्लाघया
धूते मूर्धनि कुण्डले कषणतः क्षीणे भवेतामिति॥

—सुभाषितावली

अत्राणुरपि सन्देहो नास्ति यत्संस्कृते गद्यकाव्यप्रचारः सहसा अद्वितीयेन कविना प्रादुश्चक्रे। सुबन्धुविरचितवासवदत्ता "प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धम्" एतत्सिद्धान्तमेवानुसरति। एतदतिरिक्तं किमपि चमत्कारजननं नैव परिलक्ष्यते। प्रत्यक्षरश्लेषातिरिक्तनूतनार्थानां कल्पना तु दूरादास्ते।

गद्यकविभ्यो बाणभट्ट-शैली निकषवदाचरति। कविरयं प्रतिभाशाली गद्यरचनायां नितान्तनिपुणः। कतिपयालोचकानां दृष्टौ बाणगद्यं सघनवनमिव भयावहम्। द्राघिष्ठसमासाः श्वापदादिचतुष्पदाभा भयावहा लक्ष्यन्ते। तत्र कठिनशब्दानाम्भूयस्त्वम्। एवंविधालोचकात् वास्तविकता अतिदूरिता। चित्रणस्य सजीवतार्थं प्रतिभाशालिताया उद्भवाय च ओजोगुणाढ्यसमासबहुलरचनाश्रयणञ्च कविनाऽवश्यमाचरितम्। किन्तु, यत्र तत्र लघु-लघुवाक्यानि प्रयुज्य स्वकीयप्रौढप्रभावोत्पादिका शैली अवश्यं प्रदर्शिता। विषयानुकूल्येन निजशैल्याः परिवर्त्तनम् विदधानोऽवतिष्ठते। येन कविना विन्ध्याटव्या सन्ध्यावर्णनप्रसङ्गे च द्राघिष्ठसमासानां छटा प्रदर्शिता तेनैव विरहवर्णनावसरेऽपि लघुतमप्रसादगुण-गरिष्ठवाक्यानां शोभापि सज्जिता। कपिञ्जलकृतपुण्डरीकभर्त्सना कीदृक्प्रतिभाशालितया जागर्ति। अवलोकयन्तु—

"यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम्। उत धर्मशास्त्रेषु पठितम्, उत धर्मार्जनोपायोऽयम् ....। ....का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु भवतः? स खलु 'धर्मबुद्ध्या विषलतावनं सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगाहते, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुषलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति। अधिगतविषमत्वोऽपि कस्मात् खद्योत इव ज्योतिर्निर्वीर्यमिदं ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि प्रबल-

रजःप्रसरकलुषितानि स्रोतांसीत्रोन्मार्गप्रस्थितानीन्द्रियाणि, न नियमसि वा क्षुभितं मनः, कोऽयमनङ्गो नाम धैर्यमवलम्ब्य निर्भर्त्स्यतामयं दुराचारः ।"

—पूर्वाधकादम्बरी

वस्तुतो बाण-गद्ये सूक्ष्मनिरीक्षणशक्तिः, चमत्कृतवर्णनप्रणाली, अक्षयशब्द-राशिः, अलौकिकार्थकल्पना, प्रभूतोद्भावना विशेषेणोपलभ्यते । अस्मिन् कविवरे यथा गद्यानां प्रवाहः प्रभावश्च श्रवणगोचरो जायते तथान्यकविभिः नोत्पादयितुं शक्यते । अतस्त्रिलोचनकवेः समुद्घोषः "हृदि लग्नेन................" इत्यक्षरशः सत्यं प्रतीयते ।

महाकवेर्बाणभट्टस्य भाषायामसाधारणोधिकारः द्राघिष्ठवाक्यानां लेखनेऽत्यन्त निपुणता चास्ति । सुदीर्घसमासाश्रितपदानां रचना तु अतीव सुलभा । पश्यन्तु :—

"अथ विजृम्भमाणनवनलिनवनेषु अकठोरचूतकलिकाकलापकृतकामुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मदकलितकामिनी गण्डूषशीधुसेकपुलकितवकुलेषु, मधुकरकुल-कलङ्ककालीकृतकालेयकुसुमकुड्मलेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुशिञ्जितसुमनःसहस्रसहकारेषु, अविरलकुसुम-धूलिवालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदविडम्बितमधुकरकदम्बकसम्वाह्य-मानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्लासितचामररवभयस्फुटित पथिकहृदयरुधिरार्द्रीकृतमार्गेषु अविरतपतत्कुसुमशरपतत्रिपत्रसूत्कारबधिरीकृतदिङ्-मुखेषु, दिवापि प्रवृत्तमदनरागान्धाभिसारिकासार्थसङ्कुलेषु, उद्वेल्लितरतिरससागरपूर-प्लावितेषु; सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु, मधुमासदिवसेष्वेकदाहमम्बया सह मधुमासविरतारितशोभम् प्रोत्फुल्लनवनलिनकुमुदकुवलयकह्लारमिदमच्छोदं सरः स्नातुमभ्युपागमम् ।

— कादम्बरी (पूर्वार्ध)

द्राघिष्ठसामासिकशब्दमयानां वाक्यानां रचनायां यथैवायं निपुणस्तथैव लघु-वाक्यानां रचनायामपि महान् प्रवीणो विद्यते। चन्द्रापीडस्य यौवराज्यकाले महाराज—तारापीडस्य मन्त्री शुकनासः राजकुमारमुपदिशति। लक्ष्मीवार्तां कुर्वन्नेव शुकनासः कथयति :—

............"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति........।"

—कादम्बरी पूर्वार्ध (शुकनाशोपदेशात्)

महाकवेर्बाणभट्टस्यालङ्कारप्रियतापि सुस्पष्टा। अस्य सम्बन्धे इयत् कथ्यते यदनेन महाकविना अलंकाराणाम् प्रयोगः सुष्ठुतया कृतः। कवेरलंकाराः तस्य भाषाभावयोरनुगामिनो दृश्यन्ते। उपमारूपकोत्प्रेक्षासहोक्त्यतिशयोक्तिनामालंकाराः तेन कृताः। कवेः कल्पनाया माधुर्य्यमुत्प्रेक्षालंकारस्य चमत्कारश्चास्मिन् श्लोके परिलक्ष्यते :—

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो
विभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः
स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्॥

स्वपूर्वजानां वंशावलीमनुवर्णयन्ननेकस्मिन् स्थानेऽतिशयोक्तेरलङ्कारस्य सुष्ठु वर्णनमकारि :—

नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं
सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
सतस्तसामन्त - किरीट - वेदिका
विटङ्क - पीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि॥

बाणस्य समालोचनां कुर्वन् ए० वी० कीथ महोदयेनालेखि :—

"It would, however, be unfair to ignore the grave defects of Bana, not merely in respect of style, but also of structure, for nothing will make the Kadambari other than difficult to follow in its complex of past and present lives, and its lack of proportion ; the descriptions are always overdone especially in the case of Mahasveta and of the temple of Candika; Bana does not let his reader see the wood for the trees ; in his devotion to the beauties of the evening or morning, or the rising of the moon, or the limbs of his heroine, he often loses sight of the plot itself.

—A History of Sanskrit Literature.
p. 325

"महाकविर्बाणस्तदीया कृतिश्च"

गीर्वाण-वाणी-पञ्चबाणस्य तत्र भवतो बाणस्य महाकवेर्वाणी वीणेव माधुर्येण जगन्मनो हरति। तस्य शब्द-सम्पदं प्रकृति-रामणीयक-पर्यवेक्षणं कल्पना-प्राचुर्यं विचित्रामलङ्कृतिच्छटाञ्चावलोक्य वाणी बाणो बभूवेति सत्यं प्रतीतं भवति सचेतसाम्। सुबन्धुना प्रारब्धपूर्वा कृत्रिमालङ्कृता वा गद्यरीतिः महाकवेर्बाणस्य वाणीमासाद्य परां प्रौढिं प्राप्नोत्। सुबन्धुपथानुवर्तिनोऽप्यस्य सन्ति कतिचिद् वैशिष्ट्यानि यैरयं महाकविर्माघ—भवभूति कालिदासादीनां रस सिद्धानां कवीश्वराणां श्रेणीं समाश्रयति। यद्यपि सरलया सुकोमलया च शैल्या समुदात्तभावाभिव्यञ्जने कविकुलगुरुः कालिदासस्तावन्निरुपम एव, तथापि समस्त-सानुप्रास-पदावलीनां प्रवाहे प्रकृति-सुषमायाश्च विम्बग्रहणे सुखमयं महाकविना माघेन भवभूतिना च सहावश्यं तुलयितुं शक्यते। स्वशैल्यामयं सर्वानेव पूर्ववर्तिनः परवर्तिनश्च गद्य-लेखकान् अतिशेते। सुदीर्घाणां वाक्यततीनां समानकौशलेन सुसजने नवीना-नाञ्चार्थानामुत्प्रेक्षणे यत्पाटवं प्रादर्शयनेन तद्बहुत्र महाकवि-लघु-कलेवर-पद्यबन्धेऽपि नोपलभ्यते। माघभवभूत्योरिवास्यापि पदे पदे तीव्रा प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्तिः दृक्पथमायाति। प्रकृतिरूपाकलने त्वयं निरुपमः। परं यत्र श्लेष-विरोधाभास-परिसंख्यादिभिरलङ्कारैः सहजं निसर्ग-सौन्दर्यमलङ्करोति तत्र प्रकृतेः स्वाभाविकं स्वरूपं तिरोधते। वस्तुतः महाकवेर्बाणस्य शैल्यां कविताया अतीवोदात्त-भूमिर्दृश्यते। परं हन्त! क्वचिदर्थशून्या केवला शाब्दी क्रीडापि सुबन्धोः शैल्याः दयनीया परिणतिः परिलक्ष्यते, या च बाणस्य "कादम्बरी" बहुत्र तीक्ष्णां कटूवीञ्च कुरुतेतरां, काव्यचषकमास्वादयतां सताञ्च कण्ठे ज्वलनमिवोत्पादयति। अन्यथा बाणस्य कथायामजस्ररसस्रोतांसि स्रवन्ति। काव्यरस-पिपासवः सहृदयाः समदाः सम्पद्यन्ते।

संस्कृतसाहित्ये केवलं महाकविर्बाण एवात्मपरिचयं प्रददाति। कविरयं स्वयमेव सविस्तरं हर्षचरितस्य प्रथमेषु त्रिषूच्छ्वासेषु कादम्बर्य्याः प्रस्तावना-पद्येषु च स्वपरिचयं प्रस्तौति। अयमासीद् वत्सगोत्रीयो ब्राह्मणः, पूर्वजश्चैकोऽस्य कुबेरनामा कर्मकाण्ड-पटुः श्रुतिशास्त्रार्थनिष्णातः समभूत्।

"बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीत-गुणोऽग्रणीः सताम्
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः।"

—का० प०—१०

एतदीयं प्रौढपाण्डित्य-प्रकर्षम् परिचाययन् बाण आह यदनेकेऽन्तेवासिनोऽस्य गृहे यजूंषि सामान्यभ्यस्यन्तः तद्-गेहपालित-शुकसारिकाभिः निगृह्यमाणाः सततं सदुच्चारणे सावधाना आसन् :—

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः
निगृह्यमाणा पटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः"

—का० प०—१२

अस्य च चत्वारः पुत्राः समभूवन्—अच्युतः, ईशानः, हरः पाशुपतश्च। पाशुपताच्चार्थपतिः पुत्रः समजनि। अर्थपतेः एकादश पुत्रा व्यजायन्त। तेषामन्यतमः चित्रभानुर्भानुरिव ज्ञान-प्रभयाऽभूत्। अस्माकं प्रकृतमहाकविर्बाण एतस्मादेव चित्रभानोर्मातरि राजदेव्यां व्यजायत—"अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्"[1]। चतुर्दशवर्षदेशीयमिमं बालं विहाय पितरौ दिवंगतौ। पित्रोः स्नेह-विहीनोऽयं वटुः प्रकृत्या स्वतन्त्र उच्छृङ्खलं जीवन-मयीयपत्। फलत एवंविधैरेवोच्छृङ्खल-प्रकृतिभिरस्य सौहार्दमजायत। येषु

१—ह० च०—पृ० १२६

भाषाकविरीशानः, विद्वांश्च वारवारणः, प्राकृतकविर्वायुविकारः, एवमन्येऽपि सखायोऽस्यासन् । हर्षचरितस्य १०७-१०९ पृष्ठेषु स्वमित्राणामनेन तालिका दत्तास्ति । केचिन्नटाः, केचिन्नर्तकाः, अन्ये ऐन्द्रजालिकाः, अपरे च विद्वांसः बाणस्य यौवने वयसि वयस्या आसन् । एभिर्वयस्यैः सह बाणोऽनेकानेकान् देशान् पर्य्यटत् । अथ गेहमागत्य यथोचितां विद्याञ्चाधीत्य पुनरयं कौलिकीं स्थितिमासादयत् । एकदा च महाराजहर्षवर्द्धनस्य भ्राता कृष्णाभिधानः पत्रेण बाणमाकारयत् । अन्येद्युः राजपरिषदं प्रविष्टं बाणं विलोक्य महाराजो हर्षः पृष्टवान्—"किमयमेव बाणः" इति पश्चादुपविष्टं मालवराजपुत्रमभ्यधात्—"महानयं विट" इति ।

एतन्निशम्य बाणः प्रत्यवोचत्—"स्वामिन् संसारेऽस्मिन् लोकानां विचित्रा प्रकृतिः, अतः सद्भिर्यथार्थदर्शिभिर्भाव्यम् । यदि वस्तुतोऽहं कृतापराधःस्याम्, तदैव महाराज एवं मा वक्तुमर्हति । अकारणमेवैवं वक्तुं न युज्यते । अहमस्मि ब्राह्मणः समधीतसाङ्गवेदश्च । यथाशक्ति अन्यान्यपि शास्त्राणि दृष्टानि । कथं तर्हि महाराजेन मयि विटत्वमवलोकितम् ? यथासमयं स्वयमेव श्रीमान् मां याथार्थ्येनावगमिष्यति" । हर्षवर्द्धनः केवलमिदमेव प्रत्यवदत्—"मयैतच्छ्रुतमासी-दिति । सभायामकृतादरो बाणः नितान्तखिन्नमनाः समजनि । परमनन्तरं हर्षस्य राजसभायां सम्प्राप्तसमुचितादरो बाणो राज्ञो विश्वासभाजनमभवत् । हर्षचरितस्य द्वितीयोच्छ्वासे एतावत्सर्वं समुपवर्णितमस्ति ।

महाराजहर्षस्य समकालिकतयाऽस्य समयः सप्तमशतकस्य पूर्वार्धः सिद्ध्यति । बाणेन सहान्येऽपि कवयः श्रीहर्षस्य राजसभामलङ्कुर्वन्त आसन् । सूर्यशतकस्य मयूरशतकस्य वा रचयिता मयूरनामा कविः "भक्तामरस्तोत्र" प्रणेता मानतुङ्ग-दिवाकरश्च महाकविना बाणेन सह वसन्तावास्ताम् । एकां जनश्रुतिमनुसृत्य बाणो मयूरकवेर्जामाताऽऽवुत्तो वासीद् इत्युच्यते । सूर्यशतकस्य चण्डीशतकस्य च रचना-विषये घटनेयं श्रूयते यदेकदा मयूरकविर्बाणं दिदृक्षुस्तद्गेहं प्रति प्रस्थितो

निशावशाने च गतस्तत्र । इतो बाणस्य प्रिया समग्रामेव रजनीं मानमलिनमना अनुनीयमाना चासीत् । प्रातश्चानुनयपरेण पद्येन प्रेयसीं प्रसादयन् कविर्बाणः —

"गयप्राया रात्रिः, कृशतनु शशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव ।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो ।"

इति चरणत्रयं पूरयित्वा चरमचरणपूर्तये चिन्तापर आसीत् । इति श्रुत्वैव सहसा बहिरुपविष्टो मयूरः स्वप्रातिभ-प्रभामात्ररीतुमक्षमश्चरमचरणमपूरयत् —"कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्" इति । मयूरमुखनिःसृतां तुरीयामिमां पंक्तिं निशम्यातीव कुपितो बाणः —'कुष्ठी भव' इति मयूरं शप्तवान् । मयूरोऽपि तं प्रतिशप्तवान् । श्रूयते, कविर्मयूरः स्वशापशान्तये सहस्रांशोर्भगवतः स्तुतौ "सूर्यशतक"मरचत् । तत्प्रसादाच्च रोगमुक्तः समजनि । काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लासे काव्यप्रयोजनप्रस्तावे "शिवेतरक्षतये" इति पदं व्याचक्षाणेन मम्मटाचार्येण संकेतितमिदम् — "आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्" इति । महाकविर्बाणोऽपि स्वशापं शमयितुं "भूरिभावां भवानीं स्तुवन् चण्डीशतकं प्राणैषीत् । अदसीया च शैली गाढबन्धं परिचाययति । उदाहरणार्थं पद्यमेकमुद्ध्रियते :—

"विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं,
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ।।"

महाकवेर्बाणस्य तिस्रो रचनाः समुपलभ्यन्ते-(१) हर्षचरितमाख्यायिका-काव्यम् (२) कादम्बरी कथा-काव्यम् (३) चण्डीशतकञ्च शतस्रग्धराबद्धं मुक्तककाव्यम् । क्षेमेन्द्रेण स्वौचित्यविचारचर्चायां पद्यमस्याः कादम्बर्याः पद्यमेकमुद्धृतम् । कियन्तो विद्वांसोऽत्रानुमिन्वन्ति यद् बाणेन पूर्वं पद्य-मय्यपि कादम्बरी कथा

व्यरचि। परमिदमपि संभवति यद्बाणस्य कादम्बरीमाश्रित्य केनाप्यन्येन पद्यमयी कादम्बरी विरचिता भवेत्। कतिपये "पार्वतीपरिणय'मपि बाणस्यैव कृतिं कथयन्ति, यद्विषये वामनभट्टबाणस्य रचनेति साधितं मनीषिभिः। अस्य च वामनभट्टस्य समयः सप्तदशशतकं स्वीक्रियते। एतदतिरिक्तं नलचम्पूटीकायां चण्डपालेन बाणस्यैकमपरमपि नाटकं "मुकुटताडितक" नामकं संकेतितं यदद्यावधि नोपलब्धम्। वाणस्य समुपलब्धेषु त्रिषु काव्येषु अदसीय-वैदुष्य-कवित्व ख्यातेर्मूलं काव्यद्वयमस्ति हर्षचरितं कादम्बरी च। अनयोरपि महाकवेः कादम्बरी मधुरतया च जगन्मनोमोहिनी समुत्कृष्टकाव्यकलात्मिका कृतिः। कादम्बरी-विरचने महाकविना गुणाढ्यस्य बृहत्कथातः सुबन्धोर्वासवदत्तातश्च प्रेरणा गृहीता। अनयोर्गुणैः समतिक्रमणं कवेर्लक्ष्यं प्रतीयते——

"द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्धवैदग्ध्य-विलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा॥

—का० प्रस्ता० प० २०

हर्षचरितमाख्यायिका-काव्यमस्ति "कादम्बरी" च कथाकाव्यम्। कथामाख्यायिकाञ्च मिथो भेदयन् आचार्यभामहोऽभिदधाति यदाख्यायिकायाः कथावस्तु वास्तविकं भवति तथा वक्ता च स्वयं नायक एव। कथावर्णनं च सरसं गद्यमय समुल्लसति। अथाख्यायिकोच्छ्वासविभक्ता प्रत्युच्छ्वासं च आदावन्ते वा भाविघटना-संसूचकं पद्यमुपनिबध्यते यत् वक्त्रेणापरवक्त्रेण वा निबद्धं भवतिच्छन्दसा। आख्यायिकायां कविः स्वकल्पनां समावेष्टुं स्वतन्त्रः, तथा कथावस्तु-विषयश्चात्र-- कन्याहरणं, युद्धं, वियोगः, कथान्ते नायकविजयसम्बन्धश्च। इयं च पुनः संस्कृत-सरस्वत्यां समुपवर्ण्यते। कथायाञ्च कथा-वस्तु कवि कल्पना-प्रसूतम्भवति। अत्र कथावक्ता नायकभिन्नोऽन्योपि कोऽपि सम्भवेत्। अत्र नोच्छ्वासविभागनियमः, न

वात्र वक्त्रापरवक्त्र-छन्दसोर्विनियोजना। इयं सुरसस्खल्या अपभ्रंशभाषया वा निबध्यते"।

—भामह—'काव्यालङ्कारः' १-(२५-२८)

एतेन स्पष्टं प्रतीयते यद्भामहात् प्रागपि कथा आख्यायिकाश्चाख्यायन्तेस्म याश्च बाणरचनाभ्यो भिन्नां शैलीं समाश्रिता भवेयुः।

आचार्यभामहस्यायं कथाख्यायिकयोर्भेदः परवर्तिभिरालङ्कारिकैर्न स्वीकृतः। आचार्यदण्डिना काव्यादर्शे कथाख्यायिकयोर्न कोऽपि विशेषोऽमन्यत। आचार्य-दण्डिमतेन तत्र नायकस्तदितरो वा वक्ता भवतु, उच्छ्वासनिबद्धाऽनुच्छ्वासनिबद्धा वा भवतु, वक्त्रापरवक्त्रछन्दसोर्विनियोजना क्रियतां न वा क्रियताम्, नैतदुभयो-र्भेदकम्। वस्तुतः कथाख्यायिका च 'संज्ञाद्वयाङ्किता' एकैव जातिः। तथा हि—

"अपादः पाद-सन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्याऽन्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग् वा भेदलक्षणम्॥
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गेन कथास्वपि।
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः॥
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।
तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता॥
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः"[1]॥

१—काव्यादर्शः १-(२३-२८)

आचार्यदण्डिमतेनानेन प्रतीयते तत्तदानीं कथाख्यायिकयोर्भामहकृतो भेदः कविभिरुपेक्षितः "आचार्यरुद्रटेनापि स्वीयकाव्यालङ्कारे कथालक्षणं-लक्षितमस्ति ।"

तन्मतेन—

"श्लोकैर्महाकथयामिष्टान् देवान् गुरून्नमस्कृत्य ।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया ॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन ।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन् ॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक् ।
लघु तावत् संधानं प्रक्रान्त-कथावताराय ॥
कन्यालाभफलं वा सम्यग् विन्यस्य सकलश्रृङ्गारम् ।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन ॥

—रुद्रटः का० अ० १६-(२०-२३)

विभिन्नानामाचार्याणां मतानि पर्यालोचयन् निष्कर्षमिममेमि यत् उभयोस्तात्त्विको भेदः कथावस्तुकृत एव । आख्यायिका नाम सत्यां "भूतार्थां" कथामाश्रित्य प्रवर्त्तते, यत्रैतिहासिकी, अर्धैतिहासिकी वा कथात्मकथा वा समुपनिबध्यते । कथायाञ्च पुनः कथा केवलं कवि-कल्पना-प्रसूता भवति । एतदन्यत् यत्कथावर्णने कविरुत्तमपुरुष-पद्धतिं समाश्रयितुमपि शक्नोति । परं मूलमितिवृत्तं कविकपोल-कल्पितमेव भवति । रुद्रटाचार्यस्य लक्षणमिदं महाकवेर्बाणस्य कृतिद्वयमाधारीकृत्यैव कृतं प्रतीयते । रुद्रटेन महाकवेरस्य कथाख्यायिकयोर्वैशिष्ट्यमेव लक्षणे लक्षितम् । रुद्रटः आख्यायिकायाः कृते एतदावश्यकं न प्रत्येति यत्तत्र वक्ता स्वयं नायक एव स्यात् यथा भामहः स्वीकरोति । तथा प्रथमोच्छ्वासमन्तरा भिन्नेषूच्छ्वासेषु आदौ आर्ययोर्योजनामावश्यकीं स्वीचकार रुद्रटः । आभिरार्याभिश्च समस्तोच्छ्वासवर्णिताः कथा अभिव्यज्यन्ते । प्रथमोच्छ्वासे च पद्यबद्धा प्रस्तावना कृता स्यात् । रुद्रटस्य सकलानीमानि वैशिष्ट्यानि बाणस्य हर्षचरिते द्रष्टुं

शक्यन्ते। एवमेव तस्य कथापरिभाषाऽपि कादम्बरीमाश्रित्य कृता प्रतीयते। हर्षचरितस्य कथैतिहासिकी राज्ञो हर्षस्य चरिताश्रिता, यत्र पदे पदे कविकल्पना स्वगुणाविष्क्रियया परिस्फुरन्ती समुल्लसति। इदञ्चोच्छ्वासविभक्तं, वक्ता चात्र स्वयं बाणः। कादम्बर्याश्च कथा कल्पिता, न चात्र विभाजनमुच्छ्वासैः। कन्या-लाभोऽत्र प्रतिपाद्यविषयः। आधिकारिकीं कथामुपस्थापयितुं कथान्तरविनियोजना-प्यत्र कृताऽस्ति।

हर्षचरितम्

इदञ्चोच्छ्वासविभक्तमाख्यायिकाकाव्यम् यत्र महाकविर्बाणः स्थाण्वीश्वर-महाराजस्य हर्षवर्द्धनस्य चरित-संबद्धां कथां कथयामास। कतिपये विद्वांसः काव्यमिदमैतिहासिकं मन्वते। यद्यप्यैतिहासिकपुरुषसम्बन्धेन कृतिरियमैति-हासिकीति वक्तुं शक्यते तथाप्यत्र कवेः शैलीं विलोक्य सत्यकल्पनयोः संमिश्रणमि-त्येव सत्यं प्रतीयते। एवञ्चात्र भूयस्यो लोककथारूढयोऽपि प्रयुज्यमाना दृश्यन्ते। आदौ दधीचिसरस्वत्योः प्रणयगाथा, तृतीयोच्छ्वासे पुष्पभूतेः कथा, अष्टमोच्छ्वासे च मन्दाकिन्येकावल्योः कथा कथारुढिमेव प्रदर्शयन्ति। कस्मिंश्चिदैतिहासिके काव्ये एवंविधानामलौकिकीनां काल्पनिककथारूढीनां समावेशः काव्यस्यार्धैतिहा-सिकत्वं प्रमाणयति। अन्यच्च हर्षचरितस्य वर्णनशैल्यपि प्रथमतः काव्यत्वमेव साधयति। कविरत्र कल्पनाकाननेषु सुखं विहरन् शनैः शनैः हर्षस्य जीवनवृत्तं प्रकाशयति। अत एवात्र कथासूत्रं बहुत्र छिन्नं भिन्नं विलोक्यते परं कल्पनाविलासः प्रतिपदं सचेतसामन्तः सम्मोहयति। एवं कल्पनाबाहुल्येऽपि काव्यमिदमपूर्ण-मेव परित्यक्तमस्ति। काव्यस्यास्य प्रथमोच्छ्वासः त्रयोविंशतिपद्यात्मिकया प्रस्तावनया प्रारभते, यत्र महाकविः सविनयमावेदयन् पूर्ववर्तिनः कवीन् गद्यलेखकांश्च सादरं प्रशंसति।

तथा हि—

"उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥"

एवं प्रतिभाशालिन आख्यायिकाकाराः सुबन्धु-हरिश्चन्द्र-हाल—गुणाढ्यास्तथा काव्यकाराः प्रवरसेन-व्यास-भास-कालिदासप्रभृतयः सादरमुल्लिख्य नमस्कृताः सन्ति महाकविना बाणेन। सुबन्धोर्वासवदत्तां प्रशंसन् कविः कथयति—

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डु-पुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥

हरिश्चन्द्रस्य पद्य-बन्धं विशेषयन् कविराह—

"पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्ण-पदस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते" ॥

सातवाहनहालस्य "गाथा सप्तशतीं" स्तुवन् कविरभिधत्ते—

अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥"

एवं प्रवरसेनस्य सेतुबन्धमुद्दिश्य कविरुदीरयति—

"कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥"

भासनाटकानि समुदाहरन् कविर्वक्ति—"यशो लेभे भासो देवकुलैरिव'' इति। कविकोकिलकालिदासस्य सूक्तीनां तुलना निर्गत-मधुरसान्द्राभिः कृता मञ्जरीभिः —

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥" इति।

गुणाढ्यस्य बृहत्कथां प्रशंसन् कविरुल्लिखति :—

"समुद्दीपितकन्दर्पा　कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥"　इति ।

एवमेव आढ्यराजस्य कवित्वं वर्णयन् कविः कथयति :—

"आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।

जिह्वान्तःकृष्यमाणेव नो कवित्वे प्रवर्तते ॥"

—ह० च० १, १९

अत्रैव बाणः गद्यशैली-सम्बन्धेऽपि पूर्ववर्तिनां कवीनां मतानि समुल्लिखन् कुकवींश्च समाक्षिपन् स्वकीयमपि विचारं समन्वयात्मकं समुपन्यस्यति । तदानीमुदीच्याः कवयः काव्ये प्रधानतः श्लेषमलङ्कारमङ्गीकुर्वन्तिस्म । प्रतीच्याश्चार्थचारुताम् । दाक्षिणात्या उत्प्रेक्षां प्रशंसन्तिस्म । गौडाः पुनरक्षराडम्बर एव काव्यस्य रमणीयतामामनन्तिस्म ।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु　प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु　गौडेष्वक्षरडम्बरम् ॥"

ह० च०--१, ८.

महाकवेर्बाणात्प्राक्कालिकैः कविभिः प्रवर्तमाना स्वभावोक्तिशैली तदानीन्तनसमाजे स्थायितां न प्राप्नोत् । क्रमशः स्वभावोक्तिं विहाय लोकाः वक्रोक्तिं प्रत्युन्मुखाः समजनिषत । अतस्तदानीन्तना परिवर्तिता जनरुचिरेव श्लेष-प्रधानां शैलीं जनयामास । काव्यरचनायाः क्षेत्रे एतामेव प्रवृत्तिं परिलक्ष्य कविना सुबन्धुना स्वीयवासवदत्तायामुच्यते—

"सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ।
प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्ध-विन्यास-वैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्" इति ॥

—वासवदत्ता, प०—१३

एवं पूर्ववर्तिनीनां सामयिकीनां च शैलीनां विश्लेषणेन महाकविर्बाण एकां समन्वयात्मिकां शैलीं प्रवर्तयामास । भाविनां च कवीनां कृते सुपरीक्षितां काव्य-रचना-पद्धतिं प्रदर्शयाम्बभूव ।

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥" इति ।

—ह० च०, प० १, ९.

महाकविरयं "अन्यचिन्तितस्वाभिप्रायवेदकम्" "विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्य-मानाभिनवार्थसंचयम्" उत्कृष्टकविगद्यं'' जगाद । एतावता पर्य्यालोचनेन प्रतीयते यन्महाकवेर्बाणस्य गद्यरीतेरादर्शः अयमेवास्ति । अस्यादर्शस्य परिस्फुटं स्वरूपं कादम्बर्य्यां परिलक्ष्यतेऽस्माभिः, एकत्र मनोरमाक्षरघटिताऽऽख्यायिका सुखद-ललितशय्यया तुलिता महाकविना—

"सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥"

ह० च०, प०—१, २१.

अपरत्र च कादम्बर्यामिव सलज्जपदन्यासेन शय्यां प्रति सरन्त्या कुलकामिन्या सह कथायास्तुलना कविना कृतास्ति[1] ।

प्रथमोच्छ्वासस्य कथावस्तु

हर्षचरितस्य प्रथमोच्छ्वासे प्रथमं महाकविः स्ववंशपरिचयं प्रस्तौति । वात्स्यायनगोत्रसंभवानां ब्राह्मणानामुत्पत्तिं वर्णयन् बाणः दुर्वासःकर्तृक "सरस्वतीशापस्य

१—ह० च० प० १, १२.

कथां निबन्ध । दुर्वाससा च शप्ता' सरस्वती सावित्र्या सह धरातलमवतरति । एकदानुनदं लतामण्डपे सुखोपविष्टयोस्तयोः कुतश्चिदेको युवा अश्वमारूढः ससैनिकः तत्राजगाम । स च सरस्वतीमवलोक्य तद्रूपमोहितः समजनि । अयं कुमारः च्यवनस्य मुनेः पुत्रो दधीचिरासीत् । प्रथमोच्छ्वासे दधीचि-सरस्वत्योः प्रणय-कथा सविस्तरं वर्णितास्ति । सावित्र्याः दधीचिमित्रस्य विकुक्षेश्च प्रयत्नेन उभयोर्मेलनं जायते । विरहविधुरायाः सरस्वत्याः वर्णनमतीव हृदयहारि सम्पन्नमत्र । अथ सा सारस्वतनामानं पुत्रमेकं जनयामास, सारस्वतश्च ऋषिपत्न्या परिपाल्यमानः तत्पुत्रेण वत्सेन सह विविधबाल-क्रीडारसमनुभवन् यथाविधि चाधीयानः संवर्धते-स्म । वत्सस्यैव कुले कुबेरनामा बाणस्य पूर्वजः समजायत । ततः चित्रभानुरुत्पन्न-स्ततश्च महाकविर्बाणो व्यजनि ।

द्वितीयोच्छ्वासे बाणः कृष्णस्य पत्रं प्राप्य राजानं दिदृक्षुः स्वग्रामात् प्रतस्थे । अत्रोच्छ्वासे आदौ ग्रीष्मस्य प्रचण्डतायाः राजद्वारस्य चातीवालङ्कृतं वर्णन-मुपलभ्यते । कवेः समस्तपदावलीप्रयोगस्य रूपमेकमत्र द्रष्टुं शक्यते । कविरत्र राजपरिषदि पूर्वं तु न तथादृतः परं पश्चात् स्वप्रतिभया राज्ञो विश्वासभाजन-मजायत । तृतीयोच्छ्वासे बाणो राजधानीतः स्वग्राममाजगाम । तत्र च भ्रात्रा हर्षस्य जीवनचरित्रं चित्रयितुमागृहीतः तच्चरितमररचत् । अस्मिन्नुच्छ्वासे स्थाण्वीश्वरस्य नगरस्य सविस्तरमलङ्कृतं चारुवर्णन चास्ति । राज्ञाञ्च कुलं वर्णयन् कविः काल्पनिकमेकं हर्षस्य पूर्वजं पुष्पभूतिनामकं राजानमुल्लिलेख । अत्रैव पुष्पभूतेर्भैरवाचार्यशैवयोगिनश्च समुज्ज्वलं वर्णनं विद्यते ।

हर्षचरितस्य प्रधानं कथावस्तु चतुर्थोच्छ्वासतः प्रारभते । प्रभाकरवर्धनं वर्णयता कविना तदीयशौर्यादिसम्बद्धा घटना नोपन्यस्यते । आदौ राजमहिषी यशोवती स्वप्ने सूर्यमण्डलादागच्छन्तौ कुमारौ कुमारीञ्चैकां स्वोदरं प्रविशन्तीं पश्यति । पश्चात् यशोवत्याः प्रथमप्रसवस्य संकेत उपनिबध्यते । राज्यवर्धन-रयोत्पत्त्यनन्तरं हर्षस्य राज्यश्रियश्च जन्मवर्णनं ततः मौखरिगृहवर्मणा सह राज्यश्रियो

विवाहवर्णनं कृतमस्ति । अत्रैव राज्यवर्धनस्य हूण-विजय-प्रस्थानवर्णनं सुन्दरमुपनिबद्धं कविना । हर्षोऽपि तेन साकं गच्छति, परं मध्येमार्गं मृगयार्थं विरमति । एतस्मिन्नेवान्तरे स्वपितू रुग्णतायाः समाचारं श्रुत्वा राजधानीं प्रति निवर्तते । तत्र च पितुरतीव शोचनीया दशा संवृत्तासीत् । इतः प्रभाकरवर्धनस्यान्तिमां दशां विभाव्य देवी यशोवती पूर्वत एव अधिनदीतीरं प्रज्ज्वलितायां चितायां सती बुभूषति, हर्षस्तां रुरुत्सति, परं पतिविप्रयोगात् प्रागेव सा संसारमिमं तत्याज । पश्चात् प्रभाकरवर्धनोऽपि पञ्चत्वं प्राप्नोत् ।

षष्ठोच्छ्वासे राज्यवर्धनो हूणान् विजित्य राजधानीमागत्य हर्षाय सहर्षं राज्यभारं दित्सति, परमस्मिन्नेवान्तरे समाचार उपलभ्यते यत् मालवराजः गृहवर्माणं हत्वा राज्यश्रियं बन्दिनीं चकारेति । इति श्रुत्वा सद्य एव राज्यवर्धनः अयुतमश्वानां सज्जीकर्तुं प्रधानसेनापतिं मण्डिनमादिश्य मालवराजमाक्रमितुं प्राचलत् । हर्षस्तु राजधानीमेवाधिवसति । अथ समाचारः प्राप्यते यत् राज्यवर्धनः मालवराजं विजितवान्, परं प्रतिनिवर्त्तनकाले गौडाधिपेन हत इति । इति निशम्य हर्षस्तु तदैव युद्धघोषणां चिकीर्षति, परं सेनापतिना सिंहनादेन वारितः अवसरं प्रतीक्षमाणः तस्थौ ।

सप्तमोच्छ्वासे हर्षस्य सेनाप्रयाणं विस्तरेण सालङ्कृति च वर्णितमस्ति । प्राग्ज्योतिषस्य राजदूतो हर्षमुपागम्य तस्मै दिव्यमेकमातपत्रं समर्पयामास । अत्रैवच्छत्रस्य दिव्योत्पत्तेः कपोल-कल्पिता कथा कथिताऽस्ति । तच्छत्रं पूर्वं वरुणस्यासीत् ततश्च नरकासुरो जहार, तदेव वंश-परम्परया भगदत्तोऽधिचकार । ततश्च क्रमेण प्राग्ज्योतिषेश्वरः प्राप्तवान् । प्राग्ज्योतिषाधीशः हर्षेण समं सख्यं चिकीर्षुस्तस्मै तदुपायनं ददातीति ।

अष्टमोच्छ्वासे विन्ध्याटवीमटन् हर्षो निषादेन सह राज्यश्रियं मार्गमाणः वनाद् वनं परिभ्रमति । तौ दिवाकरमित्रस्याश्रमं प्राप्नुतः । तस्य च मुने-

स्तपोवलवर्णने कविर्बाणः स्वकाव्यकौशलं प्रदर्शयति । दिवाकरमित्रस्याश्रमवर्णनं कादम्बर्याः जाबालिमुनेराश्रमवर्णनेन सह तुलयितुं शक्यते । हर्षस्ततो राज्यश्रियं जिज्ञासते । तदैव सहसा भिक्षुरेकः समागत्य कस्याश्चित् स्त्रियाश्चितायामात्मानं दिधक्षोः समाचारमानयति । हर्षो लघु गच्छन् तथाविधां राज्यश्रियं रक्षितुं सफलोद्योगः समस्ति ? राज्यश्रीश्च एवं निराशं वेदनाविद्धं जीवनं यथाशु समीप्सति । दिवाकरमित्रस्तां प्रबोध्य सह हर्षेण स्वराजधानीं प्रेषयति ।

कादम्बरी

महाकवेर्बाणस्य विश्वविख्याता कृतिः कादम्बरी कादम्बरीव सहृदयश्रुतिपात्रगता मधुरिम्णा मादकतया च निरुपमानन्दसंदोहं संजनयन्ती जेगीयते । कथा च कविप्रतिपाद्योऽत्र कन्यालाभः । अतः कथाकाव्यमिदं कथ्यते काव्यशास्त्रिभिः । अकाल-काल-कवलनेन कविरिमां कृतिं पूर्णतां प्रापयितुं नापारयत् । प्रतिभावान् पुत्रोऽस्य पुलिन्दनामा भूषणनामा वा कृतेरुत्तरार्धं समपीपदत् । काव्यमिदं भागद्वय-विभक्तमस्ति—तत्र पूर्वभागः महाकविबाणकृतः, उत्तरश्च तत्पुत्रप्रणीतः । उत्तरार्धस्य प्रारम्भे कथा-विशेष-सम्पादनस्य भूषणेन केवलमिदमेव प्रयोजनमाख्यायते यत् पितुरपूर्णकृत्या सतां दुःखं विलोक्य तेषां मनः-प्रसादाय कृतिरियं पूर्यते, न तु स्वकीयकवित्वदर्पप्रदर्शनाय :—

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः ।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥" इति ।

कादम्बरीकथायां चन्द्रापीडपुण्डरीकयोस्त्रयाणां जन्मनां चरितानि कविश्चित्रयामास । बाणस्येदं कथावस्तु सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्ष्यमाणं प्रतीयते यदिदं पूर्णं विकासमवाप्नुवदेव सहसा समाप्तिमेति । प्रारम्भे विदिशाधीशस्य राज्ञः शूद्रकस्य सभायां चाण्डालदारिकैका मनुष्यवाचं शुकमेकमादाय प्रविशति, तेनैव च वैशम्पायननाम्ना

शुकेन कथेयं प्रारभ्यते। शुकमुखेन कथांशाख्यापनात्मिका कथारूढिरियं सुबन्धोर्वासवदत्तायामप्युपलभ्यते। तथा परवर्तिष्वपि कथासाहित्येषु प्रयुज्यमाना परिलक्ष्यते। अपभ्रंशकाव्येषु कियन्तः पक्षिणः कथांशं कथयन्तः समुपलभ्यन्ते। मुनेः कनकाभस्य "करकण्डुचरिउ' काव्ये कविनिबद्धः शुकः बाणस्य वैशम्पायन इव दृश्यते। वैशम्पायन इव सोऽपि ऋषेराश्रममधिवसन् सकलशास्त्राणि समधीयानः संवर्णितोऽस्ति। बाणस्य शुक इव सोऽप्यधिराजसभं चरणमेकमुत्थाप्य राजानमाशीर्वचोभिः सनाथयति।

—करण्डचरितम्, परि० ८, पृ० ७४.

अत्र 'कथायां कथायोजनात्मिका'ऽपरापि कथारूढिः प्रयुक्तास्ति। शुककथान्तःप्रविष्टा जावालि-कथिता चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः कथा निबद्धाऽस्ति। तदन्तश्च महाश्वेतोक्ता स्वपुण्डरीकप्रणयकथा दृश्यते। महाश्वेतया सह चन्द्रापीडः कादम्बरीं साक्षात्करोति। प्रथमदर्शन एवोभौ परस्परं प्रेमासक्तौ भवतः। कथाया आधिकारिकं वस्तु—चन्द्रापीड-कादम्बर्योः प्रणयः–अति पश्चात् कथामध्ये निबध्यते महाकविना। उभयोः प्रणयसाफल्यात्प्रागेव पितुरादेश-परवशश्चन्द्रापीड उज्जयिनीं प्रति प्रतिष्ठते। अथ ताम्बूलकरङ्कवाहिनी पत्रलेखा राजकुमारं चन्द्रापीडमुपागम्य कादम्बरी-सन्देशं श्रावयति। इहैव बाणकृतः पूर्वो भागः समाप्तिमेति। उत्तरभागे च कादम्बरीरूप-पिपासुश्चन्द्रापीडो महाश्वेतामुपगच्छति, ततश्च स्वमित्रस्य वैशम्पायनस्य विपद्वृतान्तमुपलभ्य दोदूयते। महाश्वेतारूपमाधुरीमोहितमना वैशम्पायनो रहसि तां प्रणयं याचमानस्तपस्विन्या तया "शुको भवेति शप्तः"। मित्रस्य विपदमिमां निशम्य चन्द्रापीडस्तत्क्षणमेव तत्र प्राणान् तत्याज। कादम्बरी तत्रागत्य बहु विललाप। चन्द्रापीडस्य गतासुष्वपि शरीरं विकार-विहीनं संतिष्ठते। पितरौ-तारापीडो विलासवती च सुतनिधन-वृतान्त-श्रवणेन अतीव समुद्विग्नचेतसौ भवतः। जावालिकथा इहैव समाप्नोति। तत्पश्चात् शुकं (पुण्डरीकम्) अन्वेषयन् तन्मित्रं कपिञ्जलः जावाल्याश्रममागतो मित्रस्य दशामिमां दृष्ट्वाऽतीव दूयते। एकदा शुकस्तदाश्रमा-

दुत्पत्य केनचिच्चाण्डालेन गृहीतः तेन च स्वसुतायै समर्पितस्तया सह राजसभामायाति। शुक एतदतिरिक्तं सभायाञ्च स्वानयन-प्रयोजनं वा न वेद। अथ चाण्डालदारिकाऽऽत्मनो वास्तविकं परिचयं प्रददती समभिदधाति "अहमस्मि पुण्डरीकमाता स्वयं लक्ष्मीरिति। शुकश्चायं पुण्डरीकः शापवशात् शुकनाशपुत्रो वैशम्पायनो भूत्वा महाश्वेतया च शप्तः शुकयोनिमवाप्तवान्। भवानपि (शूद्रकः) इतः पूर्वस्मिन् जन्मनि चन्द्रापीडस्ततोऽपि पूर्वं स्वयं भगवान् चन्द्रमाः मदनज्वालावदग्धेन पुण्डरीकेण पुनः पुनर्जन्म ग्रहीतुं शप्तो बभूव। एतावदभिधाय सान्तर्धत्ते। अन्तर्हितायाञ्च तस्यां शुक-शूद्रकावपि स्वस्वशरीरं तत्यजतुः। चन्द्रापीडश्च पुनर्जीवति, पुण्डरीकश्च गगनादुत्तरन् दृश्यते। जन्मान्तरविप्रयुक्तानां स्नेहिनां पुनर्मेलनं सञ्जायते—"न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह, कादम्बरी महाश्वेतया सह, महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह, पुण्डरीकोपि चन्द्रमसा सह परस्परावियोगेन सर्व एव सर्वकालं सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन्"।

—का० उ० भा० पृ० ७११.

महाकवेर्बाणस्येयं कादम्बरी कथा बृहत्कथातः प्राप्तप्रभावा परिलक्ष्यते। तत्रेवेहापि शाप-पुनर्जन्मप्रभृतीनां लोककथारूढीनां संधानं संलक्ष्यते। परमत्र बृहत्कथा-कथा यथावन्न गृहीताऽस्ति कविना। उभयोरुपसंहृतिः परस्परं भिद्यमाना वर्तते। कथायां कथा-योजनस्य रूढिरपि बृहत्कथाया एव पद्धतिरस्ति। इयमेव पद्धतिर्नीतिकथासूपलभ्यते। महाकविना दण्डिना एकाऽपरा शैली समुद्भाविता। "दशकुमारचरिते" सर्वेऽपि राजकुमाराः स्वानुभूता घटना उत्तमपुरुषशैल्यामाहुः। एकेनानुभूता घटना भात्रा वा अपरेण यथावत् वर्णयितुं न शक्यन्त इत्यतोऽपि लोककथासु प्रणालीयं प्रचलिता। कादम्बर्यां शुकस्य महाश्वेतायाश्च कथाः उत्तमपुरुषप्रणाल्यामेव वर्णिताः सन्ति। परं जाबालिकथायामन्यपुरुषप्रणाली दृश्यते, परं तस्य त्रिकालदर्शित्वं तदुक्तान्यकथायामपि वैयक्तिकानुभूतेः सञ्चारं कुरुते।

बाणेनात्र कतिपयाः कथारूढयो विनियोजिताः, यत्र मनुष्य इवाविकलं वदन् सर्वशास्त्रविशारदः शुकः, त्रिकालदर्शी महात्मा जाबालिः, मर्त्यलोकात् विदूरे नगाधिराजस्य स्वर्गीये वातावरणे वसन्तो यक्षकिन्नरादयः, शापादाकृतिपरिवृत्तिः, पुनर्जन्म धारणा च प्रमुखतयोल्लेखयोग्याः सन्ति। बाणस्य पात्राणि दण्डिन इव मर्त्यलोक सञ्चारीणि यथार्थवादीनि न सन्ति, परं चन्द्रलोके, गन्धर्वलोके, मर्त्यलोके च निर्बाधं संचरणशीलानि आदर्शभूतानि सन्ति।

कादम्बर्यपि अभिज्ञानशाकुन्तलमिव—"स्वर्लोकभूलोकयोः संमिश्रणमिति सुखं वक्तुं शक्यते। यद्यपि कविरत्र चरित्रचित्रणापेक्षया अभिव्यक्ति-कौशलं प्रत्येव विशेषतः कृतप्रयत्नो दृश्यते, तथापि तदीयपात्राणि कवेः कुशलसञ्चालनेन सजीवानीव भान्ति सहृदयानाम्। स्वामिभक्तस्य मेधाविनः शुकनासस्य चरित्रं, वैशम्पायनस्यादर्श-सख्यं महाश्वेतायाश्च स्वर्गीयः प्रणयः हठादेव सचेतसां मनो मोहयन्ति।

कादम्बर्यां बाणस्य प्रधानमाधारः पुनर्जन्मधारणैव विद्यते। अत्रोभावपि नायकौ (चन्द्रापीड-पुण्डरीकौ) त्रयाणां जन्मनां भोगभाजौ संवर्णितौ स्तः। नायिके (कादम्बरी महाश्वेता च) केवलमेकस्मिन् जन्मनि संतिष्ठेते। अत्र महाकविर्बाणः कालिदास इव "जननान्तरसौहृदस्य प्रेम्णः संकेतं कुर्वन् प्रतीयते। यथोक्तं कालिदासेन—

"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्य्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥ इति।

अभि० शाकुन्तलम्—अं ५.

नायकयोर्निधनेन करुणं गम्भीरं च प्रणयचित्रं दिवंगतयोरपि तयोः पुनर्मेल-नाशा अपूर्वमिव भाव-सम्पदं सहृदयानां हृदये समुद्भावयतः।

महाकवेर्बाणस्य प्रेमचित्रणमतीवोदात्तं रमणीयञ्चकास्ति। राजकुमारं चन्द्रापीडं पश्यन्त्याः कादम्बर्याः सात्त्विकभावानां वर्णने अपह्नुति-कृता चमत्कृतिः प्रकृतरसानु-कूलतया विलक्षणमेकमानन्दं संजनयते। "अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेद-मजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्, ऊरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुर-रवाकृष्टहंसमण्डलमयशो लेभे, निश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ।"

—का० पू० भा० पृ० ३९५

पुण्डरीकं दृष्टवत्या महाश्वेताया अपि हृदये एवमेव भावः परिस्फुरति— "उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः पुरस्तदाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम्।"

—का० पू० भा० पृ० ५.

शृङ्गारस्य विप्रलम्भपक्षोऽपि अतीव मार्मिकतया महाश्वेताया विलापे, कादम्बर्या विरहवर्णने वर्णितो दृश्यते। जरद्धार्मिकवर्णने हास्यरसच्छटापि लोचन-पथमवतरति। स्त्रीणां सौन्दर्यवर्णने बाणस्य प्रतिभा पटीयसी परिलक्ष्यते। चाण्डालकन्यायाः, शूद्रकं स्नपयन्तीनां वारविलासिनीनां, महिष्या विलासवत्याः, ताम्बूलकरङ्क-वाहिन्याः पत्रलेखायाः, तपस्विन्या महाश्वेतायाः, गन्धर्वराजपुत्र्याः कादम्बर्याश्च रूपनिरूपणे बाणस्य कल्पना अतीवोदात्तगत्या पुरः सरति। अतीव कृष्णा चाण्डालदारिका तथा वर्णिता बाणेन यथा सत्यमेव सा—"मूर्च्छेव मनोहारिणी' प्रतिभाति। रचितकिरातवेषा भवानीव भाति। महाश्वेतायास्तपःपूतमूर्तेश्चित्रणे कवेर्बाणस्य कल्पना अविश्रान्तं प्रवहति।

"त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासां,

देहवतीमिव मुनिजनध्यानसम्पदम्, धर्महृदयादिव विनिर्गताम्"—इति ।

महाश्वेतावर्णनं सहृदयानां हृदयं चन्द्रापीडस्य मस्तकमिव तस्याः समादरे सन्नमयति । कादम्बर्या रूपवर्णनन्तु क्षणं सहृदयं चन्द्रापीडमिवाचलं विधत्ते । स्त्रीणां रूपवर्णन इव पुरुषोचिताकृतिवर्णनेऽपि बाणः प्रवीणः दृश्यते । शूद्रक-चन्द्रापीडयोः राजोचित-चित्रणे जावालि-हारीति (हारीत)—पुण्डरीककपिञ्जलानां तपस्विजनोचितवर्णने शबरसेनापतेर्भीषणाकृत्याकलने कवेः समानमेव पाटवं परिलक्ष्यते ।

बाणस्य वर्णनानि विलोक्य प्रतीयते यदयं तत्र शैलीत्रयं समाश्रयति । पूर्व-जात्या (स्वभावोक्त्या) वर्ण्यविषयस्य रूपरेखामाकलय्य पश्चादुपमोत्प्रेक्षादिभि-रलङ्कारैस्तां रञ्जयति । अमी चालङ्कारा एकत्र पात्रं प्रति कवेर्भावं प्रकाशयन्ति, अपरत्र च पात्रस्वभावस्य मनोवैज्ञानिकं परिचयं प्रस्तुवन्ति । यथा शूद्रकस्य कृते—"हर इव जितमन्मथः" इति विशेषणं शूद्रकस्य हृदये केनापि प्राक्तन-संस्कारेण कामिनीं प्रत्यनाकर्षणमपि व्यनक्ति । तथा हि—"तस्य च सुरतसुख-स्योपरि द्वेष इवासीत् सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे, लावण्यवति, हृदयहारिणि चावरोधजने ।" एवं वर्ण्यं सम्यक् संवर्ण्य पश्चात् केवलमलङ्कृतिप्रियाणां पण्डितानां मनस्तोषाय शाब्दी क्रीडापि क्रियते महाकविना । तथा हि राजानं शूद्रकं सम्यग् वर्णयित्वा पश्चात् परिसंख्यालङ्कृतिच्छटा प्रदर्श्यते—"यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः ।" इत्यादि ।

कवेरस्य प्रकृतिवर्णनेषु जावाल्याश्रमस्य संध्यावर्णनमतीव रमणीयमस्ति—

"कापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना संध्यातपोधनैरदृश्यत । अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा, कमलकुलकमण्डलु धारिणी·······कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत् ।"

—का० पू० १०५.

अत्र सन्ध्यायास्तपोवनधेन्वा सहोपमा कालिदासस्य कल्पनां स्मारयति—

"संचारपूतानि दिगन्ताणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभापतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥" इति ।

एवञ्च दिनपतिविप्रयुक्तां कमलिनीं नायिकां कृत्वा नायकसमागमाय तपश्चरन्तीं वर्णयन् कविरत्र नाटकीयपताकास्थानं प्रयुङ्क्ते येन महाश्वेतायाः भाविनी दशा संकेत्यते ।

बाणस्य कथा तथा सरसा यथा सा स्वयमेव पदशय्यया समन्विता भवति, तदुक्तयश्च वक्रोक्तिपूर्णाः कोमलाश्च लसन्ति । अभिव्यङ्ग्याभिव्यञ्जनयोः—रस-कलालापविलासयोरेवं हृदयहारिणं समन्वयं दृष्ट्वा सहृदयास्तथा चमत्कृताः सम्पद्यन्ते यथा वक्रमालपन्तीं नवोढां वधूं प्रेम्णा स्वयं शय्यां प्रति सरन्तीं दृष्ट्वा नायकः कश्चित् चमत्कृतचेताः सञ्जायते ।

"स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ इति ।

—का० प० ८.

क्वचिन्नवोढाभावाभिभूता स्वयं न वा नायकमुपागच्छतु परं तस्याः काल्पनिक-रूपं बाणस्य महाकवेः रसवत्यां कथायामुपलभ्यते या मुग्धासुलभव्रीडां विहाय स्वयं नायकमुपयाति । इदमस्ति बाणस्य वैशिष्ट्यं येनायं सकलेऽपि संस्कृत-साहित्ये निरुपम एव गण्यते । कालिदासस्य नायिका अन्तर्भाव-पूर्णापि बहिस्तथा सलज्जा यथा सा—"गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका" । समुज्ज्वलदीपैरिव नवीनैः सुमनोभिः रचिता, चम्पककलिकाभिः सघनमनुस्यूता, अधिमध्यं मालतीकलिता मालेव बाणस्य कथाऽपि दीपकोपमादिभिरलङ्कारैरलङ्कृता श्लेषालङ्कृतिघटिता स्वभावोक्तिरमणीया कस्य सचेतसः चेतोहारिणी न सञ्जायताम् । तथा हि—

"हरन्तिकं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ।।" इति ।

—का० प० ९.

परमियं मनोहारिणी मालापि "वेबर" (Webber) महोदयस्य मनो न जहार ! अत्र मालया किमपराद्धम् ? यथाचोक्तं पण्डितराजेन—

"यत्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन, किन्तेन चम्पकविषादमुरीकरोषि ।
विश्वाभिरामनवनीरदनीलवेशाः केशाः कुशेशयदृशां कुशलीभवन्तु ।।" इति ।

वेबरमहोदयः बाणस्य शैलीं भीषणां विन्ध्याटवीमिवाद्राक्षीत्, यत्र पदे पदे श्लिष्टाः शब्दाः, दुर्बोधा पदयोजना, समस्तानि पदानि दीर्घाणि च वाक्यानि भीषण-जन्तव इव तमभीषयन् । इदन्तावद्रुचिवैचित्र्यमात्रम् अशक्तिर्वा पाठकानाम् । वस्तुतो बाणः संस्कृतसाहित्यकाननस्य पञ्चाननः यः कविताविन्ध्याटवीपथे धीरं गभीरं संचलति—

"आसर्वत्रगभीरधीरकविता-विन्ध्याटवीचातुरी—
संचारीकविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।" इति ।

बाणस्य पश्चात् 'तिलकमञ्जरी'कारो धनपालः (११, शताब्दी) शैलीमस्या-नुकर्तुं प्रायतत, परं साफल्यं नाधिगतवान् । तदुच्छिष्टमेव प्राप्य संतुष्टिमाप्तवान् । अत एव बाणस्य समालोचका उच्चैरिदमाघोषयन्ति—"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वमिति ।" बाणस्य शैलीं प्रशंसन् आह कश्चित् कादम्बरीरसतुष्टमनाः सहृदयः —

"रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ।।"

इति ।

महाकविबाणभट्टः

निःश्वसित-श्रुतिमीशं शिरसा शीतांशुसुरसरिद्द्वितीयम् ।
विभ्राणं हृत्पीठे कृत-वसतिं नौमि झारखण्डेशम् ॥१॥

वाणीमशेषजगतां हृदि विस्फुरन्तीं प्रत्यूह-वारण-विदारण-केसरीन्द्रम् ।
आचार्य-पाद-युगलं निजमानसान्ध-ध्वान्तापहञ्च हृदयेन विभावयामि ॥२॥

बाणं गीर्वाण-वाणी-प्रणयिनमनघं ख्यातकीर्तिं कवीन्द्रम्
विद्या-विद्योतिताङ्गं सकलकविकला-कामदं कामदेवम् ।
नत्वाऽश्रित्य प्रबन्धं तमहमबुधता-चातुरीनष्ट-चेता
यत्कुर्वे सा प्रवृत्तिर्ममहत-चरणस्याद्रि-संलङ्घनेहा ॥३॥

तथापि केवलं नैज - वाणी - पावन - हेतवे ।
करोमि साहसं यत्तु तत्क्षमन्तां बुधा मुदा ॥४॥

सन्निबन्धामृताऽऽस्वाद-जातारुच्युपशान्तये ।
कटुतिक्तोऽपि किं न स्याल्लेखोऽयं लवणान्वितः ॥५॥

सुसंस्कृते संस्कृतसाहित्ये कमनीय-कविता - कामदेवस्य पण्डितमण्डलाऽखण्डलस्य, समुद्भट-भट्टोपाह्वस्य, महाकवेर्बाणस्य प्रथिततमं नाम के न जानन्ति । के वा न मन्यन्ते सुरभारती-महो-महोज्ज्वलेषु महाकविमूर्धन्येषु समुन्नततममेषां स्थानम् । शब्दार्थशरीरस्य खलु काव्यस्य आत्मत्वास्कन्दितानामास्वाद्यरसानां, सर्वसुन्दराङ्गप्रसङ्गेनाङ्गिनामिव शब्दार्थ-शोभयोत्कर्षमादधत्या वैदर्भी-गौडी-पाञ्चाली लाटिकाख्य-पदसङ्घटनात्मकरीत्या सर्वथैवारीतस्य, अमन्दा-नन्दोद्बोधानवद्यस्य गद्यस्य तु प्राचार्या एव श्रीमन्तः । गद्यं कवीनां निकषं वदन्तीति प्रथित एवा-लङ्कारिकाणामुद्घोषः । यथा खलु निकषाख्य-पाषाण-संघृष्टानि सुवर्णानि स्वीयां

काञ्चन कमनीयां कान्ताकृतिं प्रकाशयन्ति, तथैवानवद्य-गद्यनिकषसंम्मर्दो-द्भासिता एव कवयोऽप्युद्योतन्ते । यः कोऽपि कविरस्मिन् निकषे सर्वथा समुत्तरति स एव हस्तामलकवन्निखिलभुवनावलोकी वास्तविकः कविः, भवति च तस्यैवानल्प-कल्पना-कल्पतरुः कविताकाञ्चनमयः । अस्मिन् निकषे कष्यमाणो बाणः परमार्थ-तयैव गीर्वाणत्वं लेभे इति नास्त्यत्र कस्यापि सन्देहस्यांशिकोऽवसरः । सुरसरस्वती-साहित्ये एतस्य किल कादम्बरी कादम्बरीव कामिनीकामुकनिकुरम्बान् मदयन्ती विद्यत एव गद्यकाव्यादर्शभूता । अर्वाचीना विपश्चितः कतिपये कवयः तमनुकृत्यैव लिखितुमारेभिरे गद्यम् । समास्वादितरसरसालेन सोढलेन—"उदयसुन्दरीकथा", धीधनपालेन धनपालेन—"तिलकमञ्जरी" च एतदीयं ग्रन्थमेवाग्रेकृत्य लिखिते । कादम्बर्या आदर्शकथाकाव्यत्वादेव महाराष्ट्र्यां कथामात्रमेव कादम्बरीशब्देना-भिधीयते । एतस्यैव सुरपुरगणिकागणजेगीयमानयशसो महाकवेर्बाणस्य चर्चया कामयेऽहमात्मानं पावयितुम् ।

महाकवेर्जीवनवृत्तम्

अस्माकं सौभाग्यवशादेव भट्टमहोदयेन लिखितात्मकथां सर्वथैव साहित्यसंसारस्य दयांबभूवे, त्रोटयाञ्चक्रिरे च हर्षचरिते वर्णितेनात्मकथारूपेणोत्तरेण प्राचीनमहा-कविषु निजवृत्तान्तानुल्लेखनस्य, ऐतिहासिकनयनानङ्गीकारस्य च दोषमध्यारोप-यतामाधुनिकानां कूपमण्डूकानां मुखानि । निजवंशवर्णनाऽविरहितः कादम्बर्या उपक्रमः प्राचां कलङ्काङ्कमपनयत्येव । एतभ्यामुभाभ्यां बाणोल्लिखितप्रमाणाभ्यां ज्ञायते यदयं जन्मना वात्स्यायनवंशमलञ्चक्रे । अस्मिन्नेव वंशे धनेनापरः कुबेर इव नाम्ना कुबेरः कश्चित् पण्डितप्रकाण्डो विद्वान् बभूव । यस्य च सविधे विद्यार्थि-निवहाः पिपीलिका इव श्रुति-सितोपलब्धये सर्वदैकत्र समतिष्ठन्त ।

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणाः वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥

इति कादम्बरीसमुट्टङ्कितश्लोकेन तु एतावत् पर्यन्तं ज्ञायते यदेतेषां गृहे पिञ्जरावस्थिताः शुकसारिकाः यजूंष्यधीयानान् साम सङ्गायतश्च च्छात्रान्प्रतिपदं सत्यामशुद्धौ निगृह्णन्तिस्म । तस्य च श्रुतिसम्मितेषु सूनुषु कनीयान् पाशुपतः प्रादुरभवत् । तत्तनूजनुषोऽर्थपतेः तेजसा अपर इव चित्रभानुश्चित्रभानुः समजायत । एषोऽपि सकलशास्त्रनिष्णातः दिगन्त-विस्तृतां निसर्गशुक्लां कीर्तिं सततसंपाद्यमान-यज्ञधूमेन मलिनयन्नासीत् । अयमेव महाभागः प्रस्तुतनिबन्धनायकस्य महाकवेर्जन-यिता । राजदेव्यभिधाना ब्राह्मणी च माता । परमसौ बाल एव विधेर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या । तदनु जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृत्व-मकरोत् ।

अथ कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्यैवास्य जनकोऽपि श्रुति-स्मृतिविहितं द्विजजनोचितं समस्तमेव पुण्यसम्पातं सम्पाद्य कालेनादशमीस्थ एवास्तं जगाम । समुपरते च पितरि कष्टां दशामनुप्राप्तोऽयं दिवा-निशं दन्दह्यमान-हृदयः कथं कथमपि कतिपयान् दिवसानात्मगृह एवानैषीत् । गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयननिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहल-तया च बालभावस्य, धैर्य-प्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितानि अनेकानि चापलानि आचरन् गत्वरो बभूव । अभवंश्चास्य सवयसः सुहृदस्सहायाश्च, तद्यथा द्विजात् शूद्रायां जातौ चन्द्रसेनमातृषेणौ भ्रातरौ, परममित्रं भाषाकविरीशानः, रुद्रनारायणौ प्रणयिनौ, विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ, अनङ्गबाणसूचीबाणौ बन्दिनौ गारुडिको मयूरकः, ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुंस्तकवाचकः सुदृष्टिः, स्वर्णकारश्चामीकरः, तदध्यक्षो हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, मृदङ्गवादननिपुणो जीमूतः, सोमिलग्रहादित्यौ गायकौ, पादादि-सम्वाहिका केरलिका, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, द्यूतकार आखण्डलः, धूर्तो भीमकः, नर्तकी

हरिणिका, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, ऐन्द्रजालिकः चकोराक्षः, परिव्राट् ताम्रचूडकादिः। स खलु एतैरन्यैश्चानुगम्यमानो बालत्वेन तदधीनतामुपगतो देशान्तरालोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः पितृपितामहोपात्तेषु सत्स्वपि ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु, सत्यपि चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगच्छत्। अथाचिरादेव भूताभिभूत इव नवयौवनेन स्वतन्त्रेण मनसा महतामुपहास्यतामगमत्। किन्तु कियतः कालादनन्तरमेव शनैः शनैरत्युदारव्यवहारमनोहारीणि राजकुलानि वीक्षमाणः अनवद्यं विद्या-विद्योतितानि गुरुकुलानि सेवमानः, साभिप्रायालाप-गम्भीर-गुणवद्-गोष्ठीरुपतिष्ठमानः, निसर्गगम्भीर-धीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः भूयोऽपि तामेव वैपश्चितीं निजवंशोचितां प्रकृतिं भेजे। तथा बहोः कालात् तामेव वात्स्यायनवंशाश्रयाम् आत्मनो जन्मभुवं प्रत्याययौ। तत्र च चिरदर्शनात् नूतनीभूतस्नेहसद्भावैः ससंस्तव-प्रकटितबन्धुताकैः आप्तैः उत्सवदिवस इवानन्दिताभिगमनो बालमित्रमण्डलस्य मध्यगतो मोक्षसुखमिव परमानन्दमन्वभवत्। तस्मिन्नवसरे विबुधोपगतो देवेन्द्र इव मानवेन्द्रः गुणि-गण-गुण-ग्रहण-गरीयान् हर्षवर्धननामा महाविपश्चित् सम्राट् स्थाण्णीश्वरमधिवसन् ससागरां धरित्रीं शासदासीत्। अनन्तरं तस्यैव सम्राजः भ्रात्रा कृष्णवर्धनेन प्रेषित एकश्चारः बाणमुपेत्य पत्रमेकम् अददात्। अथ बाणः सादरं गृहीत्वा तत्रत्यम्—"मेखलकात् सन्दिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी कालातिपातो धीमद्भिरपहरणीयः" इत्येतावदर्थजातमवाचयत्। पश्चाच्च समुत्सारितपरिजनेन जिज्ञासिते सन्देशे मेखलकोऽवादीत्—"एवमभिधत्ते मेधाविनं स्वामी—यदेकगोत्रता, समानजातिता, सहसंवर्धनं, एकदेशनिवासो, दर्शनाभ्यासः, परस्परानुरागश्रवणम्, परोक्षोपकारकरणम्, समानशीलत्वं वा स्नेहहेतवो भवन्ति। त्वयि तु विनैव कारणम् अदृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयम्। अन्तरेण भवन्तम् अन्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न विद्यन्त एव ते, येषां सतामपि सतां मित्रोदासीनशत्रवो न विद्यन्ते। बाल-चापल-पराचीन-चित्त-वृत्तितया च भवतः केनचिदसहिष्णुना यत् किञ्चित् असदृशं पैशुन्यमाचरितम्।

बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृत-निश्चयः किं करोतु पृथवीपतिः। परं तत्त्वान्वेषिणा च मया दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। अतस्तदर्थं विज्ञप्तश्चक्रवर्ती—यत् प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधीति। स्वामिना च तदूरीकृतम्। अतो भवता अकृतकालक्षेपं राजकुलमागन्तव्यम्। न च सेवावैषम्यविषादिना परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा वा भवता भवितव्यम्।

यद्यपि—

स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे
कष्टं मनोभव इवेश्वर-दुर्विदग्धः॥

तथाप्यन्ये ते भूपतयः, अयन्तु न्यक्कृत-नृग-नल-निषध-नहुषाम्बरीष-दशरथ-दिलीप-नाभाग-भरत-भगीरथ-ययातिः-अमृतमयः अन्य एव स्वामी। नास्याल्प-पुण्यैरवाप्येत सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया इति। तदनु बाणा-सनोपगतबाण इव बाणः श्रीहर्षमाससाद। अथ राजा तमवलोक्य गिरिगुहागत-सिंह-बृंहितगम्भीरेण स्वरेण नभोभागं पूरयन्निव दौवारिकमपृच्छत्—एष स बाणः? दौवारिकश्च यथाज्ञापयति देवः सोऽयम् इत्युक्त्वा विरराम। राजा च न तावदेन-मकृतप्रसादः पश्यामि इत्युक्त्वा चक्षुषः प्रभां परिवृत्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालव-राज-सूनोरकथयत्—महान् अयं भुजङ्ग इति। बाणस्तु मुहुर्तमिव तूर्णीं स्थित्वा व्यज्ञापयत्—देव! अविज्ञाततत्त्व इव अविदितलोकवृतान्त इव च कस्मा-देवमाज्ञापयसि। लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च स्वैरिणो विचित्राश्च भवन्ति। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हति श्रीमान् माम् अविशिष्टमिव अन्यथा सम्भावयितुम्। वात्स्यायनवंशजातो ब्राह्मणोऽहमस्मि। यथा कालमुपनयना-दयः कृताः संस्काराः। सम्यक् साङ्गान् वेदानधीतवानस्मि। यथाशक्ति शास्त्राणि चाश्रौषम्। दारपरिग्रहात् अभ्यागारिकोऽस्मि। ततः का मे भुजङ्गता?

लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवमशून्यमासीत् । अत्रानपलापोऽस्मि । एतदर्थं विषीदत्येव ममापि हृदयम् । इदानीन्तु मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां देवे शासति सप्ताम्बु-राशि-रशनां महीं क इव अविशंकः सर्व-व्यसन-बन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं कल्पयिष्यति । भूपतिस्तु—"एवमस्माभिः श्रुतम्" इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत् । किन्तु निजानल्पपाण्डित्येन स्वल्पैरेव चाहोभिरयं प्रसाद-जन्मनो मानस्य, प्रेम्णो विश्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत परमप्रीतेन नरेन्द्रेण । तदनु बहुकालं यावत् राजसभां संशोभयन् हर्षमाहर्षयँश्च बाणः बहुकालात् अनन्तरं गृहमागत्य लोकै राजचरिते पृष्टे हर्षचरितं रचयांबभूव । एतावदेव महाकवेर्बाणस्य जीवनवृत्तम् । संक्षेपतो बाणस्य जीवनं साधारणतया निर्धनत्वे जीवनं यापयतां संस्कृतकवीनां जीवनात् अनेकस्मिन्नंशे वैशिष्ट्यं पुष्णाति । यतो ह्ययं समधिक-पैतृक-सम्पत्तिस्वामी सन् हर्षमाश्रित्य तां भूयो वर्धयन् राजेश्वर इव जीवनं यापयामास इति ।

महाकवेर्जन्मस्थानम्

महाकविरयं प्रीतिकूटनामानं नगरं जन्मनालञ्चक्रे इत्यत्र नास्ति कस्या अपि शंकाया अवसरः । यतः हर्षचरिते स्वयमेव वात्स्यायनवंशावतंशो बाणः प्रीतिकूट-नामानं निजावासं वर्णयांबभूव । परमयं प्रीतिकूटनामा ग्रामः क्व विद्यते साम्प्रत-मिति वक्तुमसाम्प्रतम् । यतो हि केचन मनीषिणः वर्तमाने आरामण्डले तत्स्थितिं स्थापयन्ति । समुपस्थापयन्ति च कल्पितानि बलवन्ति प्रमाणानि । केचन पुनराधुनिका विचक्षणाः गवेषणैकताना विद्वांसः वर्तमाने गयामण्डले तदत्र-स्थानमनुमन्यमानाः आत्मनो वच्छगोतियेतिभाषमाणानां यवनानां निवासग्रामावस्थितं पीरू इति नाम्ना प्रसिद्धं स्थानमेव हर्षचरितचित्रितं प्रीतिकूटं कल्पयन्ति । परं हर्षचरितपर्यालोचनया नैव समीचीनतामञ्चत इमे पुरोदिरितस्थाने । तथा हि—तत्र सुस्पष्टमेवोट्टङ्कितमस्ति यत् "ब्रह्मलोकात् दुर्वासश्शापेन हेतुना सप्तसागरराज-

महर्षीं मन्दाकिनीमनुसरन्त्येव सरस्वती मर्त्यलोकमवतरन्ती स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं सर्वसाधारणं: शोणसमाख्यया समुद्घोष्यमाणं हिरण्यवाहनामानं महानदमालोक्य तदीयरमणीयकहृतहृदया" सखि! रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्य उपकण्ठभूमयः, पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुम्मे" इति सावित्रीं व्याहृत्य तया समभिनन्दितवचना सती तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्, बबन्ध च तत्रैव एकस्मिन् शुचौ शिलातलसनाथे लतामण्डपे गृहबुद्धिम्। तत्रैव च पारेशोणमवस्थितं महामुनेः पितुश्च्यवनस्य आश्रममुपगच्छता मुनिसूनुना दधीचेन सा सङ्गमे। सुषुवे च सारस्वताख्यं जन्मनैव मातुर्महिम्ना सकलशास्त्रोपदेष्टारं तनूजनुषम्। तदनु ब्रह्मलोकं गतायां तस्यां दूयमानमानसो दधीचोऽपि भार्गववंशसम्भूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायां सारस्वतजन्मसमकालमेव जनितवत्साख्यसुताम् अक्षमालाम् आत्मसूनोरपि सम्वर्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमशिश्रियत्। अथ सारस्वतो ब्रह्मचारी सन्नप्यात्मना सवयसि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि भ्रातरि वत्से समस्तमेव वाङ्मयं सञ्चार्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीतिकूटनामानं निवासं कृतदारपरिग्रहस्यास्य वत्सस्य प्रीत्या चक्रे इति। एतेन खलु गङ्गोपकण्ठवर्तिनः शोणस्य पश्चिमे प्रीतिकूटेन भवितव्यम्। ततश्च पारेशोणं पूर्वस्यां दिशि गव्यूतिमात्रायां च्यवनाश्रमेणापि भवितव्यम्। पूर्वोक्तञ्च गयायाम् आरायाम्वावस्थितं स्थानद्वयं सर्वथैतत्प्रतिकूलम्। अतोऽन्यत्रैव कुहचन हर्षचरितोपवर्णितलक्षणलक्षितस्थाने प्रीतिकूटनामा ग्रामः कल्पनीयः। तच्च स्थानमधुना क्वेति विवादास्पदमेव। नदीनामस्थिरस्थानतया योगार्थपुरस्कारेण च यदि वर्तमानसोनपुरप्रदेशे तदानीं शोणनदस्य सत्ता स्वीक्रियेत तदा अर्हत्येव सोनपुरमपि प्रीतिकूटो भवितुम्। इति सर्वमेतत् पुरातत्वान्वेषिभिर्विचारणीयम्।

महाकवेर्जन्मसमयः

कविकुम्भिकुम्भभिदुरस्य महाकवेः बाणभट्टस्य समयः संस्कृतकवीनाम्

ऐतिहासिकक्रमव्यवस्थायै सातिशयमेव वर्तते उपयोगी। अयमेक ईदृशः सुनिश्चितः समयः येन पूर्वेषां परेषाञ्च कवीनां सम्यक् निश्चेतुं शक्यते कालः। अयं सम्राजो हर्षवर्धनस्य सभापण्डित आसीत् इत्यत्र नास्ति कस्यापि किमपि वैमत्यम्। सुनिश्चितैतिहासिकप्रामाण्येन षडधिक-षट्-शतमेशवीयाब्दात् सप्तचत्वारिंशदधिकषट्-शत-तमेशवीयाब्दं यावत् ससागरां क्षितिं सम्राट् शशासेति निश्चप्रचम्। चतुर्दशे किल वर्षे परलोकान्तरितेन पित्रा विरहितोऽयं कविः नवयौवनेन प्रभूततरसम्पत्तिस्वामितया च कतिपयैर्विभिन्नकलाकुशलैः सवयोभिः स्वार्थसाधनैकतत्परैः महाधूर्तैः सह सङ्गतिमुपेत्य अनुमानतो दश द्वादश वा वर्षाणि यावत् विभिन्नदेशेषु पर्यटन् विविधानवद्यविद्यानैपुण्यं लभमानश्च सुपरिष्कृतामनुभूतिमनुभूय निजावासमागच्छत्। तदनु बन्धुभिरितरैश्च सम्यक् समाद्रियमाणोऽयं महापण्डितः काञ्चन काञ्चनोपमकमनीयकान्तिं महाकवेर्मयूरस्य कन्यां परिणीय सामोदं दाम्पत्यास्वादानन्दमनुभवितुमारेभे। अस्मिन्नेवावसरे कृष्णवर्धनेन मेखलकद्वारा आकारितः कविकेसरी सम्राजं साक्षात्कृत्य कतिचन वर्षाणि यावत् राजकुले स्थित्वा स्वावासमभ्युपेतः लोकैर्जिज्ञासिते राजचरिते सर्वप्रथमं हर्षचरिताख्यमाख्यायिकाकाव्यमेव निबबन्ध। तदनु कानिचनेदानींतनोपलभ्यमानानि अनुपलभ्यमानानि च काव्यरत्नानि विरच्य परिशेषे कादम्बरीकथां रचयन् तामपूरयित्वैव अल्पतमे एव वयसि भुवं विरहयांबभूव। इत्थञ्च हर्षवर्धनराज्यारोहण समय एवैष जन्मना भुवमनुजग्राहेति निश्चितप्रायम्। यतो हि तदात्वे किलोपनीता ब्राह्मणाः द्वादशान्यूनवर्षाणि यावत् गुरुकुलमधिष्ठायैव समावृत्ताः सन्तो विवाहादिकमाचरन्तिस्म्। एतच्च हर्षचरितोपवर्णितेन—"यथाकालमुपनयनादयः कृतास्संस्काराः, सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः, श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि, दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि" इति पूर्वोक्तकथांशेन धत्त एव प्रामाणिकताम्। एवञ्च पञ्चत्रिंशतिवर्षमारभ्य त्रिंशद्वर्षमितवयोमध्ये—यदा तावन्त्येव वर्षाणि हर्षवर्धनशासनस्यापि व्यतीतान्यासन्-अयं राजानं साक्षादकरोत्। तत्र वर्षद्वयं वर्षत्रयम्वा स्थित्वा निजावासं परावर्तत। तदनु अष्टसु दशसु वा वर्षेषु अनेकानेव ग्रन्थान् लिखित्वा पञ्चाशतः

पूर्वस्मिन्नेव वयसि लोकान्तरञ्चालञ्चक्रे इत्यनुमिनोमि । यतः पञ्चत्रिशतेः त्रिंशतो वा निजशासनवर्षेभ्यः पूर्वं हर्षवर्धनस्य साम्राज्यसम्वर्धनव्यासक्ततया पण्डित-पाण्डित्य-व्यासङ्गिता न सम्भवत्येव ।

एतस्य समसामयिकाः कवयः पण्डिताश्च

बाणस्य समये विदुषां कवीनाञ्च आसीत् सुन्दर एकः समाजः । सूर्यशतक-समुद्भावयिता मयूरः, भक्तामरस्तोत्ररचयिता जैनाचार्यो मानतुङ्गश्च श्रीहर्षसभ्यावास्ताम् । गुर्जरराजधान्यां वलभ्यां श्रीधरसेनराज्यावसरे भट्टिकाव्यप्रणेतुः भट्टिस्वामिनः, न्यायवार्तिकप्रवर्तकस्य उद्योतकरस्य च जन्मास्मिन्नेव शतके समजायत । अस्मात् कियत्येवोत्तरकाले दण्डिना दशकुमारचरितकाव्यादर्शौ व्यरचिषाताम् । अतः संस्कृतसाहित्ये बाणसमयः सर्वथैव महिममण्डितः समादरणीयश्चालोक्यते ।

एतस्य ग्रन्थाः

सूक्तिसंग्रहेषु अलङ्कारग्रन्थेषु च बाणनाम्ना परिचायितैः कतिभिश्चन पद्यैरनुमन्यते यदेतल्लेखनी अनेकानेव ग्रन्थान् समजग्रन्थत् । परमेषु कतिपये एव साहित्यपरीक्षकाणां दृष्टीरास्कन्दन् । क्षेमेन्द्ररचितौचित्यविचारचर्चायां बाणनाम्ना समुधृतेन—

"हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि, प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि, निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥"

इति कादम्बरीविरहाभिव्यञ्जकेन पद्येन पद्येनाप्यनेन कादम्बरी समुदलेखीति स्फुटमनुमीयते । साम्प्रतममुष्य चण्डीशतक, हर्षचरित, कादम्बरी, पार्वतीपरिणय,

समाख्या एव समुपलभ्यन्ते ग्रन्थाः[१]। नलचम्पूव्याख्यायां जैनविद्वद्भ्यां चन्द्रपाल-गुणविजयगणिभ्यां सुन्दरोपमाशृङ्खलासमन्वितम् —

आशाः प्रोज्झितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव ।
बिभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
याताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्दैवस्य शून्याः सभाः ॥

इति बाणकृतमुकुटताडितक-नाम-नाटक-पद्यं समुद्धरद्भ्यां क्वाप्यन्यत्रेदानीं यावदनुपलभ्यमानतन्नाटकसत्तापि संसूच्यत एव। अयं खलु वाग्देवताया आसीत् वरदः पुत्रः। मन्यते चेदमीयं कादम्बरीसमाख्यं गद्यकाव्यं स्वस्मिन् विषये असमानम्। अपतच्च प्राचीनेपि काले अस्य मधुरासु कवितासु समालोचकानां चक्षुः।

"जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥" इति

समुल्लिखन् गोवर्धनाचार्यो यत्रेमम् अपरां वाग्देवीं मन्यते तत्रैव—

"आः सर्वत्र गभीरधीरकवितविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।"

इति समुत्प्रेक्षमाणः कश्चिदालोचको विपश्चित् विन्ध्यवनविहरणपरायण-कविकुञ्जरकपोलोद्भेददक्षं केसरिणमेनमङ्गीकुरुते। किं बहुना,

"रुचिरस्वर-वर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥"

इति सम्भाषमाणो महामना धर्मदासः यथा बाणभारतीं प्राशंसत् तथैव वस्तुतो बाण-वाणीति न विद्यत एवात्र कस्यापि वैमत्यम्। यथैवायं विकटविन्ध्याटवीवर्णने

विकटपदानि यथेच्छं व्यवजह्रे तथैव महाश्वेताविरहवर्णनेऽपि विप्रलम्भानुरूपानेव सुकुमारवर्णान् विन्यासयाम्बभूव। धाराप्रवाहरूपेण प्रवहमाणायाम् एतदीय-भाषायां क्वापि वैषम्यं नालक्ष्यते, समालक्ष्यते च संस्कृतभाषायामिदमीयं समधिक-माधिपत्यम्। अलङ्कारकामनीयकमपि कादम्बर्यां प्रचुरतया दृश्यते। समुपलभ्यते च समुत्तमा उपमा। चमत्कुर्वन्ति च यथैव समधिकसंख्यायां समुपलभ्य-माना श्लेषाः परिसंख्याश्च तथैवाहरति सहृदयमनांस्यर्थानां कमनीयत्वम्। अस्य खलु कवेः कविता निधिरेव मौलिकार्थानाम्। नच तेषु कुत्रापि पिष्टपेषणं; नूतनताविरहो वा। प्राकृतिकदृश्यानामङ्कने सक्षणमेतदीयं नैपुण्यम्। प्रतिपदं नूतनरङ्गान् पूरयन्नयं प्रतिचित्रमेवातीव विचित्रमारचयति। अच्छोदसरोरमणीय-रूपवर्णनप्रकारः कस्य नातनुते मोहम्। किंवा न स्पृशति महाश्वेतामनोहर-मूर्तेः जीवजाग्रच्च शब्दचित्रं सहृदयहृदयम्। किमधिकेन, सर्वत्रैवात्र तथा प्रकाशते रसविकासः यथैतत्कविता रसभाववती तरुणीव रसभाववती सती बलादिव रस-भावविदां रसिकानाम् आकुञ्चयत्येव चेतांसि। एतस्य किल कवितायामियती शब्दसम्पत्तिः यदस्याः पुरतोऽन्यकवीनां पदरचना केवलं चपलताया एव सूचना-न्दत्ते। उक्तञ्च—

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।" इति

वस्तुतोऽयं कविचक्रचूडामणिः कविताचक्रचक्रवर्ती सम्राडेव। यद्यपीतः पूर्वमेव सुबन्धुना समुद्भाविता वासवदत्ता। परमत्र प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धमन्तरा किमन्यद् वर्तते चमत्कृतिसाधनम्? किमत्र सुभगरसमयकविताकमनीयतायाः भवत्यं-शतोऽपि साक्षात्कारः? नूनमत्र कविः प्रत्येकस्मिन्नक्षरे श्लेषविश्लेषणायैव प्रायत्तत, न तु नित्यनूतनार्थकल्पनायै। बाणतोऽर्वाचीनस्य दण्डिनः कवितायामपि क्व विद्यते कादम्बर्यामिव मादकत्वम्? पश्यन्तु तावद्विपश्चितो महाकवेः कमनीय-

कवितारमणीयत्वम् । "यत्र हि क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इति माघप्रोक्तं प्रतिपदमेव सङ्गच्छते रमणीयतालक्षणम् । तथा हि—

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलाः तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव ।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥

अत्र शृङ्खलया खलानां, मणिनूपुरेण सज्जनानाञ्च दत्तोपमा किमिव चमत्कारिणीति सहृदयहृदयसंवेद्यम् । महाश्वेतायै प्रेमोन्मत्तं परममित्रं पुण्डरीकं मित्रसम्मिततयोपदिशतः सख्युः कपिञ्जलस्य—"का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेषु एवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः । स खलु धर्मबुद्ध्या विषलतावनं सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, महारत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुषलमुन्मूलयति" इति । अस्यामुक्तौ बहिश्चरेण मनोहारिणा रूपेण प्रतारिता मानवाः यथात्मन एव सम्पादयन्त्यनिष्टम्, तथैव पर्यन्तविरसेषु अनिष्टानुबन्धिषु विषयोपभोगेषु सुखबुद्धिमारोपयतां दुरवस्था समापततीति कियता कौशलेन प्रतिपादितं कविनेति सुधीभिर्विभावनीयम् । अपरमप्यवलोकयन्तु सन्तः यत् जाबाल्याश्रमं वर्णयन् बाणभट्टः—"यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्वम्, एणकानां गीतव्यसनं, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः" इत्यत्र कीदृशीं श्लेषानुप्राणितामार्थीं परिसङ्ख्यां निवेशयामास । किमधिकेन— सुभाषितावल्यां समुद्धृते—

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैक-वैज्ञानिकाः
सन्त्येते धनिनः कलासु सकलाखाचार्य-चर्याचणाः ।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनात् बिभ्यत्यहो श्लाघया
धूते मूर्धनि कुण्डले कषणतः क्षीणे भवेतामिति ॥

अस्मिन् पद्ये कृपणवर्णने कियद्कार्पण्यं कृतवान् कविरिति सर्वथावलोकनीयम् । कवये किमपि दानन्त्वास्तान्दूरे, अत्रतु कुण्डलघर्षणभिया काव्यप्रशंसायां मस्तकान्दोलनेऽपि कार्पण्यमिति महतीयं विलक्षणोक्तिः । एतदीयं विलक्षणकाव्यकलापाटवमवलोक्यैव प्रसन्न-राघव-कारेण—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ॥

इति पद्येन कविताकामिनीकामदेवोपाधिनायमलङ्चक्रे । किं बहुना साहित्यसंसाराय कादम्बरीसदृशं काव्यरत्नमुपायनीकर्तुकामस्य महनीयचरितस्यास्य कवेः आकस्मिकावसाने सर्वथैव सुष्ठूक्तं शोककवलितान्तःकरणेन केनचित् कविना—

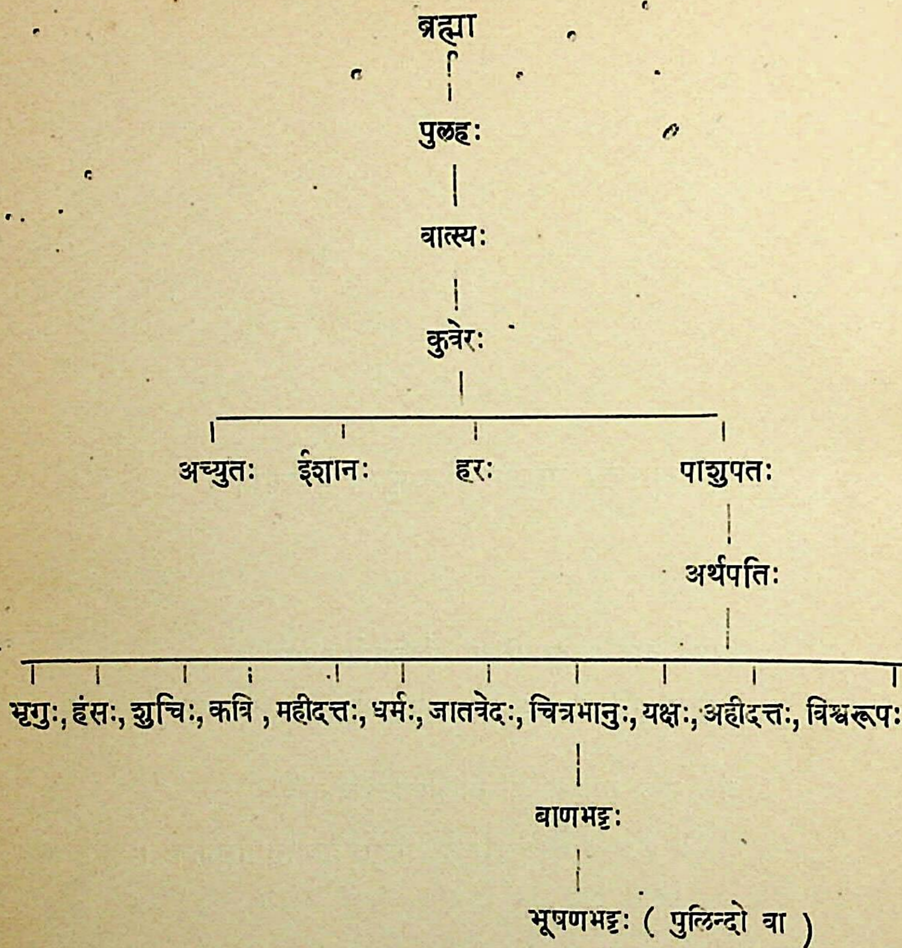
ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणिमहारत्नराशिर्विशीर्णः
शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमाणिक्यकोषः ।
दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा हता दिव्य-वाणी
बाणे गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विधिना प्रापिते दीर्घनिद्राम् ॥

इति शम् ।

श्रीमतो महाकवेर्बाणभट्टस्य परिचयः

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

एतदुत्तरं गद्यकवीनामेव किं, महाकवीनां चूडामणिर्बाणभट्टः प्रादुर्बभूव । महाकविर्बाणः महाधिराजश्रीहर्षवर्धनस्य समकालिकः । श्रीमान् बाणो नाम कविः हर्षचरितग्रन्थे प्रथमे द्वितीये परिच्छेदे च स्ववंशस्य जीवनचरितस्य वर्णनं कृतवान् । अयं बाणस्य वंशवृक्षः यत् वात्स्यायनगोत्रजातः वैदिकक्रियाकुशलो वैदिकप्रवरः ब्रह्माख्यः पण्डितः सर्वतः पूर्वमध्यवात्सीत् । तस्य पुत्रः पुलहः, पुलहाद् वात्स्यः । स्नयं वात्स्यस्तु पुलहादिति ब्रह्मवैवर्तपुराणेऽपि प्रोक्तम् । वात्स्यात् कुबेरश्चाजायत । तस्य चत्वारः पुत्राः बभूवुः । तेषु पाशुपतः कनिष्ठ आसीत् । तत्तनयश्चा र्थपतिरासीत् । अर्थपतेश्चैकादश पुत्रा अभूवन् । तेषामष्टमाच्चित्रभानोः राजदेव्यभिधानायां भार्यायामस्माकं चरितनायकस्य महाकवेः श्रीमतो बाणस्य जन्माभवत् । बाणस्यायं वंशवृक्षः —



श्रीमतो बाणभट्टस्य प्रथमं नाम दक्षभट्ट इत्यासीत्। आत्मकथेति पुस्तके डा०हजारी-प्रसादद्विवेदिजीवेन लिखितं यत् स्वतन्त्रचरित्रैः मित्रैः सह भूयांसं कालं स्वतन्त्रतया लोकानां वचनीयतामिवावहन् पर्यन्ततो यथेच्छं बभ्राम। अतः समाजे बंड इति कथ्यतेस्म। तदुपरान्तम् बाण इति कथितः। बाणस्य जननी शैशव एव परलोकमगात्। चित्रभानुरेव तनयं बाणं मातृत्वपरमप्रेम्णा परिपोषयन्नुपाध्याय-वदावश्यकं पाठ्यजातं शिक्षयन् पौगण्डं प्रापयामास। यथाविधिसंस्कारान्तरम्, बाणस्य चतुर्दशे वर्षे चित्रभानुः स्वर्गाधिरोहणञ्चकार। तस्य पैतृकी सम्पत्तिः बह्वया-सीत्। तस्याभिभावकश्च योग्यः पुरुषः नासीत्। यतः उच्छृंखलजनसम्बन्धेन

स्वेच्छाचारित्वमस्य जातम् । श्रीमता एस० एन० दासगुप्तेनापि "ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचरे"ति पुस्तके एवंक्रमणैव द्योतितम् ।

बाणभट्टस्य सहचराः

एतस्य मित्रेषु सर्वविधा एव कलाज्ञातारोऽभूवन् । आक्षिक-नर्तक-संवाहक-ताम्बूलिकानारभ्य महाकविप्रभृतयः सर्वं एवाभूवन् । ज्ञानानुभवाय सोऽयं प्रघट्टक उल्लिख्यतेऽधस्तात् यथा इन्ट्रोडक्शनेतिग्रन्थे श्रीमता पीटरसन् महोदयेन—

"अभवँश्चास्य वयसा समानाः सुहृदः सहायाश्च । तद्यथा—भ्रातरौ पारशवौ, चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारवाणवासबाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः, प्राकृतकृत्कुलपुत्रो वायुविकारः, वन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ, कात्यायनिका चक्रपालिका, जाङ्गुलिको मयूरकः, ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः कलादश्चामीकरः, हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत् कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायिनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका केरलिका, लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिको भीरुकः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्तकी हरिणिका, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद् विहङ्गमः, दार्दुरिको दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूड इति मित्राण्यासन् । पूर्णिकेति तस्य प्रेमिका लिखिता डा० हजारीप्रसादद्विवेदिजीवेन ।

यौवनस्य प्रथमे वयसि पूर्णिका प्रियासीत् ततः भट्टिनीति या खलु बाणस्य प्रियतमासीत् । सा तु सर्वदा महावराहं पूजयतिस्म । बहुबारं बाणः विपत्तेः मुक्तः भट्टिन्याः प्रासादात् । तैः साकं स्वदेशान्निर्गतोऽयं नानाविधदेशान् पर्यटन्, बहूनां नरपालानां सभामुपतिष्ठमानः, नानाविधैः पण्डितैश्च सह सख्यं संवादञ्च साधयन्नयं बहुतरमेवानुभवं ज्ञानञ्चोपार्जयामास ।

मध्ययौवने देशाटनजन्यं बहुतरं लाभमुपार्ज्य सोऽयं स्वदेशं प्रत्याववृते। पितृ-परम्परागतः बाणस्याश्रयदाता थानेश्वराधिपतिः हर्षवर्धनः बाणस्यागमनं परिज्ञाय दूतमुखेन तमाजुहाव। लोकानां मुखात् बाणस्य स्वातन्त्र्यादिविगुणचरितानि प्रागेव श्रुतवान् कान्यकुब्जाधिपतिः महाभुजङ्गः खल्वागतः वंडो वा किलागतः इति समीपस्थं सदस्यं प्रति व्याजहार। अतीव मार्मिको बाणो निभृतजल्पितमपि तदाकर्ण्य ज्ञानगौरवात् स्वापमानमाकलयन् मनसि परमं चुकोप।

पूर्वभागमेव समाप्य कादम्बर्याः लोकान्तरमुपगते महाकवौ बाणे, एवंविधमधुर-कथाया अकाण्डे विच्छेदे महते रसविघातायेति भावयन् बाणस्य पुत्रः तदुत्तरभागं विनिर्माय कथां पूरयामास। एतस्य नाम केषाञ्चिन्मतेन "भूषणभट्ट" इति, चापरैः पुलिन्द इत्यमन्यैः पुलिन इति वा कथ्यते। केषाञ्चन मतेन निचुल इत्यपि नाम-धेयम्। धनपालस्य तिलकमञ्जर्याम् पुलिन्दो यथा—

"केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान्कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानः पुलिन्दकृतसंनिधिः॥"

श्रीमतो बाणस्य ग्रामः

पूर्वम् एव मया सूचितम् यत् बाणस्य ग्रामः शोणनदस्य पश्चिमतटे प्रीतिकूटनामासीत्, अधुना तु स ग्रामः 'पीरो' इति कथ्यते। बाणभट्टस्य कुत्र गृहमासीत् इति विषये मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्नास्ति। कस्यचिन्मते प्रीतिकूटग्रामः साम्प्रतिकयुगे पीऊर इति चापरेषाम्मते पेऊर इति कथ्यते। श्रीमतः महेश्वरदत्त-शर्मणः मते बाणभट्टस्य निवासस्थानम् पेरू एवासीत्। तस्यैको[लेख] भागः पटनास्थे सिन्हापुस्तकालये सुरक्षितोऽपि वर्त्तते। तत्र तेन इदमपि लिखितं यत् एकदा बाणः मल्छउर ग्रामं जगाम तथा तं वर्णयामास।

किन्तु मन्मते तु बाणभट्टः पीरोग्रामनिवासी ववृते। प्राचीनकाले स हि ग्रामः प्रीतिकूट इति कथ्यतेस्म। स्थानमिदं विहारप्रान्ते शाहाबादमण्डलान्तर्गत शोणनदस्य पश्चिमतटे एवासीत्। पीऊरम् (पेरू) वा तु तस्य नदस्य

पूर्वस्यां दिशि वर्तते । परन्तु बाणभट्टः स्वयमेव निजनिर्मिते हर्षचरिते लिखितवान्नस्ति यत् "तस्य (शोणस्य) पश्चिमतीरे समवातरत् ।" पीरो (प्रीतिकूटः) अद्यापि तस्य शोणनदस्य पश्चिमे तटे विराजते । तत्र केवला बालुकाराशिरेव दृष्टिगोचरा भवति । "तस्य शोणस्य" स्फाटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्; यं जनाः शोण इति कथयन्ति । दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतहृदया तस्यैव तीरे वासमरचयत् । उवाच च सावित्रम्—सखि; मधुरमयूरविरुतयः कुसुमपांशुपटलसिकतिलतरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारमणीया रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकंठभूमयः । पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुं मे इति । अभिनन्दितवचना च तवेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत् ।

नद्यस्तु स्वकीया धाराः परिवर्तयन्त्यः सन्ति । यथा गंगा नदी आरानगरं निकषा पुरा प्रवहतिस्म । किन्तु अद्य—निजधारां परिवर्तयन्ती आरातः किंचिदुत्तराभिमुखास्ति । साम्प्रतिककालेऽपि मन्दाकिन्याः जीर्णधारा वर्तमानास्ति । तथैव शोणनदेन स्वकीया धारा परिवर्त्तिता । अद्य पीरोग्रामतः त्रिगव्यूतिमात्रात् दूरे प्रवहति । पुनरपि अत्रत्या बालुकाराशिः मृदः निर्माणञ्च तस्य शोणस्य वायुमृद्भ्यां सादृश्यं वहतः । न केवलं सादृश्यमेव प्रवहतः अपि तु वत्सगोत्रीयाः ब्रह्मभट्टा अपि पीरो, वचरीप्रभृतिग्रामेषु भूयिष्ठाः सन्ति । पीरोत एव केचित् ब्रह्मभट्टाः हजारीबागं गत्वा अध्युषिताः ते स्वान् बाणभट्टवंशजान् कथयन्तिस्म ।

पुरा पीरोतः (प्रीतिकूटाद्वा) बिहिया पर्यन्ता भूमिः वनाच्छादितासीत् यस्यां वनेऽनेके जाङ्गलाः पशवः निवसन्तिस्म । तत्र च जनाः मृगयार्थं गच्छन्तिस्म । आधुनिककाले तत्र वनं नास्ति । परन्तु अद्यापि पीरो ग्रामस्य पश्चात् भूमिः

जङ्गलमहालनाम्ना प्रसिद्धास्ति । अनेन अनुमीयते यत् पुरा इयं भूमिः वनसंकुलासीत् ।

महाकविना बाणभट्टेन स्वकीया जन्मभूमिः प्रीतिकूटनाम्ना निर्दिष्टा या च वनाच्छन्ने स्थाने आसीत् "पिनद्धकृष्णागुरुपंककल्कच्छुरणकृष्णशबालकषायकंचुकेन, उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रन्थितासिधेनुना, अनवरतव्यायामकृतकर्कशशरीरेण इत्यादयः । तथा चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम् ।" अद्यापि अत्रत्या व्यायामशीलास्तथा लगुडभल्लाप्रभृतिशस्त्राणि निजपार्श्वे सर्वे जनाः रक्षन्ति यस्य वर्णने बाणेन स्वयमेव कृतमुपर्युक्तासूक्तिषु ।

पीरोतः नातिदूरे त्रिचतुःक्रोशार्धे "वरांव" नामा ग्रामोऽस्ति यत्र महर्षेः आश्रम आसीत् इति अनुमीयते तत्रत्यम् भग्नावशेषं विलोक्य । तत्र अद्यापि शिवलिङ्गादयः सन्ति । हर्षचरिते लिखितमस्ति बाणभट्टेन यत् "पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठितसैकतशिवलिङ्गानि च भक्त्या परमया पञ्चब्रह्मपुरःसरां सम्यक्मुद्राबन्धविहितपरिकरां··· ···· ····ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामादात ।" ततोऽग्रे लिखितवान् "यस्मिन्नेवावासरे सरस्वत्यसूततनयंस्तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती । तौ तु सा निर्विशेष सामान्यस्तन्यादिना शनैः शनैः शिशु समवर्धयत् । एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत् । अपरेऽपि वत्सनामासीत् । आसीच्च तयोः सौदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः । चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासमिति ।"

अतः प्रीतिकूटमिति पीरो एव निर्विवादम् । योऽद्य आरा-सासाराम लाइटरेलवेन एकं धूमशकटस्थानं वर्तते ।

एतदतिरिक्तं कविना वर्णितम् यदा सः श्रीहर्षवर्धनस्य राजसभायां प्रस्थानाय विचारयन्नासीत् तदा सः स्वमित्र समीपे मल्लकूटग्रामे गतवान्नासीत् परामर्शाय प्रथमचलितदक्षिणचरणः. प्रीतिकूटान्निरगात । प्रथमेऽहनि तु धर्मकालकष्टं

निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजनन्लमरिक्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं शुष्कमपि पल्लवितामिव तृषितश्वापदकुलम्बितलोलजिह्वालतासहस्रैः पुलकितमिवाच्छभल्लगोलांगूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासंघातैः रोमाञ्चितमिव एधस्थलीरुढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः शनैश्चण्डिकायतनकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्राममगात्।" तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना संपादितसपर्यः सुखमत्रसत्। अथापरेद्युः भगवतीं भागीरथीमुतीर्य यष्टिग्रहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्।

अद्य मल्लकूटनामकः ग्रामः मलऊर नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति यतः प्राक् गंगासमीपे आसीत्। यस्याः गंगायाः पारंकर्तुं सः लिखितवान्। मार्गे कात्यायन्याः मूर्त्तयस्तु अद्यापि दृष्टिपथे आयाति मलयकूटात् (मलउरात्) वा उत्तरस्यां दिशि "महथीन दाई" नामकस्थाने अद्यापि कात्यायन्याः मूर्त्तयः सन्ति। यत्र ताः पूजयितुं जनाः गच्छन्ति।

प्रीतिकूटतः पीरोतः वा दक्षिणपूर्वयोः दिशि एव, देवपड़सर तथा देवचन्दा नाम्नी स्थाने वर्त्तते। देवचन्दा एव देवच्यवनस्याश्रम आसीत्। अद्य सः देवचन्देति नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति। यतः देवचन्दायामतिप्राचीनमृन्निर्मिताश्रमोऽस्ति अधुनापि। तस्य भित्तिः अद्य जीर्णा-शीर्णा चास्ति। किन्तु तस्मिन्नाश्रमे बौद्धकालीनाः अनेकाः मूर्त्तयः शिवलिंगश्च वर्तमानाः सन्ति। अत्रेयं किंवदन्ती श्रूयते यत् अस्य मन्दिरस्य निर्माणं स्वयमेव विश्वकर्मणा कृतम्। एतस्य चर्चा हर्षचरितेऽपि वर्तते--"इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण ततार शोणम् अगाच्च दधीचमानेतुं च्यवनाश्रमपदम्।" अथ वा अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्। इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः।"

मयूरबाणयोः अन्योन्यः सम्बन्ध आसीत्। इति किंवदन्ती प्रसिद्धाः।

मयूरस्य सूर्यमन्दिरं देवचन्दातः पीरोतः वा दक्षिणे गयामण्डलान्तर्गतपावरगंजे वर्तते। यत्र भूयिष्ठाः जनाः कार्तिकचैत्रमासयोः षष्ठ्यां रविव्रतं कर्तुं गच्छन्ति। तत्राद्यापि मरचारनामिकाः ब्राह्मणानां भूयिष्ठाः वसतयः सन्ति। ते सर्वे स्वयं मयूरवंशीया इति कथयन्ति।

अन्ते बाणभट्टः बौद्धधर्मात् प्रभावितो जातः। कादम्बरी तस्य बौद्धदर्शनेनोतप्रोतास्ति। एतस्येदं कारणं वर्तते यत् प्रीतिकूटतः पीरोतः वा समीपे एव बौद्धानां मठ आसीत् यत्र बौद्धभिक्षुकाः निवसन्तिस्म अद्यापि पुरातत्त्वानां खननकार्ये अगिआँवबाजारग्रामे बौद्धकालीनाः अनेकाः मूर्त्तयः निःसृताः याः जनाः तद्दिनी कात्यायनीत्यादि नाम कथयित्वा अर्चयन्ति।

यस्मिन् जाबाल्याश्रमे वराहमन्दिरस्य अच्छोदसरोवरस्य पार्श्वे शिवलिंगमहाकालीत्यादि नामवर्णनमस्ति अद्यापि तच्च चरभूजीवराँवग्रामे अस्ति। यच्च पीरो समीपे एव वंतते। यथा बराहतडागस्योरि भगवतः वराहस्य, सूर्यसरोवरस्योपरि सूर्यस्य, कच्छपतडागे कूर्मस्य, भवानीसरसि महाकाल्याः मन्दिराणि सन्ति।

यथा वराहतडागस्योपरि भगवतः वराहस्य, सूर्यसरोवरस्योपरि सूर्यस्य, कच्छपतडागे कूर्मस्य भवानीसरसि महाकाल्याः मन्दिराणि सन्ति। कादम्बर्यां तथा पार्वतीपरिणय एतेषां चर्चा कृतास्ति तेन।

अथ वा नामान्तराणामपि अन्यत् कारणमस्ति। यथा लक्ष्मणपुरम् लखनऊ, कातरम् हसनबाजारम्, कोइलवरमिति सम्प्रति अब्दुलबारी पुलमित्यभिधेयम् तथैव रीत्या एकदा कुँअरशाह महोदयोऽत्रागतः। पेरू खाँभिधानाय शारुकाय एतस्य क्षेत्रस्योत्तराधिकारं समर्प्यान्यत्र जगाम। तेनैव प्रीतिकूटमपाकृत्य पीरो कृत इति।

कविकल्पनापि सत्योपरि आधारिता। परोक्षाणि वस्तून्यपि कल्पयन्ति

कवयः । यथा श्रीजयशंकरप्रसादेन कामायन्यां प्रलयविषयः वर्णितः गंगायाः जलप्लावनं विलोक्य तद्वदनुमीयते बाणस्य जाङ्गलिकविषयाणां वर्णनेऽपि । अधुनापि पिरोतः विहिया प्रर्यतं जोगलिकं स्थानं कथ्यते । एतद्देशप्रसूतत्वात् जांगलिकविषयवर्णने विशेषज्ञतास्य कवेरासीत् । अत एव मया अनुमीयतेऽयं कविः जावाल्याश्रमादीनां वृतान्तेषु स्वयं जाङ्गलिकविषयविशेषज्ञतां रक्षतीति ।

कविरयं वात्स्यायनवंशीय एवासीत् । वात्स्यायनस्य षष्टसंतत्यामस्य जन्मोपलभ्यते । देवचन्दाग्रामे प्राचीनकालीनानि मन्दिराणि सन्ति । येषु मन्दिरेषु बाणभट्टस्य वर्णनेन तुलना जीवितस्योत्तरवयसि कविः कवलीयोऽभूत् । कवलीयस्तु सौगतमतमेव । अधुनापि अगियाँवबाजारमित्यस्मिन् स्थाने प्राचीनविहारस्य मूर्त्तय उत्पाटिताः पुरातत्त्ववेदिभिः । अतः एतदपि प्रतीतिकारणं यत् बाणस्य ग्रामः पीरो एवासीत् ।

केषचिन्मते मयूरकवेः बाणः भगिनीपतिरासीत् अन्ये तु मयूरः बाणस्य श्वशुर आसीत् इति वदन्ति । परं बाणमयूरौ समसामयिकौ कवी इत्यत्र नास्ति सन्देहः । मयूरः खलु सूर्यशतकस्य प्रणेता यो हि शतकेऽनेन सूर्यं स्तुत्वा कुष्टरोगान्मुक्तः बभूवेति प्रसिद्धम् । केचिदिमामपि किंवदन्तीमाहुः यत् मयूरवत् बाणोऽपि विकलाङ्गः बभूव । ततश्च चण्डीशतके भगवतीं स्तुत्वा रोगान्मुक्तिमवाप । तदिदं शतकं काव्यमालागुच्छकेषु मुद्रितम् । एम्० एम्० दास गुप्तामहोदयेन लिखितम् यत्-हर्षचरितम्, कादम्बरीपूर्वार्द्धम्, चण्डीशतस्तोत्रशतकम्, पार्वतीपरिणयं नाटकमिति बाणस्य कृतिरिति ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर इति ग्रन्थे । मुकुटताडितकम् बाणस्य कृतिरिति केचित् । किन्तु नात्र प्रमाणमुपलब्धम् । बहवस्तु हर्षचरितं कादम्बरी चेत्येव बाणस्य कृतिरित्यसाधयन् । किन्तु स्थाने स्थाने शब्दवैविष्टयम् शब्दगुम्फनम् शैली प्रौढत्वम्, दीर्घसमासाढ्यं विलोक्य बाणस्य कादम्बरीपूर्वार्द्धम, हर्षचरितम्,

पार्वतीपरिणयनाटकम् चण्डीशतकमिति कृतिरनुमीयते। एषु पुस्तकेषु भाषा-भावानां समता दृश्यते।

लोकचरित्रावेक्षणम् :—मया पूर्वमेव लिखितमस्ति यत् मध्ययौवने देशाटनजन्यं बहुतरं लाभमुपार्ज्य सोऽयं स्वदेशं प्रत्याववृते। एतस्य मित्रेषु सर्वविधा एव कलाज्ञातारोऽभूवन्। आक्षिकसंवाहक-ताम्बूलकानारभ्य महाकविप्रभृतयः सर्व एवाभूवन्। अतः कविः किल गुणदोषादीनां सर्वेषामेव मार्मिको भवतीति प्रसिद्ध्यनुसारं सर्वमेव लोकचरित्रमयमेतेषां संगत्या संजग्राह। एतस्य प्रतीकमस्य काव्येषु स्पष्टमुपलभ्यते। गृहस्थस्य कार्याणि। जन्मारभ्य पालनपर्यन्तानि यथा-प्रसूतायाः किं किं संविधानमिति मन्ये अति प्रगाल्भाः कुलवृद्धाः स्त्रियोऽपि न जानीयुर्यानि किल बाणेन चन्द्रापीडप्रसवे वर्णितानि। देवताभ्यर्चनादिकाः क्रियन्ते तेषां सर्वाङ्गपूर्णः कोष इव दर्शितः यथा चन्द्रापीडकथायाम्। रुग्णस्य कथं परिचर्या, के तेषामुपायसंरम्भा इति प्रसिद्धिप्राप्तये, निध्यादीनामुपलम्भाय च कीदृशीमुत्कटां लालसां वहति कश्च तेषामुपायसंरम्भं इति सर्वाण्यपि साकल्येनोपनिबद्धानि, यथा जरद्द्रविडधार्मिकस्य चरिते। एतदेव सर्वविधं लोकनैपुण्यमवेक्ष्य बाणस्याग्रे कस्यापि कवेः प्रतिभा नाधिका प्रतिभासते, न च कादम्बर्याः संमुखे किंचिदपि कथाकाव्यमुत्कर्षं लभते, लेभे च। अनेनैव कारणेन कादम्बरीरसज्ञेभ्य आहारोऽपि न रोचते इति प्रासिध्यत्।

बाणकाले सामाजिकी परिस्थिति :—

तस्मिन् समये वेषविन्यासो विचित्र एव प्राप्यते। चन्द्रापीडस्य यौवनोद्गमे पश्याम यत् तत्काले वास्तुविद्या, इन्द्रजालम्, काव्यकला, द्यूतकला, संवाहनकला, गान्धर्वविद्यादयः समाजे प्रचारिता आसन्। महोपाध्यायभानुचन्द्रमहोदयनुसारेण राज्ञः शूद्रकस्य वर्णनेन ज्ञायते यत् राजापि केवलं विसंस्थुलप्रायं श्वेतवस्त्रं शिरसि वेष्टयति। अङ्गे च केवलमुतरीयं स्कन्धयोर्वहति। यतो

हि अङ्गरागः शरीरे विलिप्यमानः स्फुटमवभासते। सर्वेषामेव पात्राणां वर्णने अङ्गरागस्य सुमहद् बाहुल्यम्, वस्त्रस्य च वैरल्यम् यथा कादम्बरीप्रेरित-केयूरकनामा वीणावाहकः केवलमधोवस्त्रमेव धारयति नोत्तरीयमपि—"अधर वास एव केवलं वसानेन" कादम्बर्याम्। सर्वे जना धार्मिका आसन्। चौर्यवृत्तिः नासीत्। राजा स्वपुत्रवत् पालयतिस्म स्वजनान्। वेषविन्यासादिषु वैचित्र्यमपि बहु, सामाजिकप्रथा वर्तमान काल इव तदाप्यासन्। होलिकायां नानोपद्रवाः, विरूपरूपक निःसारणादिप्रथा यथा साम्प्रतमस्ति तथा वाणकालेऽप्यासीत्। द्रविणधार्मिकपरिचये यथा-"सर्वदा वसन्तक्रीडिना जनेनोत्क्षिप्तखण्डखद्वारोपितवृद्धदासीविवाहप्राप्तविडम्बनेन, अनेकायतनप्रतिशयित-निष्कलोत्थानेन कादम्बर्याः पृष्ठे (४६३)

तस्मिन् कालेऽन्ध्रद्रविड़सिंहलादिदेशीयाः (आदिमनिवासिनः) मध्य-देशीयैः राजभिः विजित्य स्वाधीना क्रियन्तेस्म। अतिकृष्णसुदृढगात्रा वीरप्राया-स्ते राज्ञां सेवाकार्येषु बहुलतया वर्णिता उज्जयिनीराजभवनवर्णने पृष्ठे। (१९४) धवलचन्दनस्थासकखचितभुजोरुदण्डेन बद्धासिधेनुकेनान्ध्रद्रविड़सिंहालप्रायेण सेवक-जनेन स्थानमण्डपगतेन च इत्यादि।

सौन्दर्यवर्णनादिषु उक्तयः प्रायः पूर्ववत एव प्रचलिताः कपीनां स्वभावानुसारेणैव। "मुखं दृष्ट्वा चन्द्रोऽयमिति बुद्धया पूर्णिमाव्रतकारिणस्तदग्रत एव कुसुमार्घ्यं व्यतरन्" एतादृशीगाथा गाथासप्तशती इति पुस्तके यथा हसितःप्रशंतसा सखि .चिरमावसथिकजनपत्या विधुरिति तव किल वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिलक्षः॥" अथ वा तस्याः मुखकान्त्या तत्प्रतिवेशे सर्वास्तिथयः पूर्णिमा एव भवन्ति। साहित्यवैभवेऽपि-यत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहु वास। नित प्रति पूनोहि रहत आनन ओप उजास॥" वृक्षाणामालवलाः चन्द्रकान्तमणिभिः निर्मिताः। अतः चन्द्ररश्मिस्पर्शात् प्रस्रवज्जलपूर्णेषु तेषु स्वतः सिच्यन्ते पादपाः इदम् तु नैषधीय-चरिते प्रसिद्धमेव। कादम्बर्याः शीतोपचाराय मौक्तिकानि संचूर्ण्य प्रतिक्षणं जलं विकिरतां वृक्षाणामालवाला विरचिताः। हरिचन्दनद्रवस्य दीर्घिकाः पूरिताः

एवमादयस्तत्सामयिक्यो भूयस्यो घटनाः सूच्यन्तेऽस्मिन् ग्रन्थे यासां गवेषणेन बहुतरमैतिहसिकं सामाजिकञ्च तथ्यमवगतम् भवति ।

महाकविर्बाणो महाराजाधिराजश्रीहर्षवर्धनस्य समकालिकः । यतोऽयं हर्षचरितनाम्ना श्रीहर्षस्य चरितं वर्णयामास । किन्तु इतिहासवेत्तारः एकमता न सन्ति बाणविषय इति । ते कथयन्ति श्रीहर्षनामानः चत्वार नृपाः प्रसिद्धाः सन्ति यथा—

क—काश्मीरभूजानिर्हर्षः ।

ख—धाराधराधरस्य नृपभोजस्य पितामहो हर्षः ।

ग—मातृगुप्तस्याभिभावक उज्जयिनीनाथो हर्षः विक्रमादित्यः ।

घ—कान्यकुब्जक्ष्मापतिः श्रीहर्षवर्धनश्चेति ।

अथ एषां कतमो हर्षः एतत्कथावर्णितः इति । काश्मीरराजः १११३ इत्येतत्समयमारभ्य ११२५ खीष्टतमपर्यन्तं शशास । विसनमहोदयानुसारेण इति । किन्तु तदयुक्तम् । इत्सिङ्गलेखेभ्यः ज्ञायते यत् शिलादित्यो नामनृपः जीमूतवाहनस्य बोधिसत्त्वस्य कथां पद्ययित्वा गायकवर्गेण नृत्यमभिनयसहितं प्रयोज्य च स्वसमये एव लोकप्रचारितमकरोदिति । बाणसाक्ष्येण च हर्षवर्धनस्य कविप्रतिभाशालित्वं स्पष्टम् । स्वयं बाणेनापि कादम्बर्यां लिखितम् । "अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुवेरनामांश इव स्वयम्भूवः ।" अत्रेतिहासप्रसिद्धानां मौखरिगुप्तक्ष्मापतीनां चरितवृत्तं द्योतितम् । ते राजानः बाणस्य प्रपितामहस्य काले आसन् गुप्तवंशे कृष्णगुप्तस्य ६३० समयमारभ्य ६५० खीष्टतमपर्यन्तम् कालोऽस्ति । माधवगुप्तस्तु श्रीहर्षस्य सुहृत् । अतोऽनेनापि तस्य कालः सिद्धः ।

महाराजश्रीहर्षवर्धनस्य ६०६ तमं खीष्टसंवत्सरमारभ्य ६४८ तमं वर्षं यावद्राज्यं कृतवानित्यैतिहासिकानां समयः । अयं हि स्थानेश्वरजनपदनायक-

स्य प्रभाकरवर्धनस्य पुत्रः। अयं भाग्यशाली महावीरो राजनैतिकश्च सर्वान-न्यान् विजित्य उत्तरभारते आत्मनश्चक्रवर्त्तित्वमास्थापयामास। ६२९ तमं ख्रिष्टीयवत्सरमारभ्य ६४५ तमं यावद्भारते भ्रमन् चीनदेशीयः ह्वेनसंग इत्याख्यः लिखति "उत्तरभारते तत्काले श्रीहर्षः एवैकमात्रोऽधिपतिर्बभूव। नासीत् कश्चिदन्यः प्रशासकः।" तथापि श्रीहर्षस्य राजसभायां मातङ्गदिवाकरो बाणः मयूरश्चेति प्रथिततमाः कवयः बभूवुरिति राजशेखरेणोल्लिख्यते यथा—

अहो प्रमादो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

हर्षचरिते बाणेन स्वपूर्ववर्तिषु ग्रन्थकारेषु व्यासभट्टारहरिश्चन्द्रसातवाहनसेतुकृत्प्रवरसेनभासकालिदासाढ्यराजेत्येतेषां कवीनां चर्चा कृतास्ति। ग्रन्थेषु च वासवदत्ताबृहत्कथयोः उल्लेखः। बाणस्य परवर्ती वामनोऽष्टमखीष्टशतके आनन्दवर्धनः नवमखीष्टशतके, भोजराजश्चैकादशखीष्टशतके बाणं प्रशशंस। अनेनापि तस्य कालः सप्तमशतकस्य पूर्वार्द्ध एव सिद्धः।

"यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता इत्यादिपदे भागवतस्य नृसिंहस्य वामनावतारस्य च लीला संकेतिता वरीवर्ति। या लीला गुप्तकालादेव प्रियासीत्। अस्मिन् प्रसंगे सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्येति घोषितम्। वायुपुराणेऽपि लिखितम्—

ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिन्द्रो वायुसमो रविः।
हुतभुग्वरुणो धाता पूषाभूमिर्निशाकरः॥
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीरस्था सर्वदेवमयो नृपः॥

अयं गुप्तकालीनमूर्त्तीनामाधारः। साम्प्रतिकयुगेऽपि एतादृशी मूर्त्तिः मथुराकलायां वर्त्तते। स्कन्धगुप्तस्य गिरनारलेखात्-लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाञ्च-

कार अथ वा तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी त्रिभुवन-प्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा । "मज्जनमालवविलासिनीकुचतटस्फालनजर्जरितोर्मि-मालया जलावगाहनावतारितजयकुंजरकुम्भसिन्दूर-सन्ध्यायमानसलिलया उन्मद-कलहंसकुल-कोलाहलमुखरितकूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्"

अनेनापि ज्ञायते यत् विदिशोज्जयिनीपर्यन्तं मालवजनपदस्य विस्तारः आसीत । अतः बाणकृतं सप्तमशतके मालवानां वर्णनमैतिहासिकानां सम्मत-मस्ति । अथ वा श्रीहंसराजेनापि संस्कृतसाहित्यस्येतिहासे लिखितम् "बाणस्य हर्षचरितप्रणयनात् बाणस्य कालः षष्ठशतकस्योत्तरार्द्धं सप्तमशतकस्य पूर्वार्द्धं सिद्धम् इति ।" "धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथे"ति पदे हंसराजस्य मते सुबन्धोः वासवदत्तायाः निर्माणं हर्षचरितप्रणयनात् प्रागेवाजनि । सुबन्धुः षष्ठशतकस्या-वसानस्य किल वर्षेषु अभूदिति विचारः साधुः प्रतिभाति । अतो हि बाणस्य कालः एष एव सिद्धः ।

कादम्बरीकथा :— कादम्बर्याः उदात्तानां वर्णनानामास्वादनाय पाठकैः मनसि तस्याः संश्लिष्टायाः कथायाः सूचनं सुस्पष्टतया कल्पनीयम् । अस्याः कथावस्तु संक्षेपरूपेण एतादृक् ज्ञातव्यम् [१] शूद्रकस्य राजसभायां चाण्डालकन्यागमः। वैशम्पायनशुकस्य च परिचयः तेन कथितः। [२] विन्ध्या-टवीवर्णनम्, जाबाल्याश्रमे च तेन वैशम्पायनशुकस्य वृत्तान्तकथनम् । [३] उज्ज-यिनीतारापीडयोः वर्णनम्, चन्द्रापीडस्य जन्म, शिक्षा, यौवराज्याभिषेकश्च । [४] अच्छोदसरोवर्णनम्, चन्द्रापीडमहाश्वेतासङ्गस्तथा तया स्वकर्त्तव्यकथनम्, चन्द्रापीडेन स्ववृत्तान्तस्य कथनम् । [५] चन्द्रापीडस्योज्जयिन्यां प्रत्यावर्त्तनम्, कादम्बर्याः विरहः प्रेमसन्देशश्च । चन्द्रापीडस्य पुनः गन्धर्वलोकप्रस्थानं मृत्युश्च । [६] महाश्वेतायाः कादम्बर्याश्च शोकः तथा प्रतिबोधनम् । विलासवतीतारा-पीडयोः शोकः । [७] श्वेतकेतुना प्रेषितस्य कपिञ्जलस्य वैशम्पायनेन सह

जाबाल्याश्रमे सन्धिः। जाबाल्याश्रमात् वैशम्पायनशुकस्य पलायनम्। चाण्डालकन्याया तं नीत्वा शुकेन सह शूद्रकसभायामागमः [८] लक्ष्म्याः शूद्रकस्य वैशम्पायनस्य च पूर्ववृत्तान्तस्य परिचयः। तस्य शापान्मोचनञ्च। महाश्वेतापुण्डरीकचन्द्रापीडकादम्बरीणां समागमः।

एतद्दर्शनेन प्रतिभाति कादम्बरीकथात्रयं चक्रवत्। बाणः पूर्वमेव कथायै धरातलं सृजति। ततश्च तत्र विश्रामे मंचे वा कथायाः गतिशीलाः कणाः संगृहीताः। तदा तरलतया कथा प्रचलति।

कादम्बरीकथावस्तुसाधारणं बाह्यस्वरूपं सोमदेवेन ख्रीष्टस्य [एकादशशतकोद्भवेन] आरचिते कथासरित्सागरे समुपलभ्यमानस्य नृपसुमनसः कथामनुकरोति। श्रीभानुचन्द्रानुसारेण बृहत्कथागता कादम्बरी मूलकथा सम्प्रति कथासरित्सागरस्य ऊनषष्टितमतरङ्गान्तरमकरन्दिकोपाख्याने द्रष्टुं शक्या। तत्र हि नामानि च कानि चित् बाणभट्टेन परिवर्त्तितानीत्यधोदीयन्ते :—

कथासरित्सागरे	कादम्बर्याम्	कथासरित्सागरे	कादम्बर्याम्
काञ्चनपुरी	विदिशा	ज्योतिष्प्रभः	तारापीडः
सुमनाः	शूद्रकः	हर्षवती	विलासवती
शास्त्रगञ्जः[शुकः]	वैशम्पायनः	सोमप्रभः	चन्द्रापीडः
मुक्तालता	चाण्डालदारिका	प्रभाकरः	शुकनासः
हिमालयपादे रोहिणतरुः	विन्ध्याटव्यां शाल्मलीतरुः।	प्रियङ्करः	वैशम्पायनः
मरीचिः	हारीतः	आशुश्रवाः	इन्द्रायुधः
पौलस्त्यः	जाबालिः	पद्मकूटः	हंसः
रत्नाकुटंपुरं	उज्जयिनीनगरी	हेमप्रभा	गौरी
मनोरथप्रभा	महाश्वेता		
दीधितिमान्	श्वेतकेतुः		

रश्मिवान्	पुण्डरीकः
सिंहविक्रमः	चित्ररथः [गन्धर्वराजः]
मकरन्दिका	कादम्बरी
देवजयः	केयूरकः

कथाभागेन सह क्वचित् क्वचित् चमत्कारकोऽर्थोऽलंकारादिकश्चापि बाणेनाविकलं बृहत्कथाया एवोपजीवित इति भानुचन्द्रमते। यथा कर्णीसुतश्च कटकस्तेयः शास्त्रप्रवर्त्तकः। ख्यातौ तस्य सखायौ द्वौ विपुलाचलसंज्ञकौ। शशो मन्त्रिवरस्तस्येति [मकरन्दिकोपाख्याने बृहत्कथामञ्जरी]। एवं विन्ध्याटवीवर्णने यथा कर्णीसुतकथेव संनिहितविपुलाचला, शशोपगता च [कादम्बरी]

यस्यां वसति विश्वेशो महाकालवपुः स्वयम्।
शिथिलीकृतकैलासनिवासव्यसनो हरः॥ [लम्बक २ त० ३श्लो० ३२

इति कथासरित्सागरे। प्रलयानिलशिखाकलापकपिलजटाभारभ्रान्तसुरसिन्धुरन्धकारातिर्भगवानुत्सृष्टकैलासवासप्रीतिः महाकालाभिधानः स्वयं निवसति। [उज्जयिनीवर्णने कादम्बर्याम्]। अथ वा पुरा मुनयः किन्नरराज्ये द्रुमनामकं नृपमभिषेचयामासुः इति बृहत्कथायाम्। किंपुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुममिति जाबाल्याश्रमवर्णने। स्वयं कविनैव द्योतितम् "धिया निबद्धेयमितिद्वयी कथे"ति। अत एतद्वृत्तदर्शनेन ज्ञायते यत् बाणकृता कादम्बरी बृहत्कथाया उपजीवितेति।

साहित्यिकगुणाः—न खलु बाणस्योदात्तगद्यकाव्यसदृशमन्येषां गद्यकाव्यमासीत्। तेन बाणस्य परवर्त्तिनां कवीनां गद्यकाव्येषु अल्पीयांसः खलु काव्यगुणा विलोक्यन्ते। जटिलञ्चास्याः कथासूत्रं यत्र कथायां कथानुप्रविष्टा दृश्यते। कथायाः बहवः वक्तारः तावत् एकः शुकः यो हि स्वयं कथाया उपनायकः पुण्डरीकनामा मुनिरासीत इति अग्रतो गत्वा मया प्रकाश्यते। कथार्द्ध

समाप्य कथा नायिकायाः कादम्बर्याः वर्णनम् उपक्रमते । तत्रैव च तस्याः नामधेय-मपि प्रथमं श्रूयते । केवलम् आपाततः भासते यस्य नाम्नो अकीर्त्तनेन न काचित् कथाक्षतिः सम्भाव्यते । अन्ततो गत्वासौ एव तु शापवशाद् योऽन्यन्तरं प्राप्तः चन्द्रापीडो नाम कथानायकः खल्वासीत इति रहस्यमुद्भिद्यते । तदित्थं महती खलु कथावस्तुनिर्माणे विदग्धता कविना प्रकाशिता यया यावत् कथावसाने न क्वचिदपि पाठकस्य रुचिशैथिल्यं सञ्जायते ।

बाणस्य कादम्बरी अपूर्णा, हेतुस्तु अस्य कवेरकालमृत्युः सम्भाव्यते । अतः भूषणभट्टेन पूर्णा कृता । साहित्यशास्त्रदृष्ट्या कादम्बर्याः प्रवेशः कथायां हर्षचरितस्य चाख्यायिकासु उचितः । श्रीहंसराजमते "सत्यामपि कादम्बरी-रचनायां गद्यरूपायामस्याः रसपूर्णत्वादलंकारबहुलत्वाच्चैषा भारतीयालंकारशास्त्रिभिः काव्यम् इत्यभिधीयते । रसश्चाङ्गी इह श्रृंगारः, यस्य दशानामपि दशानामपूर्वं खलु समावेशः कविनात्र यथाक्रमं कृतः । नहि अस्य पूर्ववर्तिना कामस्य दशमी दशा निबद्धा इति ।" अङ्गरसेषु करुणाद्भुतौ प्रधानौ यौ नैकत्रात्र अनुभू-येते । करुणो यथा—स्वस्वपतिमरणश्रवणानन्तरं कादम्बरीमहाश्वेतयोः वैशम्पाय नमरणवर्णनम्, चन्द्रापीडस्य च दशावर्णनेषु, अद्भुतश्च यथा—चन्द्रापीडपुण्डरीकयोः नामानुक्रमिकजन्मवृत्तान्तवर्णनयोः । शबरसेनावर्णने तु रौद्रो रसः । अत्रैव यदा कदा भयानकरसोऽप्यास्वाद्यते । महाकालमन्दिरस्य समीपे श्मशानवर्णने भयानकरसश्च प्रतीयते ।

"तातस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमुपनतमालोक्य द्विगुणतरोपजातवेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्ततरलतारको विषादशून्याम् अश्रुजलप्लुतां दश-मितस्ततो दिक्षु विक्षिपन् उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमस्त्रासस्रस्त-सन्धि-शिथिलेन पक्षपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितप्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशः मद्रक्षणाकुलः किंकर्त्तव्यताविमूढः क्रोडभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ ।"

अत्र हि मुमूर्षतो जराजीर्णस्य शुकस्य निजशावकोपरि कीदृशमसामान्यं वात्सल्यमङ्कितम्। हास्य रसस्याऽवतारणं यथा जरद्द्रविडधार्मिकवर्णने।

सत्यं संस्कृतकाव्यकारेषु अन्यतमः कादम्बरीकार इति कोविदाः कथयन्ति। तदुक्तं तं विषयीकृत्य गोवर्धनाचार्येण—

"जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति।"

तस्य काव्यगुणान् उपश्लोकयता धर्मदासेनापि अभिहितं यत्:—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत् किं तरुणी? नहि; नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्येति।

यथा परिसंख्यालंकारः—"यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्" इत्यादि।

यथोत्प्रेक्षाम् "अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिःश्वासावकृष्टैर्मूर्तिमद्भिरिव शापाक्षरैः सदा मुखभागसन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम् अतिकृशतया" इत्यादिपदे पश्यामः। उपमां तु खलसज्जनवर्णने एव पश्यामः। अतः यत्र तत्र सर्वत्रालंकारा दृश्यन्ते।

व्यञ्जनाप्रयोगे च न कोप्यवरः बाणसमकक्षोऽङ्गीक्रियते। क्वचित् क्वचित् वाक्यानि तु अस्यासाधारणदैर्घ्यवन्ति भवन्ति। तथा हि अष्टमोच्छ्वासे वाक्यमेकं मुद्रितानि पञ्चपृष्ठानि व्याप्नोति, अपरञ्च त्रीणि। यावत् पाठकः वाक्यस्यान्तं न गच्छति तावत्तस्य निश्चितार्थस्य प्रतीतिः न जायते। एवंविधा शैली यदि नाम कस्मैचिदेव पाश्चात्याय साहित्यरसिकाय रोचते। कीथोऽपि शैलीकारत्वेन विचार्यमाणस्य बाणस्य दोषाः खलु अपशोचनीया इति सम्मनुते।

हर्षचरितं तु आख्यायिका किन्तु कादम्बरी कथैव। स्वयं कविनाभिधिया निबद्धं यमिति द्वयीकथेति अभिहितम्। हर्षचरितमस्याः धाराया एव तथ्याभिकाख्यायिका वरीवर्त्ति। किन्तु कादम्बरी तु दिव्यलोकमपि भूतले प्रदर्शयन्ती काव्यकल्पनारित। अग्निपुराणे गद्यकाव्यस्य पञ्चप्रकाराः कथिताः, यथाख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा कथनिका च। आख्यायिकायाः ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितमिति। कथायां तु स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।

अत एव संस्कृतपयोधौ महाकवेर्ध्यानशक्तेर्योऽमृतघटः संभूतः स एव कादम्बर्याः कथाकाव्यमिति। यक्षलोकस्य गन्धर्वलोकस्य देवलोकस्य चाक्षय्यस्य जीवितस्य वरं नीत्वा देवात्मजाः भारतस्य राजकुमारान् वरीतुम् इच्छन्ति। तदेव कादम्बर्याः चित्रपटमस्ति।

कालिदासबाणौ स्तः भारतस्य प्रतिनिधिकवी। तौ स्वयुगायोपदेष्टुमिच्छतः। सा वाणी एव तयोः कृतीनां पृष्ठभूमिरस्ति। सृष्टेर्मानवानां महती समस्या कामः। कामो द्विधा प्रेम वासना च। प्रेमोर्ध्वगामि नित्यं वर्त्तते। वासना तु अधोगतिः। वासनैव शापः। तपसा तस्याः शुद्धिः। तपसैव शापग्रस्ताः मानवाः मुक्ताः भवन्ति। तपसा शापान्मोक्षस्तु कालिदासस्य मेघदूतं शाकुन्तलञ्च व्याप्नोति। तपसा रूपासक्तेः मुक्तिः कुमारसंभवे यथा—

तथा समक्षं दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती,
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।

तथा च

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपताम्,
तपोभिरास्थाय समाधिमात्मनः।

अत्राप्यते वा कथममन्यथा द्वयम्;
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥

अत एव तदेव बाणः स्वकथायां कथयामास । कः शूद्रक इति तरति शोकमात्मवित् इति शूद्रकः इत्युपनिषद्वचनम् । आत्मदर्शी न शोकाकुलः । यः खलुः शोकाविष्टः स तु शूद्रो वर्त्तते । शंकराचार्येणापि द्योतितं यत् अहहारे त्वा शूद्रतयैव सहगोभिरस्तु, तदा नृपः शोकाकुलोऽस्ति । अतो हि ऋषिः कथयति यत्—शुचमभिदुद्राव, शुचा वाभिद्रुद्रुवे, शुचा वारैकमभिदुद्रावेति शूद्र इति । काममुक्तस्तु ब्राह्मणः यथा धम्मपदे :—

"वारिपोक्खर पत्तेव आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणः ॥

अतः बाणेनापि इदमेवाभिहितं यत कादम्बर्याः मुख्यं सूत्रं शाप एवास्ति । चन्द्रापीडस्य मनः यदा कादम्बरीं प्रति स्वसंगात्मिकया वासनया पूरितं तदा मनोव्यामोहकारी कोऽपि शाप एवायमिति कथितं तेन ।